हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव

प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फ़िल० उपाधि के लिए
स्वीकृत 'द इन्फ़्लूयेन्स ऑव इङ्गलिश ऑन माडर्न
हिन्दी पोइट्री एण्ड क्रिटिसिज़्म' थीसिस
के काव्य-खण्ड का हिन्दी रूपांतर

लेखक
रवीन्द्र सहाय वर्मा एम० ए० डी० फिल०
आँग्ल विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

Foreword

Dr. R. S. Varma submitted his thesis on "The Influence of English on Modern Hindi Poetry and criticism" for the D. Phil. degree in 1953 and it was accepted by the University in the same year. As his work is bound to be of value to young research workers in Hindi, he sought permission from the University to issue the volume in a Hindi translation (in two parts). It would have been in the fitness of things that a study of this sort should have been introduced by his Supervisor, Mr. P. C. Gupta. Owing to his being away on a study tour, I have been requested to say a few words. I do so with pleasure. Work on Comparative Literature is now finding a place in our Faculty research programmes, and I am happy to find that several valuable studies on kindred themes have been brought out by the Research Scholars of our Department. The extent to which our creative writers and critics are indebted to the West is not yet well known, and needs to be investigated carefully and dispassionately. Just at present the controvresies and misunderstandings which are the legacy of the recent past have diverted most of our critics, and our minds have often been unable to recognise the all but paramount importance that English creative work, and critical thought have had on our best writers. Andre Siegfried has, with unerrring clearness, pointed this out in the few pages he has written on Sri Aurobindo. and Pandit Nehru. But it is not only on the mightiest or the most alert minds that this influence has exhausted itself. It has been a marked feature in the mental background of almost all of India's poets and thinkers, it might be said even of those who did not cultivate English letters. Dr. Verma has taken a very considerable section of this vast field of enquiry for his work. I am deeply grateful to note that he has written on this difficult and controversial subject with the clarity and restraint that are the mark of the research worker.

Sd. S. C. DEB.

15th October, 1954.

Head of the English Department,
Allahabad University.

प्रस्तावना

डॉक्टर आर० एस० वर्मा ने सन् १९५३ में 'दि इन्फ्लुयेन्स आव इङ्गलिश आन माडर्न हिन्दी पोइट्री एण्ड क्रिटिसिज़्म' शीर्षक निबन्ध डी० फिल० की उपाधि के लिये प्रेषित किया था जो विश्वविद्यालय द्वारा उसी वर्ष स्वीकार भी कर लिया गया। हिन्दी में प्रारम्भिक अनुसन्धान कार्य करने वालों के लिये यह कृति उपयोगी सिद्ध होगी, इस अभिप्राय से आपने विश्वविद्यालय से इसका हिन्दी अनुवाद (दो भागों में) प्रकाशित करने की अनुमति प्राप्त की। उचित तो यह था कि आपके निर्देशक श्री पी० सी० गुप्त द्वारा ही इस पुस्तक का परिचय प्रस्तुत किया जाता किन्तु स्वाध्याय कार्य से उनके विदेश में होने के कारण इसके सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखने के लिये मुझ से अनुरोध किया गया। अतः इस कार्य को मैं प्रसन्नतापूर्वक कर रहा हूँ।

हमारे विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान-कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तुलनात्मक साहित्य सम्बन्धी कार्य अपना उचित स्थान ग्रहण कर रहा है और मुझे हर्ष है कि हमारे विभाग के अनुसन्धान करने वाले विद्यार्थियों ने सम्बन्धित विषयों पर अनेक मूल्यवान कृतियाँ उपस्थित की हैं। हमारे साहित्य सृजनकर्त्ता लेखक एवं आलोचक जिस सीमा तक पश्चिम के ऋणी हैं यह अभी तक सम्यक् रूप से ज्ञात नहीं है। इस सम्बन्ध में सावधानी और निरपेक्ष भाव से ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट है। इस समय हमारे अधिकाँश आलोचक उन विभिन्न मतभेदों एवं भ्रान्तियों के कारण जो हमें निकट अतीत की थाती-स्वरूप मिली हैं, पथभ्रांत हो रहे हैं; और हम अपने सर्वश्रेष्ठ लेखकों पर अंग्रेज़ी के सृजनात्मक साहित्य एवं आलोचनात्मक विचारों के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव को पहिचानने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं। आन्द्र सीजफ्राइड ने श्रीअरविन्द तथा पंडित नेहरू पर कतिपय पृष्ठ लिखते हुये इस तथ्य को निर्भ्रान्त रूप से स्पष्ट किया है। किन्तु यह प्रभाव केवल हमारे अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं जागरूक मस्तिष्कों पर ही पड़कर समाप्त नहीं हो गया है। वस्तुतः वह भारत के प्रायः समस्त कवियों और विचारकों की मानसिक पृष्ठभूमि में अंकित रहा है और यह बात उन लेखकों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है जिन्हें अंग्रेज़ी साहित्य का सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं है।

डा० वर्मा ने आँग्ल प्रभाव के इस सुविस्तृत अनुसन्धान क्षेत्र के एक बृहद् भाग को अपने अध्ययन का विषय बनाया है। मुझे यह लिखते हुये अत्यन्त सन्तोष है कि आपने इस जटिल तथा विवादग्रस्त विषय पर अत्यन्त स्पष्टता एवं संयम के साथ जो कि एक अनुसन्धानकर्त्ता के मुख्य गुण हैं, लिखा है।

एस० सी० देब

१५ अक्तूबर १९५४ — अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी कविता पर आंग्ल प्रभाव के अध्ययन का प्रयास किया गया है। 'आंग्ल प्रभाव' की यहाँ पर उसके विस्तृत अर्थ में व्याख्या की गयी है। फलतः उसमें उन सब पाश्चात्य प्रभावों का समावेश है जो अंग्रेजी के माध्यम द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश में आये हैं। अंग्रेजी भाषा इतनी समृद्धिशालिनी है कि उसमें पाश्चात्य भाषाओं के समस्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त हैं। अतः यह आवश्यक ही है कि हिन्दी कविता पर आंग्ल प्रभाव का अध्ययन करते समय इन विविध पाश्चात्य प्रभावों का भी उल्लेख किया जावे। फिर भी इस ग्रन्थ में मैंने अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव पर ही मुख्यतः ध्यान दिया है।

पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में विषय की आरंभिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है जिसमें (१) अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व की हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ, (२) अंग्रेजी प्रभाव का आगमन और उसकी प्रतिनिधि संस्थायें, तथा (३) राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन, जिन पर अंग्रेजी प्रभाव क्रियाशील रहा है, का उल्लेख किया गया है। द्वितीय भाग में हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के परिणामों का विवेचन है। इस भाग को चार प्रकरणों में विभाजित किया गया है। ये प्रकरण— भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावाद-युग और प्रगतिवाद-युग—हिन्दी काव्य के अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के अन्तर्गत विकास के क्रमिक चरण के रूप में दिये गये हैं। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव का अध्ययन हिन्दी काव्य के विषयों और उपादानों एवं उसके बाह्य स्वरूप दोनों पर ही किया गया है। उपसंहार में अध्ययन में निकाले गये निष्कर्षों के संक्षिप्त विवरण के साथ हिन्दी कविता पर अंग्रेजी साहित्य के भावी प्रभाव के विषय में मत-प्रतिपादन किया गया है।

प्रस्तुत कृति प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टर आफ फिलासफी इन इंग्लिश' उपाधि के लिए स्वीकृत थीसिस 'द इन्फ्लुयेन्स आव इंग्लिश आन हिन्दी पोइट्री एण्ड क्रिटिसिज्म' के एक बृहद् अंश का हिन्दी रूपान्तर है। काव्य और आलोचना एक दूसरे से संबंधित विषय होने पर भी स्वयं अपने में पूर्ण विषय हैं। अतः प्रकाशित करते समय सुविधा के लिये मूल थीसिस को दो पृथक् पुस्तकों का आकार देना ठीक समझा गया।

पुस्तक में तथ्यों का केवल वैज्ञानिक रूप से वर्गीकरण ही नहीं किया गया है, उसमें उनकी नवीन व्याख्या के साथ सर्वथा मौलिक निष्कर्षों का भी विधान है। अन्तिम तीन प्रकरण जिनमें १९०३ के बाद की हिन्दी कविता पर

अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव का अध्ययन है मेरी स्वयं की खोजों के परिणाम हैं। विषय से संबंधित समस्त सामग्री का प्रयोग किया गया है, और उसका ऋण उचित संदर्भ में स्वीकार किया गया है। दूसरे और तीसरे प्रकरण की रूपरेखा बनाने में मुझे प्रियारंजन सेन की पुस्तक 'वेस्टर्न इन्फ्लूयेन्स इन बंगाली लिट्रेचर' से पर्याप्त सहायता मिली है। अन्यथा समस्त ग्रन्थ का प्रस्तुतीकरण मेरा अपना ही है।

मैंने अधिकांशतः प्रमाणों को ही अपने विवेचन का आधार बनाया है। मैं उन कवियों और आलोचकों का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पत्र भेज कर अथवा मुझे भेंट के लिये अपना समय देकर मेरे कार्य को सरल बनाया है। किन्तु ग्रन्थ में प्रभाव के प्रश्न को आवश्यकता से अधिक विस्तार नहीं दिया गया है। जहाँ मुझे प्रभाव के विषय में संदेह रहा है, वहाँ मैंने दो कवियों अथवा प्रवृत्तियों की समानता का ही दिग्दर्शन करा कर संतोष कर लिया है।

थीसिस का हिन्दी अनुवाद करते समय मुझे बड़ी कठिनाई हुई है। भाषा के प्रवाह का निरंतर ध्यान रखा गया है। फिर भी बहुत से स्थलों पर पाठकों को कदाचित् अस्पष्टता-सी प्रतीत हो। पुस्तक में विशेषकर जहाँ अंग्रेज़ी के उद्धरण दिये गये हैं छपाई की अनेक अशुद्धियां रह गयी हैं, जिनमें से प्रमुख अशुद्धियों के निराकरण के लिये शुद्धि-पत्र दे दिया गया है। आशा है सहृदय पाठक इन त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

थीसिस लिखने में मुझे अपने गुरुजनों से जो सहायता मिली है उसका मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने अपने अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्ययन से मुझे निरीक्षक (सुपरवाइजर) के रूप में पग पग पर सहायता दी है। प्रो० सतीश चन्द्र देब ने बड़ी सहृदयता से अनेक बार अपना अमूल्य समय देकर मुझे महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं एवं पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का कष्ट उठाया है। डा० अमरनाथ झा एम० ए०, डी० लिट् एवं डा० रामकुमार वर्मा, एम०ए०पी०एच०डी० ने मुझे उदारतापूर्वक सुझाव दिये हैं। एतदर्थ मैं उन सबका बड़ा आभारी हूँ।

आशा है यह तुलनात्मक अध्ययन हिन्दी जगत को संतोष दे सकेगा।

रवीन्द्र सहाय वर्मा

विषय-सूची

प्रथम भाग

(पृष्ठ भूमि)

पहला प्रकरण

दूसरा प्रकरण

तीसरा प्रकरण

द्वितीय भाग

(हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव के परिणाम)

चौथा प्रकरण

पाँचवाँ प्रकरण

छठा प्रकरण

सातवाँ प्रकरण

प्रथम भाग

(पृष्ठभूमि)

१

भूमिका

(अ) विषय-प्रवेश

डी क्यून्सी (De Quincey) नामक एक प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक के अनुसार प्रत्येक प्रगतिशील साहित्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने में अन्यान्य साहित्य के प्रभावों को भी अंगीकृत करे। जो साहित्य ऐसा करने में समर्थ नहीं होता वह क्रमशः ह्रासोन्मुखी बन जाता है। जहाँ तक हिन्दी साहित्य का संबंध है वह अभी तक मुख्यतः दो बाह्य प्रभावों को ग्रहण कर सका है : पहला इस्लाम का प्रभाव जो विशेषतया फ़ारसी प्रभाव के रूप में आया है, और दूसरा पाश्चात्य प्रभाव जो आंग्ल प्रभाव का परिणाम है। पर इन प्रभावों में से इस्लाम का प्रभाव विशेष महत्व का नहीं कहा जा सकता। इस्लाम का प्रभाव हमें हिन्दी-काव्य के निर्गुण सम्प्रदाय पर ही विशेष रूप से मिलता है। निर्गुण सम्प्रदाय के काव्य में हमें एकेश्वरवाद, कर्मकांड और मूर्ति पूजा का विरोध, जाति-पाँति-खंडन आदि अनेक भावनायें मिलती हैं जिनके कारण वह भक्ति काव्य से पृथक् जा पड़ता है। पर यह कहना कि ये भावनायें इस्लाम के प्रभाव का ही परिणाम थीं, उपयुक्त नहीं जान पड़ता। वे सब हमें उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धांतों और नाथ एवं सिद्ध सम्प्रदायों की बानियों में यत्र-तत्र बिखरी मिलती हैं; वस्तुतः इस्लाम का प्रभाव उन्हें जन-प्रिय बनाने में केवल सहायक सिद्ध हुआ है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस्लाम का हिन्दी-काव्य पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। जायसी, कुतबन आदि की प्रेमगाथाओं तथा कबीर और उनके सम्प्रदाय के सन्तों के रहस्यवादी काव्य में सूफ़ीमत (जो इस्लाम का एक अंग था) के प्रभाव की गहरी छाप है। पर काव्य की भाषा और उसके स्वरूप पर यह प्रभाव अधिक न पड़ा—थोड़े से शब्दों और मुहावरों तथा ग़ज़ल एवं मसनवी ऐसे कुछ काव्य रूपों को छोड़

कर फ़ारसी का प्रभाव इस क्षेत्र में अधिक न पड़ सका। अतः जैसा डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है हिन्दी साहित्य की गतिविधि में इस्लाम कोई विशेष परिवर्तन लाने में समर्थ न हो सका।[१]

इस्लाम का प्रभाव हमारे साहित्य पर अधिक क्यों न पड़ सका—इसका कारण स्पष्ट है। प्रथम तो भारत पर मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक दृष्टिकोण से राष्ट्र के लिये सर्वथा अकल्याणकारी था और फिर इन आक्रमणकारियों ने अपनी धार्मिक असहिष्णुता से भारतीय जनता को अप्रसन्न करने में कोई कसर न छोड़ी। ये विदेशी भारत पर राजनीतिक दृष्टि से विजयी होने में तो सफल हुए पर भारतीय जनता के हृदय पर शासन करने में सर्वथा असमर्थ रहे। साहित्य राष्ट्र की आत्मा का प्रतिबिम्ब होता है। अतः यह स्वाभाविक था कि भारतीय साहित्य इन विदेशियों की साहित्यिक परंपराओं से अधिक प्रभावित न हुआ। दूसरा कारण यह था कि हमारे साहित्य को संस्कृत ऐसे समृद्ध साहित्य की परम्परा प्राप्त थी। अतएव उसे फारसी साहित्य में कोई विशेष आकर्षण न प्रतीत हुआ। फिर इस्लाम के प्रभाव से भारत में एक नई भाषा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे आज उर्दू कहते हैं। जब इस भाषा का नवविकसित साहित्य फारसी प्रभाव का मुख्य क्षेत्र बना तब हिन्दी साहित्य को भी संस्कृत साहित्य की परम्परा द्वारा अपना विकास करने के लिए निर्बाध रूप से अवसर मिल सका।

पर आधुनिक युग में भारत पर पड़ने वाले अंग्रेजी प्रभाव के कारण हमारे साहित्य में भी अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। यह प्रभाव समस्त भारतीय संस्कृति पर पड़ा है और उसने न केवल हिन्दी साहित्य की गतिविधि को पूर्णतया मोड़ा है, वरन् विविध भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं। वस्तुतः आज जो साहित्यिक जाग्रति हम भारत में देखते हैं उसका बहुत कुछ श्रेय इस नवीन प्रभाव को ही है।

हमारी विविध भाषाओं के साहित्य पर जो आधुनिक काल में पाश्चात्य अथवा आंग्ल प्रभाव पड़ा है उसकी ओर अनेक भारतीय विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। इस दिशा में सर्व प्रथम कार्य डा० सैयद अब्दुल ने अपनी

---

[१]हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (तीसरा संस्करण, १९४८) पृ० २

"(मैं) ज़ोर देकर कहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

पुस्तक 'आंग्ल साहित्य का उर्दू साहित्य पर प्रभाव' (The Influence of English Literature on Urdu Literature) में किया है। यह कार्य मूलतः एक निबन्ध रूप में था जो सन् १९२४ में लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। उस ग्रंथ के प्रकाशन के उपरांत बंगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव संबंधी विषय पर अनेक ग्रंथ प्रकाशित किये गए। इस विशेष क्षेत्र में प्रियारंजन सेन का कार्य प्रशंसनीय है। उनके निबंध 'बंगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव' (Western influence in Bengali Literature) तथा 'बंगला साहित्य का पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में उत्थान और विकास' (Growth and Development of Bengali Literature under the influence of Western Culture) क्रमशः सन् १९२५ में प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति तथा सन् १९२६ में जुबिली रिसर्च पारितोषिक के लिये स्वीकृत किए गए। ये दोनों निबंध सन् १९३२ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'बंगला साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव' (Western Influence in Bengali Literature) के नाम से सम्मिलित रूप से प्रकाशित हुए। बंगला उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव के विषय पर इन्हीं विद्वान लेखक का एक पृथक् लेख 'जर्नल आफ डिपार्टमेंट आफ लेटर्स,' वाल्यूम २२, कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रकाशित हुआ। फिर बंगला काव्य पर पाश्चात्य प्रभाव के सम्बन्ध में एच० एम० दास गुप्ता का ग्रंथ 'स्टडीज इन वेस्टर्न इन्फलूएंस आन नाइनटीन्थ सेन्चुरी बंगाली पोइट्री' सन् १९३५ में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त इस विषय पर और भी महत्वपूर्ण लेख 'बुलैटिन आफ स्कूल आफ ओरियन्टल स्टीज़, लन्दन' तथा 'केलकटा रिव्यू' में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे।

इस दिशा में यद्यपि बंगला साहित्य पर अच्छा कार्य हुआ किन्तु हिन्दी साहित्य पर कुछ समय तक संतोषजनक कार्य न हो सका। हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के विषय पर सर्वप्रथम कार्य अभी हाल में डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिये स्वीकृत अपने अप्रकाशित निबंध 'हिन्दी साहित्य और भाषा पर आंग्ल प्रभाव (१८७०-१९२०) ' (English Influence on Hindi Language and Literature) में किया। इसके उपरान्त डा० धर्म किशोर लाल का अप्रकाशित निबंध 'हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य नाटक का प्रभाव' (The Influence of Western Drama on Hindi Drama) प्रयाग

विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिये स्वीकृत किया गया। इस प्रकार अभी तक हिन्दी काव्य में आंग्ल प्रभाव के विषय पर कोई विवेचनात्मक निबंध नहीं लिखा गया। प्रस्तुत निबंध में इसी अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का कार्य आरंभ करने के पूर्व हमारे लिये यह उचित और आवश्यक प्रतीत होता है कि हम भारत में अंग्रेजी संस्कृति के आने से पहले के हिन्दी काव्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करें।

(ब) आंग्ल प्रभाव से पहले का हिन्दी काव्य

(१) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिन्दी प्रदेश में ब्रिटिश राज्य की स्थापना का समय लगभग ईसा की १९वीं शताब्दी का मध्यकाल कहा जा सकता है। विद्वानों ने इस ब्रिटिश राज्य स्थापना से पूर्व लगभग दो सौ वर्ष के समय को 'रीतिकाल'[२] की संज्ञा प्रदान की है। अतः रीतिकाल के अन्तर्गत ईसा की १७वीं शती के मध्य काल से लेकर १९वीं शती के मध्यकाल तक की पूरी दो शताब्दियाँ आ जाती हैं। रीतिकालीन काव्य के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि हम इस समय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक दृष्टि डालें। अतएव सबसे पहिले यहाँ हम इस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर विचार करेंगे।

---

[२]यहाँ पर ध्यान रहे कि इस 'रीति' शब्द के प्रयोग का कोई भी संबंध संस्कृत समीक्षा के रीति सम्प्रदाय से नहीं है। संस्कृत के आचार्यों ने 'अलंकार', 'रीति', 'रस', 'ध्वनि', और 'वक्रोक्ति', काव्य के इन पाँच तत्वों को काव्य की अन्तरात्मा के रूप में उपस्थित किया था। हिन्दी में 'रीति' शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में हुआ। हिन्दी में इस काल में कोई भी ग्रन्थ जिनमे काव्य सिद्धांतों का विवेचन होता था 'रीति ग्रन्थ' कहलाता था, और वह काव्य जो इन सिद्धांतों के अनुसार लिखा जाता था 'रीति काव्य' की संज्ञा प्राप्त करता था। इस प्रकार काव्य में 'रीति' शब्द का प्रयोग एक विशेष शास्त्रीय ढंग पर लिखे काव्य के लिए होता था जिसमें काव्य के कुछ नियमों और परम्पराओं पर विशेष ध्यान रखा जाता था। यही कारण है कि कुछ आलोचक 'रीति' शब्द के प्रयोग को इस युग के लिए उपयुक्त नहीं मानते। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने रीति-युग की काव्य-रचना में कलात्मकता की प्रवृत्ति देखकर उसे कलाकाल कहा है।

(क) *राजनीतिक परिस्थिति:*—सन् १६५० से १८५० तक का काल भारत में मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन और उसके पूर्णतया विनाश का समय है। शाहजहाँ के शासनकाल में मुग़ल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। जहाँगीर की छोड़ी हुई मुग़ल साम्राज्य की सीमाओं को शाहजहाँ ने दक्षिण में अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्यों तथा उत्तर-पश्चिम में कन्धार का दुर्ग जीत कर और भी अधिक विस्तृत कर लिया था। पर शाहजहाँ के शासन के पश्चात् मुग़ल साम्राज्य की विघटनकारी शक्तियाँ कार्य करने लगीं। औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति ने जनता में भय और असन्तोष की भावना भर दी। यद्यपि ऊपर से औरंगजेब के शासन काल में मुग़ल साम्राज्य सुरक्षित बना रहा पर उसके अन्तर में विनाश के बीज क्रमशः पनपने आरम्भ हो गये थे। औरंगजेब को इस परिस्थिति को सम्हालने में पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा था। अपने ५० वर्ष के राज्य के पूर्वार्द्ध में उसे अनेक धार्मिक विद्रोहों और उपद्रवों को दमन करना पड़ा। औरंगजेब के राज्य को सबसे अधिक धक्का दक्षिण में मराठों के संघटन से लगा। प्रारम्भ में तो मराठे यत्र-तत्र उपद्रव कर लेते थे, पर फिर वे शिवा जी के नेतृत्व में संघठित हो मुगलिया राज्य को खुले आम चुनौती-सी देने लगे। पंजाब में गुरु तेग़बहादुर के पुत्र और उत्तराधिकारी गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पिता की हत्या का बदला चुकाने के लिए समस्त सिक्ख जाति को 'खालसा' नामक एक नये भाई चारे के सूत्र में बाँध दिया। उधर राजपूताना में भी असंतोष की आग भड़कना प्रारम्भ हो गई थी। सन् १६७८ में राजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने मेवाड़ पर अपना अधिकार कर लिया, जिसके फलस्वरूप राठौर मुग़लों के विरुद्ध हो गये। वे दुर्गादास के नेतृत्व में अपने को संगठित कर लगभग तीस वर्ष तक मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए लड़ते रहे। औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति के कारण अवध, इलाहाबाद और आगरे के प्रान्तों में उपद्रव हुए। नारनौल और मेवाड़ के जिलों में सतनामियों ने विद्रोह किया और मुग़ल सेना को अपने अदम्य साहस और शौर्य से आश्चर्य में डाल दिया।

इस प्रकार सन् १७०७ में जब औरंगजेब की मृत्यु हुई तो विशाल मुग़ल साम्राज्य का समस्त ढाँचा हिलना प्रारम्भ हो गया था और उसकी विघटनकारी शक्तियाँ पूर्ण रूप से सक्रिय हो रही थीं। जागीरदार जो मुग़ल साम्राज्य की मेरुदण्ड थे, औरंगजेब के शासन काल में आर्थिक रूप से बहुत निर्बल हो गये थे क्योंकि सम्राट् अपने राज्य के बढ़े हुए व्यय को पूरा करने के लिए उनसे मूल्यवान भेंट के रूप में अधिकाधिक धन लेने लगा था। इन जागीरदारों के पास

इस प्रकार अब इतना रुपया नहीं था कि वे उचित सैनिक शक्ति रख सकें, जिसके फलस्वरूप वे अपने इलाकों के विप्लवों और उत्पातों को दमन करने में असमर्थ हो रहे थे। इस सामन्तीय सैनिक बल के ह्रास के साथ-साथ स्वभावतः मुग़ल साम्राज्य का बल भी क्रमशः क्षीण होने लगा।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद लगभग सौ वर्षों में मुग़ल साम्राज्य का अधः-पतन और उसका क्रमशः विनाश तीव्र वेग से हुआ। शाहजहाँ के शासन काल की शान्ति अब पूर्णतया नष्ट हो चुकी थी और चारों ओर घोर अशान्ति और अव्यवस्था फैल रही थी। मुग़ल सम्राटों की अपनी प्रतिभा नष्ट हो चुकी थी और वे राज्य का संचालन अमीरों के आदेशों पर करते थे। उधर ये अमीर इतने प्रभावशाली हो गये थे कि फरुखसियर के समय में तो सैयद भाई सम्राटों को बनाने और बिगाड़ने की शक्ति रखते थे। उधर राजनीतिक स्थिति दिन-प्रति-दिन बिगड़ रही थी। एक ओर तो छोटे-छोटे प्रदेशों के हिन्दू राजे केन्द्रीय शासन के निर्बल हो जाने के कारण स्वाधीन हो रहे थे, और दूसरी ओर सिक्ख, जाट और राजपूतों ने अपने विद्रोहों और विपद्रवों से राज्य की नींव ही हिला डाली थी। उधर दक्षिण में मराठों की शक्ति बिना किसी अवरोध के बढ़ती जा रही थी और वे पेशवा की अधीनता में गुजरात, मालवा, बुंदेलखंड और बंगाल के प्रान्तों में लूटमार कर रहे थे। बाद में वे मुग़ल साम्राज्य पर भी आक्रमण करने लगे और निर्बल मुग़ल शासक प्रायः उनकी शर्तों को मानकर उन्हें चौथ वसूल करने की आज्ञा देने लगे। सन् १७३७ में नादिरशाह का आक्रमण हुआ और भारतीय सेना की घोर पराजय हुई। मुहम्मदशाह को बन्दी बनाया गया, और दिल्ली में २४ घण्टे नृशंस कत्लेआम होता रहा। इसके फलस्वरूप सिन्धु नदी के पश्चिम के सूबे ईरानियों के अधिकार में चले गये। उधर अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के हमले प्रारम्भ हो गये थे। उसने पानीपत के युद्ध में मराठों की सम्मिलित शक्ति को पराजित किया। रुहेलखंड में रुहेला अफ-गानी बस गये। इस प्रकार ईसा की १८वीं शताब्दी के मध्य तक मुग़ल साम्राज्य के प्रदेश एक के बाद एक उसकी सीमा से बाहर होने लगे और दिल्ली के आसपास के कुछ प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ जिले ही मुगल साम्राज्य में शेष रह गये।

ऐसे समय में अंग्रेजों ने भारत में अपनी शक्ति संगठित करनी आरम्भ की। सन् १७६४ में उन्होंने बक्सर के युद्ध में मुग़ल सम्राट् शाहआलम को परास्त कर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। इसके बदले उन्होंने सम्राट् को इलाहाबाद और कड़ा के जिले दिये। बाद में सम्राट् को अंग्रेजों से

पेन्शन मिलने लगी और उसके उत्तराधिकारी अहमद शाह द्वितीय और बहादुरशाह केवल नाम ही के सम्राट् रहे।

हिन्दू राजाओं के अधीन राज्यों की दशा भी अत्यधिक शोचनीय थी। उनका पारस्परिक विद्रोह इतना अधिक था कि मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद भी वे परस्पर संगठित न हो सके। मुग़लों की भाँति अधिकार के लिए वहाँ भी पिता-पुत्र में बहुधा युद्ध होता था। इसके अतिरिक्त वे अत्यधिक विलास-प्रिय एवं इन्द्रिय लोलुप भी थे। वे अब युद्ध से तटस्थ रहने लगे थे और उनके दरबारों का वातावरण भी अति दूषित हो गया था।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि औरंगजेब के शासन काल के उपरान्त मुग़ल साम्राज्य का अधःपतन बड़े वेग से होना प्रारम्भ हो गया। मराठा, जाट, सिख, रोहिला आदि सब मानों मिलकर मुग़ल साम्राज्य के विनाश कार्य में संलग्न थे। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने तो मुग़ल साम्राज्य की रीढ़ को ही तोड़ दिया। उसके पश्चात् भारत में घोर अशान्ति और अराजकता फैल गई और मुगल साम्राज्य की पतन कालीन परिस्थितियों से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने भारत पर क्रमशः अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(ख) *सामाजिक परिस्थिति*—मुग़ल कालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था सामन्तीय आधार पर अवलम्बित थी। इस व्यवस्था का केन्द्र सम्राट था और उसके नीचे अमीरों का वर्ग था। ये अमीर अधिकांश मुग़ल सम्राटों की भाँति विलास-प्रिय थे और ऐन्द्रिक सुखों में लिप्त रहते थे। वीरोचित जीवन के प्रति तो ये इतने अधिक उदासीन थे कि मुगल साम्राज्य के अवनति के समय में भी वे दिल्ली में ही रहकर अपनी विलास-लिप्सा को परिशान्त करने में समय व्यतीत करते थे। इसके अतिरिक्त मध्यवर्ग के लोग थे जिनमें साधारण कर्मचारी, व्यापारी, साहूकार आदि व्यवसायों के व्यक्ति थे। पर निम्नवर्ग की दशा आर्थिक दृष्टि से बहुत दयनीय थी। वस्तुतः जनता का एक वृहत् समुदाय इसी निम्नवर्ग के अन्तर्गत आता था। नौकरों, मजदूरों और किसानों से बना यह वर्ग दैन्य और शोषण के बीच अपना जीवन-यापन कर रहा था। सम्राट्, मनसबदार, अमीर, तथा राज्य के अन्य कर्मचारीगण इस वर्ग का शोषण करने में लगे रहते थे और इस प्रकार राज्य के अपव्यय की पूर्ति उनसे उचित एवं अनुचित ढंग से इनका रुपया चूसकर की जाती थी। अतः देश की आर्थिक स्थिति पूर्णतया बिगड़ चुकी थी।

मुग़ल दरबार इस सामन्तीय संस्कृति का उसी प्रकार केन्द्र था जैसा कि उसकी विलासिता का। शाहजहाँ के दरबार का ऐश्वर देखकर टेवरनीयर (Tavernier) और बर्नियर (Bernier) ऐसे अनेक विदेशी यात्री अचंभे में पड़ गये। वहाँ पर बेशकीमती रत्नों से सुसज्जित वस्त्र पहने जाते थे, और इत्र का अनवरत प्रयोग होता था। सम्राटों के हरम में हजारों स्त्रियाँ रखी जाती थीं, जिनपर बुरी तरह धन व्यय किया जाता था। औरंगज़ेब ने इस रीति को समाप्त करने का प्रयत्न किया, पर उसके उत्तराधिकारी इतने विलास-प्रिय थे कि सुरा और सुन्दरी दोनों का बोल बोला बना रहा।

मुग़ल साम्राज्य के कर्मचारी नैतिक रूप से इतने गिर चुके थे कि वे रिश्वत खुले आम लेते और जनता का शोषण करते थे। उत्तर मुग़लकाल के सम्राटों का तो इतना पतन हो चुका था कि वे राज्य के मामलों तक में दासियों और हिजड़ों से परामर्श लेते थे। उनकी मानसिक वृत्ति पलायन वादी हो रही थी और वे राजनीतिक क्षेत्र में अपने को असफल पाकर विलासिता ही की ओर उन्मुख हो रहे थे। यही दशा हिन्दू राजाओं और उनके दरबारों की भी थी।

इस प्रकार सामन्तीय व्यवस्था पर आधारित मुग़लकालीन समाज मख्यता दो वर्गों में बटा था। एक शासक अथवा भोक्ता था जिसका कार्य जनता का शोषण करना था, और दूसरा शासित अथवा श्रमजीवी वर्ग था जिसका शोषण किया जाता था। शासक वर्ग में सम्राट्, मनसवदार, रईस और राज्य के कर्मचारी आदि थे, और श्रमजीवी वर्ग में किसान और श्रमिक थे।

(ग) सांस्कृतिक परिस्थिति—शाहजहाँ का शासनकाल भारतीय कला का स्वर्ण युग था जिसमें चित्रकला तथा वास्तुकला की विशेष उन्नति हुई। इस युगकी सौंदर्य भावना में अलंकारिता तथा सूक्ष्मता पर अधिक ध्यान था। ताजमहल तथा दीवान-ए-खास में जो मुग़ल कालीन कला के दो श्रेष्ठतम उदाहरण हैं, हमें इन दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। औरंगज़ेब के शासन काल में कला की अवनति होने लगी। औरंगज़ेब की कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति सौंदर्य वादिता तथा कलात्मकता रुचि के सर्वथा प्रतिकूल थी। इसके अतिरिक्त औरंगज़ेब के शासन के बाद देश में अशान्ति और अराजकता फैल गई और ऐसे समय में कला नितान्त उपेक्षा की वस्तु बन गई।

मुग़लकाल में कलाकारों को उच्चवर्ग के व्यक्तियों का आश्रय खोजना पड़ता था। वे अपने भरण-पोषण के लिए सम्राट् और अमीरों के आश्रय में रहकर इन्हीं की रुचि के अनुसार कला का सृजन करते थे। पर औरंगज़ेब के

उपरान्त कलाकारों के लिए राज्य का आश्रय भी न रहा और वे अब अन्य राजाओं, नवाबों और बड़े-बड़े रईसों के यहाँ आश्रय के लिए जाने लगे। वहाँ वे अपने आश्रयदाताओं के विलासमय जीवन को कला के माध्यम द्वारा उत्तेजित करने का प्रयास करते रहे और इस प्रकार अनुभूति-प्रधान कला के वास्तविक स्वरूप का ह्रास होने लगा। फलतः मुग़लकाल में कला जनजीवन से पृथक् जा पड़ी और वह जनवाणी को व्यक्त करने की अपेक्षा अब कतिपय अमीर व्यक्तियों के जीवन की रंगीनियों को ध्वनित करने लगी। मुग़लकाल में धर्म का भी ह्रास होने लगा। इस काल का हिन्दू धर्म मध्य कालीन भक्ति पम्परा का क्षीण चिह्नमात्र रह गया था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद तो यदि किसी प्रकार का उत्साह शेष था तो वह जीवन की रंगीनियों के लिए। धर्म का केवल बाह्य रूप ही शेष रह गया था। धर्म का दार्शनिक अथवा तात्विक पक्ष जनता भूल चुकी थी और रूढ़िगति एवं परम्परागत विधियों को ही उसका असली स्वरूप मानने लगी थी। लोगों में अन्धविश्वास अधिक था और धर्म के नाम पर अनेक सारहीन रीतियों का प्रचलन ही अवशेष था।

मुग़लकाल की विलासिता दरबारों और हरमों तक ही सीमित न रहकर, धर्म के क्षेत्र में भी प्रवेश कर चुकी थी। माधव, निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ मतों में राधा को प्रधानता दी जाने लगी थी जिसके फलस्वरूप जन समाज शृंगारिता और विलासिता की ओर और भी अधिक उन्मुख होने लगा था। इन मतों की गद्दियाँ तो ऐश्वर्य विलास की केन्द्र थीं। उधर मन्दिरों और मठों में भी देवदासी प्रथा के प्रचलन से अनैतिकता बढ़ रही थी।

(२) रीतिकालीन काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ

हम देख चुके हैं कि रीतियुग में कलाकारों को अपने भरण-पोषण के लिये उच्चवर्ग के लोगों का आश्रय खोजना पड़ता था। अतएव कवियों के लिये यह आवश्यक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति के अनुसार काव्य का सृजन करें। राज्याश्रय में पली इस कविता में अलंकार-प्रियता का होना स्वाभाविक ही था। श्लेष, यमक, इत्यादि काव्यगत विधियों से चमत्कार की भावना उत्पन्न कर अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना इस युग के कवियों का निरंतर प्रयत्न होता था। उनकी कविता में कृत्रिम रूपकों और रूढ़िगत उपमाओं का मेला लगा रहता था। वे तोते की भाँति चकवा, पपीहा, चकोर राजहंस इत्यादि पक्षियों के विषय में प्रचलित कितने ही रूपकों को अपनी

कविता में बार-बार दुहराते थे।[३] इसके अतिरिक्त रीतिकालीन काव्य के पीछे संस्कृत साहित्य के काव्यगत सिद्धांतों का विशाल शास्त्रीय आधार था। वे राजा और रईस, जिनके आश्रय में कवियों का भरण-पोषण होता था, प्रायः अपने को साहित्यिक और संस्कृत अभिरुचि का समझते थे और कवियों तथा कलाकारों के सम्पर्क को अपने सांस्कृतिक विकास के लिये आवश्यक मानते थे। ऐसी स्थिति में वे बहुधा पांडित्यपूर्ण काव्य को समझने और उसका आनन्द उठाने का दावा करते थे। यही कारण है कि इस युग के कवि अपने काव्य में अपनी प्रतिभा और कला का पूर्ण प्रदर्शन करने का प्रयत्न करते थे। ऐसा करने में वे बहुधा संस्कृत साहित्य शास्त्र का आश्रय लेते थे और उसके अनेक सिद्धांतों के अनुरूप काव्य सृजन करते थे। इस प्रकार वह अपने साहित्यिक पांडित्य की धाक जमाकार प्रशंसा के पात्र बनने का प्रयत्न करते थे।

रीतिकाल के कवि अपने आचार्यत्व का भी दावा रखते थे। उन्होंने संस्कृत के साहित्य शास्त्र विषय से सम्बन्धित ग्रन्थों के आधार पर अपने ग्रंथों की रचना की। पर संस्कृत साहित्य-शास्त्र के पाँच सम्प्रदायों—रस, अलंकार ध्वनि, वक्रोक्ति और रीति— में से केवल 'रस' और 'अलंकार' दो ही पर अधिकांश रीति ग्रंथों की रचना की गई। अलंकार ग्रंथों में उन्होंने प्रायः प्राचीन संस्कृत आचार्यों—दंडी, भामह, उद्भट को न मान कर परवर्ती संस्कृत आचार्यों के सरल शैली में लिखे ग्रंथों को ही आधार बनाया। उन्होंने अधिकतर जयदेव के 'चन्द्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' की परम्परा पर अपने ग्रथों की रचना की। रस निरूपण के लिये भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' को प्राय: कवियों ने आधार बनाया। कुछ ने मम्मटाचार्य के 'काव्य प्रकाश' विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' और भरत के 'नाट्य-शास्त्र' से भी सहायता ली। केवल केशव ने उपर्युक्त ग्रंथों से सामग्री न लेकर दंडी के 'काव्यादर्श' और अमरचंद के 'कवि कल्पलता वृत्ति' को आधार बनाया। अतएव हम देखते हैं

---

[३] एफ० ई० कवी०, 'हिस्ट्री आफ हिन्दी लिट्रेचर'. कलकत्ता, १९२०, पृ० ९२

The separation of the Chakwa bird from its male at night; the eager waiting of the chatak bird, who is supposed to drink only rain drops, for the beginning of the rainy season; the chakwa bird, that is never happy except when gazing at the moon; the swan that knows how to separate milk from water with which it has been mixed—these and many other stock metaphors continually recurred in poetry.

कि इस युग में रीति-निरूपण का कार्य इन राज्याश्रित कवियों द्वारा यथेष्ठ मात्रा में सम्पन्न हुआ। अलंकार और रस पर लिखे गये ग्रंथों में से कुछ प्रमुख नाम ये हैं :—

अलंकार सम्प्रदाय :—केशव की 'कविप्रिया,' महाराजा जसवंत-सिंह का 'भाषा भूषण', मतिराम का 'ललित-ललाम', महाराजा रामसिंह का 'अलंकार-दर्पण' आदि।

रस संप्रदाय :—केशव की 'रसिक प्रिया', मतिराम का 'रस राज,' महाराजा रामसिंह का 'रस निवास' और 'रसविनोद', देव का 'भाव-विलास' आदि।

हिन्दी में साहित्य-शास्त्र पर सबसे पहले ग्रंथ 'कवि प्रिया,' और 'रसिक प्रिया' केशवदास ने लिखे। ये ग्रंथ भक्तिकाल और रीतिकाल के संक्राति युग के हैं। नियमित रूप से साहित्य-शास्त्र पर ग्रंथ केशव के पचास वर्ष उपरान्त रीतिकालीन कवियों ने लिखे। इस साहित्य-शास्त्र के विवेचन अथवा रीति-निरूपण के कार्य में हमें दो वर्ग के कवि मिलते हैं—एक तो वे कवि जो वास्तव में आचार्य न थे और अपनी काव्यात्मक वृत्ति का प्रदर्शन मात्र रीति-ग्रंथों के द्वारा करते थे। वे लक्षणों के साथ-साथ छन्दों में अपने उदाहरण भी देते जाते थे। दूसरे वे कवि थे जो वस्तुतः आचार्य थे और जिनका उद्देश्य साहित्य-शास्त्र पर ग्रंथ लिखना था। इसमें दूसरे वर्ग के साहित्यकार केवल कुछ ही थे जिनमें महाराजा जसवंत सिंह और भिखारी दास का नाम लिया जा सकता है। अन्य काव्य-शास्त्री मूलतः कवि थे जिन्होंने रीति-निरूपण केवल परम्परा-निर्वहण के लिये किया। अतएव इनका विषय प्रतिपादन सर्वथा स्थूल रहा और वे सूक्ष्म विवेचन करने में असमर्थ रहे।

रीति-कालीन अधिकांश काव्य-शास्त्रियों ने संस्कृत साहित्य-शास्त्र के नव रसों—शृंगार, रौद्र, वीर, वीभत्स, अद्भुत, भयानक, हास्य, करुण और शांत—में से केवल शृंगार को ही प्रधानता दी और उनकी दृष्टि उसके विवेचन में ही आद्योपान्त लगी रही। मतिराम का 'रसराज', केशव का 'रसिक प्रिया', देव के 'भावविलास' और 'रसविलास', और पद्माकर का 'जगतविनोद' शृंगार रस पर लिखे कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं। शृंगार के आश्रय-आलम्बन, नायक-नायिका हैं। अतएव इन कवियों ने नायक-नायिका-भेद का वर्णन विस्तार के साथ किया। नायक और नायिका में भी नायिका के प्रति कवियों का विशेष आकर्षण रहा। नायिका के नख से लेकर शिख तक अंगों ('नख-शिख-वर्णन') और

उसके अनेक भेदों ('नायिका-भेद') का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया। नायिका की जाति, कर्म, गुण, देश, वय, अंग-रचना, कुल आदि आधारों पर उसके बहुसंख्यक भेद किये गये और उसके लक्षणों को उदाहरणों के साथ छन्द बद्ध किया गया। रीतिकाल की दो सौ वर्षों की लम्बी अवधि में कवियों का नायिका-भेद में अनवरत आकर्षण रहा और उसी विषय पर इस काल का सबसे अधिक काव्य लिखा गया। शृंगार की संयोग और वियोग दशाओं का विस्तृत वर्णन हुआ। अष्टयाम की कविता में नायक और नायिका का दिन भर का जीवन चित्रित किया गया। संयोग और वियोग की स्थितियों में षट्ऋतुओं और बारह मासों में उनके परिवर्तित स्वरूपों का वर्णन भी प्रचुर मात्रा में किया गया। इस प्रकार नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, अष्टयाम, षट्ऋतु वर्णन, शृंगार के संयोग-वियोग पक्ष आदि पर प्रचुरता के साथ लिखा गया। रीतिकाल में शृंगार रस के प्रति कवियों का मोह इतना बढ़ गया कि वे सब नर-नारियों को नायक और नायिका रूप में देखने लगे। इनके लिये भगवान कृष्ण भी अब नायक थे, और राधा नायिका! राधा-कृष्ण काव्य के बहाने वे नायक-नायिका भेद का विस्तार के साथ वर्णन करते थे।

रीति कवियों में शृंगार के प्रति इस मोह का कारण स्पष्ट है। रीति कालीन काव्य राज्याश्रय में पला था और उसके लिये आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति को अभिव्यक्त करना आवश्यक था। जैसा कहा जा चुका है ये आश्रयदाता जीवन से पराङ्मुख हो केवल विलास ही में अपनी अभिव्यक्ति पाते थे। इनकी मनोवृत्ति बहुत कुछ क्षय के उस रोगी की भाँति थी जो अपनी मृत्यु को अवश्यम्भावी समझ कर कुछ देर के लिये जीवन के समस्त ऐन्द्रिक सुखों के आनन्द का उपभोग करना चाहता हो। इस मानसिक शैथिल्य के दर्शन हमें सामंतों, रईसों, अमीरों और राजाओं आदि में सर्वत्र होते हैं जिनके जीवन की अभिव्यक्ति रीतियुग की कविता में हुई थी। रीतियुगीन जीवन की उस मूल धारा का संबंध, जिसका दर्शन हम काव्य में करते हैं, इसी उच्च वर्ग से है। इस वर्ग का जीवन राजप्रासाद और उद्यानों के कृत्रिम वातावरण में पलता था, और इसी कृत्रिमता की झलक हमें इस युग के काव्य में मिलती है। अतः रीतिकालीन कविता की सौंदर्य भावना के मुख्य तत्व हैं—स्थूल रूप वर्णन, अलंकरण-प्रियता, रूढ़ि एवं परंपरागत रूपकों तथा उपमानों का प्रयोग, और सामंतीय जीवन के वैभव विलास की अभिव्यक्ति।

हम देख चुके हैं कि अधिकांशतः रीतिकालीन कविता संस्कृत साहित्य-शास्त्र के अनुसार नियम-बद्ध की गई थी। केवल कुछ कवियों ने इस नियम-

बद्धता को स्वीकार नहीं किया और वे मुक्त रूप से काव्य के माध्यम द्वारा अपने उद्‌गारों को व्यक्त करते रहे। पर ऐसे कवि अति न्यून संख्या में थे। ऐसे अनेक कवि थे जो लक्षणों की अपेक्षा उदाहरणों पर अधिक ध्यान देते थे। वे वास्तव में मूलतः कवि थे और केवल काव्यगत परंपरा के वश में आकर रीतिग्रंथ लिखते थे। वे बहुधा अपने छन्द पहले बना लेते थे तत्पश्चात् उनको रस अथवा अलंकार के रूप में बद्ध करते थे। मतिराम का 'ललित-ललाम' और भूषण का 'शिवराज भूषण' ऐसे ही ग्रंथ है। इन कवियों में बहुधा रीति-कालीन संकुचित दृष्टिकोण से बाहर निकलने की प्रवृत्ति भी मिलती है। उदाहरणार्थ यद्यपि शैली की दृष्टि से भूषण रीति निरूपण के बन्धन से मुक्ति न पा सके; किन्तु विषय की दृष्टि से वे श्रृंगार के मोह को छोड़ कर वीर रस की धारा प्रवाहित करने में सफल हो सके।

संक्षेप में आंग्ल प्रभाव से पूर्व के लगभग दो सौ वर्षों के हिन्दी काव्य का यही स्वरूप है। अतिशय नियम बद्धता (Formalism) और संकुचित दृष्टिकोण में पला यह सामन्तयुगीन काव्य अपनी मुक्ति के लिये तड़प रहा था। अगले अध्यायों में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि भारत में आंग्ल प्रभाव के साथ आने वाली शक्तियाँ कहाँ तक इस काव्य को उसके सामंतीय वातावरण से निकाल सकी हैं और उसकी रुद्ध आत्मा को प्रशस्त मार्ग प्रदान कर सकी हैं।

२

नवीन प्रभाव तथा उसकी प्रतिनिधि संस्थायें

(अ) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पहले कहा जा चुका है कि पाश्चात्य प्रभावने भारतके बौद्धिक विकास में एक गतिवर्द्धक शक्ति के रूप में कार्य किया है। किन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारत में पाश्चात्य विचारों का आगमन ब्रिटिश शासनकाल ही में विशेषतः अंग्रेजी संस्थाओं द्वारा हुआ है। अतएव यह पाश्चात्य प्रभाव मुख्यतः आंग्ल प्रभाव है, और जब हम पाश्चात्य प्रभाव की बात करते हैं तो हमारा संकेत इसी आंग्ल प्रभाव की ही ओर होता है। यदि हम अंग्रेजों की अपेक्षा पुर्तगीज़ अथवा फ्रांसीसी ऐसे किसी अन्य विदेशी शासनाधिकार में होते तो हमारी सांस्कृतिक स्थिति का आज कुछ दूसरा ही रूप होता। अतः हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव के परिणामों की खोज करने से पहिले यह आवश्यक है कि हम इस नवीन प्रभाव के विकास, प्रगति तथा उसकी प्रतिनिधि संस्थाओं की ओर एक विहंगम दृष्टि डालें। किन्तु सांस्कृतिक प्रभाव सदैव भौतिक परिस्थितियों के परिणाम होते हैं। अतएव हम सर्वप्रथम आधुनिक काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करेंगे।

(१) अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य योरोपीय जातियों से सम्पर्क

आधुनिक युग में योरपीय राष्ट्रों से भारत का संपर्क ईसा की १५वीं शती के अन्त से प्रारम्भ होता है। योरप निवासियों में सर्वप्रथम वास्को डिगामा (Vosco de Gama) सन् १४९८ में केप आफ गुड होप होता हुआ भारत में आया था। अतएव भारतीय तट पर उतरने वाले सर्वप्रथम पुर्तगीज थे। कुछ ही समय में पुर्तगालियों ने गोआ (Goa) पर विजय प्राप्त की तथा कुछ अन्य

प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया। कुछ समय के लिए भारत में पुर्तगाली राज्य का भविष्य यथेष्ट उज्ज्वल प्रतीत हुआ। सन् १५६१ की स्थिति का उल्लेख करते हुए स्मिथ कहता है[1] कि उस समय तक भारत के पश्चिमी तट पर दक्षिण के सुल्तानों से प्राप्त की गई अनेक सुरक्षित बस्तियों में पुर्तगाली पूर्ण रूप से बस गये थे और उनके बेड़े अरब सागर तथा फारस की खाड़ी से होने वाली व्यापारिक एवं धार्मिक यात्राओं का नियन्त्रण करते थे।

किन्तु इन प्रारंभिक सफलताओं के होते हुए भी भारत में पुर्तगाली राज्य का भविष्य प्रारंभ से ही अंधकारमय था। उन्होंने अपने राज्यका विस्तार देश के आभ्यंतरिक भागों में न जाकर मुख्यतः दक्षिणी भारत के तट पर ही किया था तथा उनके राज्य संख्या में कम तथा यत्र तत्र बिखरे हुए थे। इसके अतिरिक्त पुर्तगालियों ने अपनी निष्ठुरता, धार्मिक असहिष्णुता तथा नैतिक पतन के कारण अपने को भारतीय जन समुदाय की समस्त सद्भावनाओं से सर्वथा वञ्चित रखा था। फिर सन् १४८० से १६४० तक पुर्तगाल स्पेन के आधीन रहा जिसने पुर्तगाल की पूर्वी सम्पत्ति की ओर कोई ध्यान न दिया। भारत में पुर्तगाली शक्ति को अन्तिम आघात डच तथा अंग्रेजों से पहुँचा। फलस्वरूप १७वीं शती के मध्य तक भारत में पुर्तगाली शक्ति का पूर्णतः विनाश हो गया।

पुर्तगाली शक्ति के विनाश होने के पश्चात् सन् १५७५ में डचों ने चिनसुरा में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं। किन्तु उन्हें अधिक सफलता न मिल सकी और शीघ्र ही अंग्रेजों की प्रतिद्वन्द्वी शक्ति ने उनके भारत में साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न को नष्ट कर दिया। सन् १७५९ में चिनसुरा में डचों पर अंग्रेजों की विजय के पश्चात् भारत में डच शक्ति का शीघ्रता से ह्रास हुआ और १८०५ में चिनसुरा की डच बस्ती सुमात्रा द्वीप के विनिमय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्रदान कर दी गई।

---

[1] विंसेट ए० स्मिथ, 'आक्सफर्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया,' (१९१९) पृ० ३४८

The Portugese were strongly established on the Western coasts in fortified settlements taken from the Sultans of the Deccan and situated at Goa, with a considerable territory attached; Chaul, Bombain (Bombay) with neighbouring places; Basein, Daman and Diu. Their feet controlled the mercantile and pilgrim traffic of the Arabian sea and the Persian gulf. No other European power had gained any footing on the soil of India and no Englishman had ever landed in the country.

भारत के राजनीतिक क्षेत्र में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों का आगमन लगभग एक ही साथ हुआ। सन् १६०४ में फ्रांसीसियों ने पांडुचेरी (Pondicherry) नगर की स्थापना की तथा दो वर्ष पश्चात् चन्द्रनगर पर आधिपत्य कर लिया। डूप्ले (Dupleix), बूजे (Bussey), लैली (Lally) आदि फ्रांसीसी जनरल दृढ़ विश्वासी तथा साहसी व्यक्ति थे और वे अपनी प्रतिद्वन्द्वी योरपीय शक्तियों को परास्त देखना चाहते थे। १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् डूप्ले ने भारत के देशी राज्यों पर फ्रांसीसी प्रभाव डाल कर भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने की भूमिका प्रस्तुत की। उसने मुग़ल सम्राट् का प्रतिनिधि बन कर भारतीय सेना का संगठन किया। परन्तु उसे अपनी सरकार से कोई प्रोत्साहन न मिला और ब्रिटिश सामुद्रिक शक्ति एवं क्लाइव के साहसिक कार्यों ने उसके फ्रांसीसी साम्राज्य के स्वप्न पर पानी फेर दिया।

१८वीं शती के मध्य तक अंग्रेजों को छोड़कर भारत में अन्य सब योरपीय शक्तियाँ पूर्णतः विनष्ट अथवा जर्जर अवस्था को प्राप्त हो चुकी थीं। योरप की चार प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों में से डच तो भारत के राजनीतिक क्षेत्र को पूर्णतः छोड़ चुके थे। पुर्तगालियों की गोआ (Goa), डामन (Daman) और ड्यू (Diu) में तथा फ्रांसीसियों की पांडुचेरी तथा चन्द्रनगर में छोटी-छोटी बस्तियाँ रह गयीं थीं। अतः भारतीय जीवन तथा संस्कृति पर अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य किसी योरपीय जाति का सांस्कृतिक प्रभाव पड़ना असम्भव था।

(२) अंग्रेजों से सम्पर्क तथा आंग्ल प्रभाव का विस्तार

हम देख चुके हैं कि भारत में मुग़ल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् अंग्रेजों ने अपनी प्रतिद्वन्द्वी योरपीय शक्तियों को परास्त कर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित की। इसे पूर्णतः प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार आरम्भ किया और सन् १७५७ में प्लासी के प्रसिद्ध युद्ध में ब्रिटिश विजय के फलस्वरूप बंगाल 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के अधिकार में आ गया। तत्पश्चात् १७६४ में बक्सर के युद्ध में ब्रिटिश विजय से अंग्रेजों ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की मालगुजारी प्राप्त की तथा इन प्रदेशों पर व्यावहारिक रूप से नियंत्रण भी आरम्भ कर दिया। क्लाइव के जाने के पश्चात् भारत का पहला गवर्नर जनरल वारिन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) नियुक्त हुआ। हेस्टिंग्स अवध में एक तटस्थ राज्य (Buffer State) चाहता था अतएव रुहेला युद्ध (१७७३) में उसने अवध के नवाब को सहायता दी जिसके फलस्वरूप रुहेलखंड अवध में सम्मिलित कर लिया गया। रुहेलखंड पर

नवाब के आधिपत्य ने अवध तथा बंगाल को भी मराठाओं की बढ़ती हुई शक्ति से सुरक्षित कर दिया। दक्षिण में अंग्रेजों ने चौथे मैसूर युद्ध (१७६६) में मैसूर के शासक टीपू सुल्तान को परास्त किया और मैसूर राज्य का एक बड़ा भाग अंग्रेजी राज्य मे सम्मिलित कर लिया। उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (Lord Wellesley) ने दक्षिण के अनेक राज्यों को भी सम्मिलित करके ब्रिटिश राज्य का भारत में विस्तार किया।

सन् १८०२ में बसीन (Bassein) की सन्धि के अनुसार वेलजली ने पेशवा को ब्रिटिश नियंत्रण में ले लिया। इस सन्धि से सिन्धिया तथा बरार के भोंसला राजा क्रोधित हुए और इन मराठा सरदारों ने सन् १८०३ में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। भोंसला इस युद्ध में परास्त हुआ और देवगाँव की सन्धि के अनुसार कटक अंग्रेजों के हाथों में आ गया तथा भोंसला को सहायक सन्धि (Subsidiary Alliance) स्वीकार करनी पड़ी। उत्तर भारत में मराठा शक्ति के विनाश का कार्य जनरल लेक (General Lake) को सौंपा गया जिसने दिल्ली की ओर बढ़कर सिन्धिया को पराजित किया तथा सम्राट् शाह आलम को ब्रिटिश सुरक्षा में लिया। सिन्धिया ने सहायक सन्धि स्वीकार की तथा ब्रोच (Broach), अहमदनगर तथा गंगा-यमुना के मध्य के प्रदेश का अपना अधिकार अंग्रेजों को दे दिया। उत्तरी भारत में वेलेजली ने अवध के नवाब को एक नई सन्धि के लिए विवश किया जिसके परिणामस्वरूप गोरखपुर, रुहेलखंड और दोआब कम्पनी के अधिकार में आ गये। मारकिन ऑव हेस्टिंग्स (Marquis of Hastings) के समय में तीसरे और अन्तिम मराठा युद्ध में प्रमुख मराठा सरदारों की शक्ति का पूर्ण विनाश हो गया, तथा भारत में अंग्रेजों ने सर्वोच्च सत्ता स्थापित की। सन् १८३३ और १८५३ के मध्यकाल में अंग्रेजों ने पंजाब और सिन्ध पर विजय प्राप्त की एवं लार्ड डलहौजी (Lord Dalhousie) की नीति ने अनेक देशी राज्यों को ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया। अतः १६वीं शती के प्रारम्भ में समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत आ गया।

(ब) आंग्ल प्रभाव की प्रतिनिधि संस्थाएँ

हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम उन विभिन्न संस्थाओं पर विचार करें जिनके माध्यम द्वारा अंग्रेज़ी साहित्य और विचार हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश में प्रसार पा सके। इस संबंध में सर्वप्रथम हमारा ध्यान 'फोर्ट विलियम कालिज' की ओर आकृष्ट होता है।

(१) 'फोर्ट विलियम कालिज' (Fort William College)

कलकत्ते में 'फोर्ट विलियम कालिज' की स्थापना ने हिन्दी साहित्य तथा भाषा को नया रूप देने में अत्यन्त सहायता प्रदान की। इस कालिज का कार्य सन् १८०० में कम्पनी के योरपीय कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं, इतिहास तथा हिन्दू-मुस्लिम कानून सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करने के हेतु प्रारम्भ हुआ। सन् १८०१ में कम्पनी के कर्मचारियों के लिए भारतीय भाषाओं का सामान्य ज्ञान एक अनिवार्य योग्यता समझी जाने लगी। इस उद्देश्य प्राप्ति के हेतु कालिज में प्रारम्भ ही से अरबी, फारसी तथा हिन्दुस्तानी के अध्ययन का प्रबन्ध सुचारु रूप से किया गया। हिन्दुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष डा० गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने हिन्दी और उर्दू पुस्तकों की रचना को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। डा० गिलग्राइस्ट की अध्यक्षता में लिखी गई हिन्दी पुस्तकों ने जनता में खड़ी बोली हिन्दी में यथेष्ट रुचि उत्पन्न कर दी। यही खड़ी बोली हिन्दी कुछ समय पश्चात् ब्रज भाषा के स्थान पर गद्य तथा पद्य दोनों की माध्यम बनी। पुस्तकों के लेखन तथा सम्पादन के अतिरिक्त 'फोर्ट विलियम कालिज' के अधिकारियों ने कोषों (Dictionaries) की रचना का भी प्रबन्ध किया। उन्होंने सामयिक परीक्षाओं के परिणामों के अनुसार सफल छात्रों को पुस्तकों, पदकों तथा धन के रूप में पुरस्कार प्रदान करके उन्हें आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त कालिज में प्रति वर्ष गवर्नर जनरल, उच्च पदाधिकारीगण, कालिज के अध्यापक तथा छात्र, एवं नगर के गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में विशिष्ट विषयों पर प्रान्तीय भाषाओं में सार्वजनिक वाद-विवाद भी होते थे तथा उनमें सफल होने वाले छात्रों को पुरस्कृत किया जाता था। अतः हम देखते हैं कि भारतीय भाषाओं के प्रोत्साहन में 'फोर्ट विलियम कालिज' द्वारा महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ।

(२) शिक्षा

'फोर्ट विलियम कालिज' कम्पनी के कर्मचारियों को आवश्यक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। अतएव वह जनता के जीवन और विचारों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित न कर सका। आंग्ल प्रभाव को जन-जीवन में प्रसार करने के हेतु एक अधिक विस्तृत संस्था की आवश्यकता थी और इस अभाव की पूर्ति अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली द्वारा सम्पन्न हुई। अतः यहाँ पर हम अंग्रेजी शिक्षा के विकास तथा प्रगति पर विचार करेंगे।

(क) राज्य निरीक्षण में शिक्षा:—१८वीं शती के प्रारम्भ से ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपनी शिक्षा सम्बन्धी कार्यवाहियों का सूत्रपात किया। सन् १६९८ के चार्टर एक्ट ने कम्पनी को योरपीय बालकों की शिक्षा के हेतु अपने राज्य में स्कूलों को स्थापित करने का आदेश दिया। इसके परिणामस्वरूप बम्बई, मद्रास और कलकत्ते में विद्यालयों की स्थापना की गई। तत्पश्चात् सन् १७८४ में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने अरबी और फारसी साहित्य के अध्ययन के हेतु 'कलकत्ता मदरसा' (Calculta Madarasa) की स्थापना की। संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए सन् १७९१ में 'संस्कृत कालिज' बनारस की स्थापना हुई। इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य अंग्रेज न्यायाधीशों की सहायता के हेतु हिन्दू और मुस्लिम कानून संबंधी योग्य विशेषज्ञ बनाना था। सन् १८०० में कलकत्ते में 'फोर्ट विलियम कालिज' कम्पनी के कर्मचारियों की शिक्षा के लिए स्थापित हुआ। भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने में इस संस्था के कार्य का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

अतः १८वीं शती के अन्त तक कम्पनी ने भारतीय जनता को शिक्षित करने का अपना कोई उत्तरदायित्व अनुभव नहीं किया। किन्तु सन् १७९१ और १८१३ के मध्यकाल में इंग्लैण्ड के कतिपय मानवतावादी सुधारक (Philanthropists) कम्पनी को भारतीयों की समुचित शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए आन्दोलन कर रहे थे। सन् १७९३ के संशोधित चार्टर में चार्ल्स ग्रान्ट (Grant) तथा बिल्वरफोर्स (Wilberforce) ने इसको कार्यान्वित करने का सुझाव रखा। चार्ल्स ग्रान्ट ने भारत की तत्कालीन स्थिति पर एक टिप्पणी में लिखा कि भारत में वे अपनी भाषा, ज्ञान, विचार तथा धर्म का प्रसार कर भारतीयों के प्रति एक दृढ़ कर्त्तव्य का निर्वाह तथा मानवता की अक्षय सेवा करेंगे।[२] अतः इन सुधारकों ने यह अनुभव किया कि भारत की नैतिक तथा बौद्धिक स्थिति मुख्यतः शिक्षा द्वारा ही सुधारी जा सकती थी। किन्तु कम्पनी

---

[२] दे० टी० एन० सिक्यूरा, 'द एडयूकेशन आव इण्डिया' (आक्सफर्ड प्रेस, १९४८) पृ० २४

By planting our language, our knowledge, our opinions and our religion in our Asiatic countries, we shall put a great work beyond the reach of contingencies. We shall probably have wedded the inhabitants of these territories of this country (i. e. England), but at any rate we shall have done an act of strict duty to them and a lasting service to mankind.

के डाइरेक्टरों ने शिक्षा को अपना कर्त्तव्य सन् १८१३ के संशोधित चार्टर से पूर्व स्वीकार न किया। अतएव सन् १८१३ तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शिक्षा सम्बन्धी कार्यवाहियाँ ब्रिटिश स्वार्थ के परितोष ही में संलग्न रहीं।

सन् १८१३ का चार्टर एक्ट

भारतवर्ष में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात सन् १८१३ के चार्टर एक्ट से हुआ। इस चार्टर एक्ट में प्रतिवर्ष भारत में साहित्यिक पुनरुत्थान तथा भारतीयों को विविध विज्ञानों से परिचय कराने के हेतु न्यूनतम एक लाख रुपया व्यय करने का आदेश था।[३] उसमें गवर्नमेंट जनरल की कौंसिल में एक कानूनी सदस्य की नियुक्ति का भी सुझाव था और उस पद की पूर्ति के लिए लार्ड मैकाले (Lord Macaulay) को भारतवर्ष में भेजा गया। १८२३ में 'पब्लिक इन्सट्रक्शन कमेटी' बनाई गई और उसे शिक्षा संबन्धी एक लाख रुपये के अनुदान (Grant) का व्यय भार सौंपा गया तथा उसके समक्ष विगत दस वर्षों की संचित धनराशि को भी व्यवहार में लाने के लिए रखा गया। किन्तु इस स्थिति में यह संघर्ष उठ खड़ा हुआ कि चार्टर एक्ट में निर्देशित अनुदान को पूर्वी (oriental) अथवा पाश्चात्य शिक्षा में से किस पर व्यय किया जावे। प्रगतिशील भारतीयों ने, जिसमें राजा राममोहन राय प्रमुख थे, अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार का समर्थन किया। किन्तु इस दिशा में कोई निष्कर्ष न निकल सका और सन् १८३४ में जब कमेटी के पाँच सदस्य पाश्चात्य शिक्षा के और पाँच पूर्वी शिक्षा के पक्ष में थे तो समस्या ने और भी जटिल रूप धारण किया। ऐसी स्थिति में १८३५ में यह निश्चित किया गया कि समाधान के लिए दोनों पक्ष अपने तर्क गवर्नर जनरल की कौंसिल में भेजें। इसी समय लार्ड मैकाले ने, जो इस कमेटी का अध्यक्ष था,

---

[३] 'चार्टर एक्ट आव इण्डिया,' १८१३, सेक्शन ४३

A sum of not less than one lac of rupees in each year shall be set apart and applied to the founding and maintaining of colleges, schools, public lectures and other institutions for the revival and improvement of literature and encouragement of the learned natives of India, and for the introduction and promotion of a knowledge of the sciences among the inhabitants of the British territories in India.

अपना मत सन् १८३५ के पत्र (Minute) में पाश्चात्य शिक्षा के समर्थकों के पक्ष में दिया। इसके परिणामस्वरूप तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड बेंटिंग (Lord Bentinck) ने ७ मार्च सन् १८३५ को एक आदेश पत्र निकाला जिसमें समस्त उपलब्ध धनराशि को अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार में व्यय करने का आदेश था।

वुड का शिक्षा-पत्र (Wood's Education Despatch)

सन् १८५४ में कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के शिक्षा-पत्र ने, जिसे साधारणतः वुड का शिक्षापत्र कहते हैं, भारतीय जनता में योरोपीय ज्ञान के प्रसार के हेतु अनेक निश्चित योजनायें उपस्थित कीं। अतः उपर्युक्त सभी सुझावों और प्रस्तावों को इसी समय से कार्य रूप में परिणत किया जा सका। वुड के इस पत्र ने कम्पनी राज्य के प्रत्येक प्रान्त में एक सार्वजनिक शिक्षा का विभाग (Public Instruction Department) खोलने का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त देश में विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा हाईस्कूलों, मिडिल स्कूलों आदि की संख्या बढ़ाने का भी प्रयास किया गया। सभी अच्छे प्राइवेट विद्यालयों को जो धर्म निरपेक्ष (secular) शिक्षा प्रदान करते थे उदारतापूर्वक अनुदान (Grants-in-aid) देने का वचन दिया गया।

विश्वविद्यालयों की स्थापना

इस पत्र के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में विश्वविद्यालयों का संगठन कार्य प्रारंभ कर दिया और १८५७ में इनके विधान सम्बन्धी एक्ट भी पास हो गये। इन विश्वविद्यालयों की स्थापना के २५ वर्ष ही के मध्यकाल में अनेक महाविद्यालय जिनमें 'कैनिंग कालिज' लखनऊ (स्थापित १८६४) तथा 'मोहेमडन एंग्लो-ओरियन्टल कालिज' अलीगढ़ (१८७५) प्रमुख हैं, स्थापित हो गये। सन् १८७२ में 'म्योर सेंट्रल कालिज' इलाहाबाद की स्थापना हुई। तत्पश्चात् सन् १८८४ में शिक्षा कमीशन द्वारा उत्तर प्रदेश में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का सुझाव पाने पर १८८७ में प्रयाग विश्वविद्यालय का विधान संबन्धी एक्ट भी स्वीकृत हो गया।

ये समस्त भारतीय विश्वविद्यालय लन्दन विश्वविद्यालय के अनुकरण पर अन्य सहायक महाविद्यालयों के लिये संलग्न कार्य संस्था (affiliating type) के रूप में थे। किन्तु १८९८ में लन्दन विश्वविद्यालय एक संलग्न कार्य संस्था के अतिरिक्त अध्यापन विश्वविद्यालय (teaching university)

के भी रूप में परिणत किया गया। इस संशोधन के परिणामस्वरूप भारत में विश्वविद्यालयों के सुधार की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। अतः १६०४ के भारत विश्वविद्यालय एक्ट ने विश्वविद्यालयों के कार्यों का विस्तार किया तथा उन्हें अब परीक्षा लेने तथा उपाधि वितरण के अतिरिक्त अध्यापन कार्य के आयोजन का भी आदेश दिया गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन, १६१७-१६१६ की बैठक से विश्वविद्यालयों के अध्यापन कार्य को और भी प्रोत्साहन मिला। १६१७ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जिसकी स्थापना १६१५ में हुई थी और जो एक विशुद्ध अध्यापन विश्वविद्यालय (teaching residential u niversity) था सुचारु रूप से कार्य करने लगा। इसके उपरान्त १६२० में 'मुस्लिम एंग्लो-ओरियन्टल कालिज' अलीगढ़ और 'कैनिंग कालिज' लखनऊ विकसित होकर क्रमशः अलीगढ़ और लखनऊ विश्वविद्यालयों में परिणत हो गए। १६२१ में प्रयाग विश्वविद्यालय का पुनर्संगठन हुआ और उसे एक अध्यापन विश्वविद्यालय में परिणत किया गया; यद्यपि उसके साथ अनेक सहयोगी महाविद्यालय भी संलग्न रखे गये। १६२२ में दिल्ली विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में इन विश्वविद्यालयों के साथ ही पटना, नागपुर तथा आगरा विश्वविद्यालय भी संलग्न कार्य संस्था के रूप में स्थापित हो गये। प्रयाग विश्वविद्यालय को अब एक विशुद्ध एकात्मक-अध्यापन-विश्वविद्यालय में परिवर्तित कर दिया गया, और उससे संलग्न महाविद्यालयों को आगरा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कर दिया गया।

इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों में विश्वविद्यालयों की शिक्षा का प्रसार सम्पूर्ण हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश में हो गया।

(ख) ईसाई मिशन तथा उनकी शिक्षा संबंधी कार्यवाहियाँ:—भारत में आंग्ल प्रभाव के प्रसार में ईसाई प्रचारकों का कार्य अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है। उन्होंने अपने धर्म प्रचार के उद्देश्य से अपनी योरोपीय बस्तियों में विद्यालयों की स्थापना की। इस प्रकार पुर्तगाली धर्म प्रचारकों ने अपनी गोआ, दामन, ड्यू, कोचीन, हुगली आदि बस्तियों में, तथा फ्रांसीसी प्रचारकों ने पांडुचरी, माही, चन्द्रनगर तथा यनाम बस्तियों में विद्यालयों की स्थापना की। इन दोनों पुर्तगाली तथा फ्रांसीसी विद्यालयों में ईसाई धर्म प्रचारक अपनी जातीय भाषाओं तथा अपने कैथोलिक मत की शिक्षा प्रदान करते थे।

प्रोटेस्टेन्ट मत का प्रचार सर्वप्रथम बंगाल में दो डेनिश धर्म प्रचारकों—जीगनबाल्ग (Zieganbalg) और प्लूशो (Plutschou) ने सन् १७०६ में आरंभ किया और इसी समय से इनके शिक्षा संबंधी प्रयत्न आरंभ हुए। १७१३ में उन्होंने तामिल के मुद्रण-प्रेस का आविष्कार किया और सन् १७१७ में मद्रास में दो निःशुल्क विद्यालय (charity schools) भी स्थापित किये। सन् १७१६ में जीगनबाल्ग की मृत्यु हो गई किन्तु उसका कार्य अन्य धर्म प्रचारकों द्वारा चलता रहा।

अंग्रेजों का पहला प्रोटेस्टेन्ट मिशन सन् १७२७ में मद्रास आया और शीघ्र ही उसने दक्षिण में अनेक स्थानों में विद्यालय खोले। प्रारंभ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रोटेस्टेन्ट मत के प्रचार को प्रोत्साहित किया और मिशन की शिक्षा-संस्थाओं को समुचित अनुदान दिया। किन्तु कम्पनी के संचालकों ने शीघ्र ही अपनी नीति में संशोधन किया और धार्मिक विषयों में पूर्ण रूप से निरपेक्ष रहने की घोषणा की। अतः जब सन १७६३ में केरे (Carey), मार्शमैन(Marshman) तथा वार्ड (Ward) नाम के धर्म प्रचारक जो श्रीरामपुर त्रय (Serampur trio) के नाम से प्रसिद्ध हैं बंगाल में आये तो उन पर कंपनी राज्य के अंतर्गत जिलों में कार्य करने के लिए प्रतिबंध लगा दिया गया। फलस्वरूप उन्हें अपना कार्य सीरामपुर की डेनिश बस्ती तक ही में सीमित रखना पड़ा और वहीं उन्होंने सन् १७६६ में अपना मिशन स्थापित किया। उन्होंने विद्यालयों की स्थापना के साथ मुद्रण-कार्य का भी सूत्रपात किया और शीघ्र ही विविध आधुनिक भारतीय भाषाओं में सीरामपुर साहित्य का सृजन आरम्भ हो गया। उन्होंने इन भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया तथा १८०१ और १८३२ के मध्यकाल में बाइबिल के अनुवाद हिन्दी की विविध बोलियों में प्रकाशित हुये। किन्तु सीरामपुर मिशन में ११ मई सन् १८१२ की अग्नि में तथा १८५७ के सिपाही विद्रोह में ईसाई साहित्य का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। खड़ी बोली हिन्दी में बाइबिल का अनुवाद कुछ समय पश्चात् सन् १८७५ में विलियम कैरे द्वारा सम्पन्न हुआ।

१८१३ के चार्टर एक्ट ने अंग्रेज धर्म प्रचारकों के लिए भारत का द्वार खोल दिया था। अतः भारत में ईसाई धर्म का प्रचार अति वेग से प्रारम्भ हो गया था। तत्पश्चात् १८३३ में संसार के समस्त ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत में अपना धर्म प्रसार करने के लिए अनुमति दे दी गई। इसके परिणामस्वरूप १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध के अन्त तक समस्त उत्तरी भारत में ईसाई प्रचारकों ने अपने कार्य का विस्तार कर लिया और अनेक अंग्रेजी, अमरीकन और जर्मन

प्रकाशन समितियाँ ईसाई धर्म की पुस्तकें प्रकाशित करने के हेतु कार्य करने लगीं। हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में आगरा, मेरठ, वर्दवान, बनारस, आजमगढ़, जौनपुर, सहारनपुर, इलाहाबाद तथा फतेहगढ़ में ईसाई धर्म प्रचार के केन्द्र स्थापित हुए, तथा अनेक ईसाई विद्यालय और महाविद्यालय खुल गये।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में ईसाई धर्म प्रचारकों के ये शिक्षा संबंधी प्रयत्न अत्यन्त महत्व के हैं। सिक्यूरा के अनुसार भारत इन ईसाई धर्म प्रचारकों के द्वारा प्रदान की गई शिक्षा का सरकार द्वारा दी गई शिक्षा के अपेक्षाकृत अधिक ऋणी है। सन् १८५२-५३ में भारत की समस्त सरकारी शिक्षा संस्थाओं में केवल ३०,००० छात्र विद्याध्ययन करते थे जब कि मिशनरी संस्थाओं में छात्रों की संख्या तीन लाख से भी अधिक थी।[४] किन्तु यहाँ हमें यह भूलना न चाहिये इन ईसाई धर्म प्रचारकों के ये शिक्षा संबंधी कार्य भारतीयों के धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से थे न कि इन्हें शिक्षित करने के। राधाकृष्णनन् के अनुसार उस समय के ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत में प्रचलित समस्त धर्म त्रुटि पूर्ण तथा तिमिराच्छादित प्रतीत होते थे और उन्हें वे मूलतः नष्ट कर देना चाहते थे।[५]

हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रसार का संक्षिप्त इतिहास हम ऊपर दे चुके हैं। इससे स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दी

---

[४] टी० एन० सिक्यूरा, 'द एड्युकेशन आव इण्डिया' पृ० ४४

India owes much more to education given by missionaries at hardly any cost to herself—than by her own Government—with money taken from her.........In 1852-53 there were less than 30000 students in all the Government educational institutions in India, and more than 300000 in missionary Schools.

[५] एस० राधाकृष्णन्, 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' पृ० २२

The Christian missionaries of that day did not recognize any thing vital or valuable in the Indian religions. For them the native faiths were a mass of unredeemed darkness and error. They had supreme contempt for heathen religions and wished to root them out lock, stock and barrel.

साहित्य में युगान्तर उपस्थिति होने के समय जिसका आरम्भ हम १८ वीं शती के मध्यकाल से कह सकते हैं, समस्त हिन्दी प्रदेश में अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार हो गया था, और इस प्रकार नये साहित्य के सृजन के हेतु पूर्ण पृष्ठभूमि बन चुकी थी।

(३) प्रेस

भारत में आंग्ल प्रभाव का विस्तार करने में प्रेस का माध्यम रूप में कार्य अत्यधिक महत्व का रहा है। वह आरम्भ ही से भारतीय विद्वानों के हाथ में एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में रहा है जिसकी सहायता से वे भारत के साहित्यिक क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित कर सके।

भारत में मुद्रण कला तथा पत्रकारिता दोनों का प्रादुर्भाव लगभग एक साथ सन् १७८० में हुआ था। इसी वर्ष भारत का पहला अंग्रेजी समाचार पत्र 'बंगाल गजट' प्रकाशित हुआ जो दो वर्ष पश्चात् कुछ आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने के कारण बन्द कर दिया गया। इसके पश्चात् 'इण्डियन गजट,' 'बंगाल हर कारू,' 'कलकत्ता गजट,' आदि अनेक पत्र प्रकाशित हुए। फ्रांसीसी युद्ध के समय विरोधियों को युद्ध संबंधी संदेशों से वंचित रखने के उद्देश्य से वेलेज़ली ने सर्वप्रथम प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाए। इसके पश्चात् ये प्रतिबन्ध लार्ड मिंटो द्वारा इन्ही कारणों से और भी अधिक कड़े रूप से आरोपित किये गये। लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा लिया किन्तु उसे कतिपय विषयों पर विचार व्यक्त करने का सर्वथा निषेध कर दिया गया।

प्रेस की स्वतंत्रता का कार्य सम्पन्न करने का श्रेय सर चार्ल्स मेटकाफ को है जिन्होंने सन् १८३५ में प्रेस सम्बन्धी सभी प्रतिबंध हटाकर उसे पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र संस्था का रूप दिया। मेटकाफ़ ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारतीयों को जान बूझ कर अज्ञानावस्था में रख कर इन पर शासन करने का उद्देश्य किसी प्रकार भी अंग्रेज शासकों के लिये गौरव का विषय नहीं हो सकता। उनके अनुसार भारत में अंग्रेजी राज्य कुछ उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये था न कि साम्राज्य लिप्सा के लिये। भारतवासियों को योरोपीय कला और विज्ञान का परिचय देकर उनकी स्थिति में सुधार करना एक ऐसा

ही उद्देश्य था और इसके लिए प्रेस की स्वतन्त्रता के अतिरिक्त अन्य कोई शक्तिशाली साधन सम्भव नहीं था।[६]

१८५७ के विद्रोह के उपरान्त प्रेस की गतिविधि को एक नई दिशा मिली। अभी तक प्रेस पर अंग्रेजों का अधिकार था और इस कारण प्रेस द्वारा व्यक्त किये गये विचार अंग्रेजी शिक्षित प्रगतिशील भारतीयों के विचारों से बहुधा मेल न खाते थे। ऐसी स्थिति में इन शिक्षित भारतीयों का अपने निजी समाचार पत्रों की आवश्यकता अनुभव करना स्वाभाविक था। फलस्वरूप भारतीयों ने अंग्रेजी में अनेक समाचार पत्र तथा सामयिक पत्रिकायें निकालनी आरंभ कर दीं। किन्तु अंग्रेजी प्रेस कुछ सीमित व्यक्तियों की ही आवश्यकता पूर्ति कर सकता था, और जन-मन के विचारों और आकांक्षाओं को ध्वनित करने में सर्वथा असमर्थ था। अतएव विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रेस की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और शीघ्र ही ऐसे प्रेस भी कार्य करने लगे।

किन्तु प्रेस एक स्वतंत्र संस्था के रूप में अधिक समय तक न रह सका और सन् १८७८ में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट द्वारा देशी समाचार पत्रों पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। कुछ समय पश्चात् ये प्रतिबन्ध लार्ड रिपन द्वारा हटा लिये गये परन्तु १६०८ में एक अन्य प्रेस एक्ट द्वारा बंग भंग से उत्पन्न बाधाओं के परिणामस्वरूप वे पुनः आरोपित कर दिये गये।

भारत में प्रेस के आरंभिक काल का यही संक्षिप्त इतिहास है। अंग्रेजी संस्कृति के प्रसार में इस प्रेस का कार्य वास्तव में प्रशंसनीय है। हम अगले

---

[६]कये, 'लाइफ आँव लार्ड मेटकाफ,' भाग २, पृ० २६२-२६४

If the argument be, that the spread of knowledge may eventually be fatal to our (English) rule in India, I maintain that whatever may be the consequence it is duty to communicate the benefits of knowledge. If India could be preserved as a part of the British empire by keeping its inhabitants in a state of ignorance, our dominion would be a curse to this country.........We are, doubtless, here for higher purposes, one of which is to pour the enlightened knowledge and civilization, the arts and sciences of Europe, over the land, and thereby improve the condition of the people. Nothing, surely, is more likely to conduce to these ends than the liberty of the Press.

अध्यायों में देखेंगे कि हिंदी की नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास तथा प्रगति में प्रेस का सहयोग कितना सराहनीय रहा है।

(४) साहित्यिक संस्थायें

आंग्ल प्रभाव की माध्यम स्वरूप प्रतिनिधि संस्थाओं के वर्णन में पाश्चात्य शैली पर निर्मित साहित्यिक संस्थाओं का भी उल्लेख आवश्यक है। हम पहले अध्याय में देख चुके हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में राज दरबार ही साहित्यिक केन्द्रों का कार्य करते थे। किन्तु सामन्तीय व्यवस्था के समाप्त होने पर कलाकारों और साहित्यकारों को राज दरबारों में आश्रय पाने का द्वार भी बन्द हो गया, और उन्हें अपना कार्यभार स्वयं ही सम्हालना पड़ा। अतएव साहित्यिक रुचि के विद्वानों ने साहित्यिक गोष्ठियों, समितियों तथा संघों के रूप में नवीन साहित्यिक केन्द्रों की व्यवस्था की। इन साहित्यिक संस्थाओं ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल में उसकी गतिविधि को नया मोड़ देने में अत्यन्त सहायता दी।

हिंदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक संस्था जिसका उल्लेख यहाँ आवश्यक है 'नागरी प्रचारिणी सभा' है जिसकी स्थापना १८८३ में डाक्टर श्यामसुन्दरदास के सद्प्रयत्नों से हुई थी। इस संस्था ने उत्तर भारत में हिन्दी को उन्नतिशील बनाने में प्रशंसनीय कार्य किया है। हिंदी में शोध कार्य को भी इस संस्था द्वारा बल मिला। सन् १९०० में न्यायालयों में हिंदी को आरम्भ करने का श्रेय भी इसी संस्था को है।

एक दूसरी उल्लेखनीय संस्था सन् १९१० में स्थापित 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' है। सम्मेलन ने अपनी गतिविधि को उत्तरी भारत तक ही सीमित न रखकर, दक्षिण भारत में भी अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार किया। इस संस्था ने हिंदी की विविध परीक्षाओं का आयोजन कर हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार में प्रशंसनीय कार्य किया। इन दो संस्थाओं के अतिरिक्त तीसरी मुख्य साहित्यिक संस्था 'प्रगतिशील लेखक संघ' है। इसकी प्रथम बैठक सन् १९३६ में लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुई और तब से यह सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रहा है।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि ये समस्त साहित्यिक संस्थाएँ पाश्चात्य शैली पर संगठित की गई थीं, और उन्होंने हमारे साहित्य में युगांतर उपस्थित करने में पर्याप्त सहायता प्रदान की है।

(५) नवीन वातावरण

आंग्ल प्रभाव उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त वातावरण सम्बन्धी अनेक अदृश्य मार्गों से भी भारतीय समाज तथा संस्कृति पर अंकित हुआ है। इस नवीन वातावरण की एक मुख्य देन भारतीयों के दृष्टिकोण को विस्तृत करना था। अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतीय संस्कृति की आत्मा एक अत्यन्त संकीर्ण वातावरण में रुद्ध हो अपनी मुक्ति की कामना कर रही थी। अंग्रेजी संस्कृति के संस्पर्श ने देश को संकीर्णता से निकाल कर उसका बाह्य संसार से सम्पर्क स्थापित कर दिया। तार, रेल और समाचार पत्र आदि नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से हमारा दृष्टिकोण और भी विकसित होता गया।

जनता में उन्नति की भावना उत्पन्न करना इस नवीन प्रभाव की दूसरी मुख्य देन रही है। नवीन वातावरण की इस विशेषता का परिणाम भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में—सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सुधार के रूप में हुआ और इस प्रकार भारतीय नवोत्थान का प्रादुर्भाव हुआ।

वस्तुतः देखा जाय तो वातावरण सम्बन्धी प्रभाव सभी दिशाओं में समान रूप से क्रियात्मक रहा है। हमारे प्रत्येक कार्य में पाश्चात्य शैली का अनुकरण इन परिवर्तित परिस्थितियों का स्पष्ट परिणाम है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय समाज के मानसिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का श्रेय वस्तुतः आंग्ल प्रभाव को है। शिक्षा की अंग्रेजी प्रणाली, ईसाई मिशन, प्रेस, साहित्यिक संस्थायें तथा नवीन वातावरण आदि सब ने आंग्ल प्रभाव के प्रसार में माध्यम के रूप में कार्य किया है। अगले अध्याय में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार इस आंग्ल प्रभाव ने हमारे जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पक्षों में युगांतर उपस्थित किया है एवं हमारे साहित्य को आधुनिक रूप देने में सहायता प्रदान की है।

३

भारत में नवोत्थान

(अ) भूमिका

भारतीय जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि में पिछले लगभग १५० वर्षों से जो नव-चेतना आई है उसका बहुत कुछ कारण आंग्ल-भारतीय सम्पर्क है। यह वस्तुतः एक विरोधाभास है कि भारत में एक विदेशी सत्ता का राज्य किस प्रकार एक सांस्कृतिक नवोत्थान का कारण बन सका। भारत में अंग्रेज किसी सुधार की भावना से नहीं आए थे वरन् उनका एकमात्र उद्देश्य व्यापारी-वर्ग के रूप में भारत का आर्थिक शोषण और अन्त में अंग्रेजी राज्य स्थापित करना था। पर उनका आगमन और क्रमशः भारत पर अधिकार एक ऐसे समय हुआ जब कि यहाँ का बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन अपनी अधोगति के चरम बिन्दु पर पहुँच चुका था। ऐसी स्थिति में भारत का एक प्रगतिशील जाति से सम्पर्क उसके लिए विविध रूप से अति कल्याणकारी सिद्ध हुआ। अंग्रेज नवीन यान्त्रिक औद्योगिक सभ्यता के विश्व भर में अग्रदूत थे और जब उनकी इस विकसित सभ्यता का भारतीय जीवन पर प्रभाव पड़ा तो यहाँ के सामंतीय व्यवस्था पर आधारित मध्ययुगीन समाज में एक नव जागरण और उत्थान दिखाई देने लगा। अतः अंग्रेज, अनजाने ही, भारत में क्रान्ति और परिवर्तन के प्रतिनिधि सिद्ध हुए।[1]

---

[1] दे० जवाहरलाल नेहरू, 'द डिस्कवरी आफ इण्डिया' (कलकत्ता; सिगनट प्रेस, द्वितीय संस्करण, १६४६) पृ० २६८-२६६

They (the British) represented a new historic force which was going to change the world and were thus, unknown to themselves the forerunner and representatives of change and revolution.

अतः भारत में अंग्रेजी राज्य एक महत्वपूर्ण घटना थी। अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से हमारे देश में नये विचार, नये भाव और जीवन के नये मूल्य आए। उनका प्रभाव हमारे देश पर क्या पड़ा, इसका सूक्ष्म विवेचन श्री अरविन्द ने किया है।[२] उनके अनुसार भारतीय संस्कृति अपने प्रारम्भिक काल में अति समृद्ध थी पर वह एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच कर रुक गई थी जहाँ उसे प्रगति और नवविकास की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिति में उसकी प्रवृत्ति कुछ तो पीछे की ओर मुड़ने की हुई और कुछ पथभ्रान्त होने की। इस समय

---

[२] अरविन्द घोष, 'द रेनासां इन इण्डिया' (तीसरा संस्करण) पृ० २७-२६

The beginnings (of Indian culture) were superlative, the developments very great, and at a certain point where progress, adaptation, a new flowering should have come in the old civilisation stopped short, partly drew back, partly lost its way.........It was at this moment that the European wave swept over India. The first effect of this entry of a new and opposite civilization was the destruction of much that had no longer the power to live, the deliquescence of much else, a tendency to the disintegration of the rest. A new activity came in, but this was at frist, crudely and confusedly imitative of the foreign culture. It was a crucia moment and an ordeal of perilous severity; a less vigorous energy o might well have foundered and perished under the double weight of the deadening of its old innate motives and a servile imitation of alien ideas and habits. History shows us how disastrous the situation can be to nations and civilizations. But fortunately the energy of life was there, sleeping only for a moment, not dead, and given that energy, the evil carried with itself its own ruin. For whatever temporary rotting and destruction this crude impact of European life and culture has caused, it gave three needed impulses. It revived the dormant intellectual and critical impulse; it rehabiliatad life and awakened the desire of new creation; it put the reviving Indian spirit face to face with novel conditions and the urgent necessity of understanding, assimilating and conquering them.

भारत में योरप की नवीन और विरोधी संस्कृति के आने का पहला प्रभाव तो यह पड़ा कि हमारी बहुत सी आस्थायें जो अशक्त हो चली थीं समाप्त होने लगीं, और विदेशी संस्कृति का अंधानुकरण प्रारम्भ हो गया। इतिहास बताता है कि इस प्रकार के विदेशी आचार-विचार का अनुकरण और जातीय प्रेरणाओं का उन्मूलन किसी भी राष्ट्र अथवा सभ्यता के लिए अत्यन्त संकट का समय उपस्थित कर सकता है। पर भारत की अति समृद्धि संस्कृति का इस आघात से उन्मूलन न हुआ। योरपीय जीवन और संस्कृति के सम्पर्क का जो कुछ भी दुष्परिणाम हुआ हो पर इसने तीन अति आवश्यक प्रेरणायें अवश्य दीं। प्रथम उसने हमें एक बौद्धिक और आलोचक की पैनी दृष्टि दी, द्वितीय उसने हमारी नवनिर्माण की शक्ति में आवेग भर दिया, और अन्त में उसने भारतीय संस्कृति की आत्मा का पुन-र्स्थापन कर उसे नवीन परिस्थितियों के समझने, अपनाने और अन्त में उन पर विजय पाने का अवसर दिया।

श्री अरविन्द द्वारा इंगित इन तीनों प्रवृत्तियों का भारतीय जीवन पर अत्यन्त महत्व का प्रभाव पड़ा। योरपीय संस्कृति की प्रगतिशील चेतना के संस्पर्श से भारतीय मानस में नवविकास के बीज अंकुरित हो उठे और शीघ्र ही दीर्घ-काल से सुप्त और विमूर्च्छित राष्ट्र में नव चेतना के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। हम इस अध्याय में देखेंगे कि इन प्रवृत्तियों ने भारतीय जीवन और जगत के प्रत्येक विभाग—सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक, में किस प्रकार युगान्तर उपस्थित किया और राष्ट्र में ऐसी जाग्रति की जिसे भारतीय पुनरुत्थान की संज्ञा दी जाती है।

(ब) सांस्कृतिक आन्दोलन

योरपीय सम्पर्क के पूर्व ही भारतीय संस्कृति और जीवन में अनेक विघटनकारी शक्तियाँ कार्य करने लगी थीं। पाश्चात्य संस्कृति के संस्पर्श ने इस विघटन की प्रक्रिया को और भी तीव्र कर दिया और कुछ समय के लिए विदेशी तत्व हमारी संस्कृति पर पूर्णतः आच्छादित हो गये। यह समय भारत में ईसाई-यत के प्रचार और डेरोज़ीयनिज्म[३] (Derozianism) ऐसे अति विध्वंसात्मक

---

[३]डेरोजी एक एंग्लो-इण्डियन स्वतन्त्र विचारक था जिसके शिष्य सम्मिलित रूप से नव बंगाल (Young Bengal) के नाम से कहलाये जाते थे। वह रूढ़ि और परंपरा का विनाश, सामाजिक और धार्मिक नियमों का खंडन तथा स्त्री शिक्षा का समर्थन करता था। उसकी विध्वंसात्मक प्रवृत्ति इतनी अधिक थी कि वह निःसंकोच मदिरा और गौ मांस का सेवन करता था।

(Ultra-Radical) मतों के प्रसार का था। पर यह अनुकरण देर तक न रहा। शीघ्र ही वैज्ञानिक युग की संदेहात्मक प्रवृत्ति ने, जिसका पोषण अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत के प्रचार द्वारा हुआ, भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की पुनर्स्थापना की। यह भारतीय संस्कृति के पुनर्स्थापन और धार्मिक सुधारों का युग था जिसकी अभिव्यक्ति ब्राह्म समाज, आर्य समाज, थीयोसफी इत्यादि में हुई। ये सब आन्दोलन विविध प्रकार से भारतीय आत्मा की पुनर्स्थापना के द्योतक हैं।

(१) ब्राह्म समाज

१६वीं शती के प्रारम्भिक काल में भारतीय जन-जीवन में नव जागरण का बहुत कुछ श्रेय ब्राह्म समाज के प्रवर्तक राम मोहन राय (१७७४-१८३३) को है। जब भारत में ईसाई मत का आन्दोलन पूर्ण वेग से था, उस समय राजा राम मोहन राय ईसाई मत की अच्छाइयों को समझने और उन्हें अपनाने का प्रयत्न कर रहे थे। इन्होंने मूर्तिपूजा और प्रचलित अनेक सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। पर राजा राम मोहन राय भारतीय संस्कृति के पूर्ण ज्ञाता थे तथा इन्होंने हिन्दू धर्म के अन्तर्गत विविध मतों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म का भी गहन अध्ययन किया था। वे संस्कृत के विद्वान थे और उन्होंने पाँचों मुख्य उपनिषदों के अतिरिक्त अनेक वेदान्त की पुस्तकों का भी बंगला में अनुवाद किया। उन्होंने सिद्ध किया कि हिन्दू धर्म वस्तुतः एकेश्वर-वादी है और वेदों में लिखित धार्मिक सिद्धान्त ईसाई मत के सिद्धान्तों से अधिक तर्क एवं युक्ति-संगत हैं। पर वे धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता अनिवार्य समझते थे और एक ईश्वर में विश्वास करने वाले सब व्यक्तियों को अपना धर्म बन्धु मानते थे। अपनी पुस्तक 'कुछ नम्र सुझाव'(Humble Suggestions) १८२३ में उन्होंने इसी धार्मिक सहिष्णुता पर अधिक ज़ोर दिया है। उन्होंने इन नए विचारों को कार्यान्वित करने के हेतु सन् १८२३ में ब्राह्म समाज की स्थापना की। यद्यपि ब्राह्म समाज वस्तुतः हिन्दू धर्म ही था, परन्तु उसका बाह्य स्वरूप पाश्चात्य ढंग पर रखा गया था और उसमें उपदेश तथा संगीत द्वारा सामूहिक रूप से ईश्वर की आराधना (Congregational worship) का विधान था।

राजा राम मोहन राय की मृत्यु के पश्चात् ब्राह्म समाज आन्दोलन के नेतृत्व का भार रवीन्द्र नाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर को संभालना पड़ा। महर्षि ने राजा राम मोहन राम से भी अधिक भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को ब्राह्म समाज द्वारा स्थायी रखने का प्रयत्न किया। ब्राह्म-समाज में

क्रान्तिकारी परिवर्तन केशवचन्द्र सेन द्वारा सम्पादित हुआ। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में पाश्चात्य विचारों का प्रचलन कर विविध जातियों में विवाह की व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया तथा स्त्रियों को भी ब्राह्म समाज में सम्मिलित होने को आज्ञा प्रदान की। उन्होंने सन् १८७८ में ब्राह्म-समाज के स्थान पर 'साधारण समाज' की स्थापना की और उसमें रूढ़ि एवं गुरुडम का सर्वथा वहिष्कार कर उसे नवीन जनवादी ढंग पर ढाला।

अतएव ब्राह्म समाज एक समन्वयवादी तथा विश्व बन्धुत्व की भावना से पूर्ण संस्था थी। श्री अरविन्द के अनुसार[४] ब्राह्म समाज के मूल में एक विराट् विश्वबन्धुत्व की भावना निहित थी। वह एक समन्वयवादी संस्था थी जिसमें वेदान्त और अंग्रेजी उपयोगितावाद के दर्शन का सुन्दर सम्मिलन था।

(२) आर्य समाज

उत्तरी भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान में महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया है। कुछ लोग महर्षि दयानन्द को 'अतीत की ओर' के आन्दोलन (Back to the past movement) से संबन्धित करते हैं। पर वस्तुतः बात यह है कि नव भारत के निर्माण में दयानन्द के अतिरिक्त किसी अन्य महापुरुष ने अधिक कार्य सम्पन्न नहीं किया। ऐसा कोई भी गतिवर्द्धक आन्दोलन—धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा साहित्यिक—नहीं था जहाँ पर महर्षि का प्रभाव न पड़ा हो।

सत्य की खोज महर्षि के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य था और वे अपनी किशोरावस्था ही से मूर्तिपूजा को संदेहात्मक दृष्टि से देखने लगे थे। उन्होंने वेदों और वैदिक साहित्य सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया और शीघ्र ही इस नये ज्ञान के प्रकाश में उनकी वे सब जटिल समस्याएँ जो उनके

---

[४] अरविन्द घोष, 'द रेनेसां इन इण्डिया' (३रा सं०) पृ० ४७

The Brahmo Samaj had in its inception a large cosmopolitan idea, it was ever almost eclectic in the choice of the materials for the synthesis it attempted; it combined a Vedantic first inspiration, outward forms akin to those of English Utilitarianism and something of its temper, a medium of Christian influence, a strong dose of religions rationalism and intellectualism.

मन को दीर्घकाल से उद्विग्न किये थी सुलझ गईं। उन्होंने १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की जिसमें इन्होंने पुराण, तन्त्रादि अवैदिक धार्मिक पुस्तकों के सिद्धान्तों का खण्डन कर केवल वेदों में दिये धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध किया और वेदों का जनता की वाणी, हिन्दी, में अनुवाद कर वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना की। यद्यपि वे स्वयं गुजराती थे, पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी में लिखी जिसे वे भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में देखते थे। आर्यसमाज का इस प्रकार उत्तरी भारत में विशेषतः पंजाब में हिन्दी के प्रचार में महत्वपूर्ण योग रहा है। इसके अतिरिक्त जनता में संस्कृत भाषा और साहित्य में रुचि उत्पन्न करने का श्रेय भी आर्यसमाज ही को है।

पर महर्षि दयानन्द सुधारक होने के साथ-साथ एक महान सामाजिक धार्मिक सुधारक भी थे। इन्होंने बाल-विवाह, बहु-विवाह, अस्पृश्यता (untouchability), पर्दा, सती तथा बाल-हत्या (Infanticide) आदि सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया। उन्होंने शुद्धि आन्दोलन द्वारा उन सबको जो ईसाई अथवा मुसलमान बन गये थे, पुनः हिन्दू धर्म में लाने की व्यवस्था की। इस आन्दोलन से ईसाई मिशनरियों तथा रूढ़िवादी हिन्दू धर्मावलम्बियों को बड़ा आघात पहुँचा।

आरंभ में आर्यसमाज की भूमिका में पूर्णतः भारतीय पृष्ठभूमि थी, पर इसके प्रसार का बहुत कुछ कारण वह बुद्धिवाद था जिसका जन्म अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई मिशनरियों के कार्य द्वारा हुआ था। पंजाब में विशेषतः आर्यसमाज पर यह अंग्रेजी प्रभाव पड़ा। अरविन्द के अनुसार पंजाब में आर्यसमाज की नींव वैदिक मत के नये भाष्य तथा वैदिक सिद्धान्तों द्वारा नवीन परिस्थितियों को समझने के उपक्रम पर पड़ी थी।[६] आर्य समाज का शिक्षा संबन्धी कार्य तो अंग्रेजी संस्पर्श से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। आज आर्यसमाज की शिक्षा संस्थायें उत्तरी भारत के प्रत्येक बड़े नगर में मिलती हैं।

---

[६] वही, पृ० ४८

The Arya Samaj in the Punjab founded itself on a fresh interpretation of the truth of the Vedas and an attempt to apply old Vedic principles of life to modern conditions.

(३) थीयोसफी (Theosophical Movement)

थीयोसफी का आन्दोलन (प्रारंभ १८७५) यद्यपि पश्चिम में प्रारंभ हुआ था, पर उससे धर्म तथा राजनीति, दोनों क्षेत्रों में भारतीय आत्मा की प्रतिष्ठा करने में बड़ा योग मिला है। भारत में थीयोसफी के कार्य का दर्शन हमें श्रीमती एनीबसेंट के महान् व्यक्तित्व में मिल जाता है। संसार में दुःख और दैन्य के अस्तित्व ने उन्हें इतना विचलित किया कि वे कुछ काल के लिए ईसाई मत छोड़ कर अनीश्वरवादी (atheist) हो गईं। १८८९ में वे थीयोसोफिस्ट एच० पी० ब्लेवेट्स्की के सम्पर्क में आई और उन्हें थीयोसफी की रहस्यमय प्रवृत्ति इतनी रुचिकर हुई कि तत्पश्चात् वे थीयोसफी आन्दोलन की मुख्य अधिष्ठात्री बन गईं। परन्तु उन्हें भारत और उसके हिन्दूधर्म में ही शान्ति मिली। वे भारत में १८९३ में आईं और हिन्दूधर्म के क्षेत्र में उन्होंने यथेष्ट कार्य किया। उन्होंने 'महाभारत' का अंग्रेजी गद्य में संक्षिप्त संस्करण निकाला, 'भगवत गीता' का अनुवाद किया तथा 'रामचन्द्र—एक आदर्श सम्राट्' (Ramchandra, the Ideal King) ग्रन्थ लिखा। इसके अतिरिक्त इन्होंने सेन्ट्रल हिन्दू कालिज बनारस में एक व्याख्यान माला दी। पंडित नेहरू के शब्दों में श्रीमती एनीवसेंट ने हिन्दुओं के मध्यवर्ग में राष्ट्रीय तथा धार्मिक चेतना लाने में बड़ा योग दिया है।[६]

थीयोसफी आन्दोलन ने धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता के प्रसार में अत्यन्त महत्व का कार्य किया है। थीयोसफी ने वस्तुतः सब धर्मों के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सब धर्मों का सुन्दर समन्वय किया है।

(४) राम कृष्ण मिशन

रामकृष्ण परमहंस (१८३४-१८८६) चैतन्य महाप्रभु की सीधी परम्परा में आते हैं, और उनका अध्यात्मवाद आधुनिक भारत के अन्य धार्मिक सुधारकों के विपरीत पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिक्रिया स्वरूप नहीं है। पर वे धर्म में संकीर्णता के विरोधी थे[७] और उन्होंने विभिन्न धर्मों की वैष्णव, शाक्त, वेदान्त,

---

[६] जवाहरलाल नेहरू, 'द डिस्कवरी आफ इण्डिया' (१९४६) पृ० २९५

She was a powerful influence in adding to the confidence of the Hindu Middle classes in their spiritual and national heritage.

[७] 'द टीचिंग्स आफ श्री रामकृष्ण' (कलकत्ता, अद्वैत आश्रम)

As you rest firmly on your own faith and opinion so allow others also liberty to stand by theirs. (No. 564)

इस्लाम, बौद्ध, ईसाई आदि विविध साधनाओं का प्रयोग किया तथा उनके द्वारा सत्य की प्राप्ति की।

रामकृष्ण के अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व के कारण शीघ्र ही उनके अनेक शिष्य हो गये। इन शिष्यों में प्रमुख नरेन्द्र नाथ दत्त (१८६३-१६०२) थे जो बाद में विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए। १८६३ में इन्हीं विवेकानन्द ने शिकागो में सर्व-धर्म-सम्मेलन की सभा में भाग लिया और विदेशियों तथा अन्य मतावलम्बियों के सन्मुख भारतीय दर्शन तथा धर्म की महानता स्थापित की। भारत में आने पर उन्होंने अपने अन्य गुरुभाइयों के साथ 'रामकृष्ण मिशन आफ सर्विस' की स्थापना की। रामकृष्ण मिशन का मुख्य उद्देश्य भारत में नव जाग्रति तथा समस्त मानवजाति के लिए कल्याण करना था।

रामकृष्ण मिशन का भारत तथा विदेशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। विचारशील वर्ग पर उसके इस गहरे प्रभाव का मुख्य कारण यह था कि उसमें प्राचीनता तथा नवीनता, प्राच्य और पाश्चात्य का सुन्दर समन्वय था। श्री अरविन्द के अनुसार रामकृष्ण मिशन का दृष्टिकोण वस्तुत: समन्वयवादी ही था। उसमें एक ओर प्राचीन धार्मिक विश्वासों में आस्था है, तो दूसरी ओर लोक सेवा ऐसे प्रगतिशील तत्व भी हैं।[८]

यहाँ पर यह स्मरण रहे कि अपनी लोक सेवा की भावना में तथा मानवता का धर्म स्थापित करने में विवेकानन्द प्रसिद्ध योरोपीय दार्शनिक कामटे के पोजटिविस्ट दर्शन से (Comte's Positivist Philosophy) से सम्भवतः प्रभावित हुए थे।[९] विवेकानन्द के समय में कामटे के दर्शन का बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग में प्रचार था, और यह सम्भव है कि विवेकानन्द इस दर्शन से प्रभावित हुये हों। कामटे द्वारा प्रतिपादित इस मानवता के धर्म का विवेचन हम आगे चल कर करेंगे।

---

[८]अरविन्द घोष, 'द रेनेसां इन इण्डिया' पृष्ठ ४८

The movement associated with the great names of Ramkrishna and Vivekanand has been a wide synthesis of past religious motives and spiritual experience topped by a reaffirmation of the old asceticism and monasticism, but with new living strands in it and combined with a strong humanitarianism and zeal of missionary expansion.

[९]दे० प्रिया रंजन सेन, 'वेस्टर्न इंफ्लूयेन्स इन बंगाली लिट्रेचर' (कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रकाशन, १६३२) पृ० ३४२-३४३

(५) गांधी, टैगोर और अरविन्द

आधुनिक सांस्कृतिक आन्दोलनों के अध्ययन में गांधी, टैगोर और अरविन्द के कार्य का उल्लेख आवश्यक है। गांधी भारतीय जनता के सामने यद्यपि एक राजनीतिक नेता के रूप में आये थे, पर वे अपनी प्रकृति में वस्तुतः एक धार्मिक महापुरुष थे। १९२० में तिलक की मृत्यु से भारतीय राजनीति में एक रिक्त स्थान आ गया था जिसकी पूर्ति परिस्थितियों की माँग के कारण गांधी को करनी पड़ी। यदि तिलक कुछ काल के लिए और जीवित रहते तो सम्भव है भारत के इतिहास में महात्मा गांधी का नाम एक धार्मिक महापुरुष के रूप में आता, राजनीतिक नेता के रूप में नहीं।[10] परन्तु एक बार राजनीति के क्षेत्र में आकर गांधी जी ने उसमें भी धर्म के तत्व का समावेश किया। अपने विश्वास में गांधी ने दोनों पाश्चात्य तथा प्राच्य विचारों से सहायता ली। उनका निष्क्रिय प्रतिरोध (passive resistance) का सिद्धान्त जो कि राजनीति के क्षेत्र में एक नई विचारधारा थी, ईसाई मत से प्रभावित था।[11] उनके रूसी गुरु टालस्टाय का उनके ऊपर दूसरा प्रभाव था। उनके असहयोग के सिद्धान्त में टालस्टाय के 'राज्य से दूर' (away from the State) वाले नारे की प्रेरणा स्पष्ट जान पड़ती है।

गांधी की भारतीय संस्कृति को दूसरी बड़ी देन उनका औद्योगिकता का विरोध है। इसमें भी गांधी को प्रेरणा एक योरोपीय लेखक रस्किन से मिली जिसने औद्योगिक संसार की कुरूपता और निर्ममता पर अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किये हैं। रस्किन का ग्रन्थ 'अन्टू द लास्ट' (Unto the Last) तो गांधी जी के लिए सदैव प्रेरणा स्वरूप रहा।

गांधी जी का दृष्टिकोण संकीर्ण न था और इसी कारण वे पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण कर सकने में समर्थ हो सके। उन्होंने १९२१ में कहा था कि मैं अपने गृह की प्राचीरों को चारों ओर से घेर कर अथवा उसकी खिड़कियों को बन्द कर रखना नहीं चाहता, मैं सब देशों की संस्कृति की वायु को अपने गृह में

---

[10] दे० रोमां रोला, 'महात्मा गांधी' (आगरा, शिवशंकरलाल एण्ड कम्पनी) पृ० १९-२०, २२

[11] न्यू टेस्टामेंट 'सर्मन आन द माउन्ट'

But I say unto you, that ye resist not evil : but whosoever shall smite thee on thy right cheek, turn to him the other also.

निर्बाध रूप से बहने देने के पक्ष में हूँ, और मेरा धर्म बन्दी गृह का धर्म नहीं है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर एक दूसरे महापुरुष हैं जिन्होंने भारतीय विचारधारा में उदारता की भावना का समावेश किया है। टैगोर अंशतः ब्राह्म समाज और अंशत: विवेकानन्द के वेदान्त की उपज थे। टैगोर के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बात उनका विश्व-दर्शन अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता (internationalism) है। यद्यपि वे स्वयं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे, पर साथ में वे यह भी जानते थे कि जब तक अपनी संकीर्ण राष्ट्रीय भावनाओं को त्याग कर विविध राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीयता को न अपनायेंगे विश्वशान्ति का स्वप्न सदैव अधूरा ही रहेगा।

रवीन्द्र नाथ पर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव था और मानवता की उपासना की भावना ने उन्हें सदैव प्रेरणा दी। उन्होंने जनता को कर्म का मन्त्र दिया और ईश्वर को दीन, दुखी और निम्नतम व्यक्तियों के बीच में कर्म करते हुए दिखाया। उन्होंने कर्म से सन्यास लेने की प्रवृत्ति की अनुपयोगिता को दिखाया और ईश्वर का तादात्म्य स्वेद और मट्टी से भरे हुए श्रमिकों के साथ किया।

गांधी और टैगोर के साथ अरविन्द घोष के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। पिछले कुछ वर्षों में उनके ग्रन्थों ने बुद्धिजीवी वर्ग को अत्यधिक आकर्षित किया है। श्री अरविन्द की मानव जाति को देन के विषय में कहते हुए विनय कुमार सरकार ने लिखा है: "**यह जानना अति रुचिकर होगा कि किस प्रकार अरविन्द की मेधा और अनुभूति पिछले तीस वर्षों में जीवन, मानव और व्यक्तित्व की सेवा में संलग्न रही है। अरविन्द का मानववाद उच्च तथा सघनतम श्रेणी का है, और उनका अध्यात्मवाद जीवन की भाँति विशाल है।**"[१२] इस प्रकार अरविन्द का दर्शन भी सामंजस्य की भावना से परिपूर्ण है, और उन्होंने प्राच्य तथा पाश्चात्य जीवन का अपने दर्शन में वृहत् समन्वय किया है।

---

[१२]विनय कुमार सरकार, 'क्रीयेटिव इण्डिया' (लाहौर, मोतीलाल बनारसीदास, १९३६) पृ० ६०७

...it is interesting to watch how during the entire period of some thirty years, it is in the service of life, man, personality......that his intelligence and intuition have been functioning. Aurobindo's humanism is superb and of the intensest type, and his spirituality is encyclopaedic as life itself.

(स) सामाजिक आन्दोलन

यह स्वाभाविक ही था कि धार्मिक आन्दोलन जो भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान लाने में सहायक हुए भारतीय समाज में भी सुधार और प्रगति लाते। भारत का सामाजिक रूप से नव-निर्माण ब्राह्म समाज की स्थापना (सन् १८२३) के साथ प्रारम्भ हो जाता है। राजा राम मोहन राय एक महान सामाजिक सुधारक भी थे और उन्हीं के प्रयत्न द्वारा १८२६ में सती प्रथा का कानून द्वारा अन्त किया गया। सती प्रथा के पश्चात् विधवा-विवाह का प्रश्न सामने आया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सिद्ध किया कि विधवा-विवाह कोई विदेशी वस्तु नहीं है वरन् उसका हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विधान है। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप १८५६ में विधवा-विवाह एक्ट (Widow Marriage Act) पास हुआ। केशवचन्द्र सेन ने स्त्री शिक्षा और विधवा-विवाह का प्रसार करने के अतिरिक्त अन्तर्जातीय विवाह, रात्रि पाठशाला, नशा-निषेध सभा आदि समाज सेवा के लिए संस्थाएँ स्थापित कर सामाजिक सुधार में और भी प्रगति दी। परन्तु जनता को सामाजिक पुनर्संगठन की आवश्यकता समझाने में आर्य समाज का सबसे महत्वपूर्ण योग रहा। दयानन्द ने बाल विवाह, बहु विवाह, अस्पृश्यता के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई। उसके उपरान्त १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से भी सामाजिक सुधार को प्रोत्साहन मिला।

आर्य समाज और कांग्रेस ऐसी प्रगतिशील संस्थाओं के फलस्वरूप राज्य के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह भारत के सामाजिक पुनर्निर्माण में उचित भाग ले। १८७७ में 'स्पेशल मेरिज एक्ट' द्वारा अन्तर्जातीय विवाह का विधान हो गया। पर यह विधान उन्हीं के लिए था जो अपने को जाति विहीन और धर्म विहीन घोषित कर देते थे। १९२३ में इस एक्ट में संशोधन किया गया और जाति विहीन और धर्म विहीन होने की घोषणा अन्तर्जातीय विवाहों के लिए आवश्यक न रही। तत्पश्चात् १९२९ में शारदा एक्ट पास किया गया जिसके अनुसार १८ वर्ष से कम के लड़कों और १४ वर्ष से कम की लड़कियों के लिए विवाह का निषेध हो गया।

पर अछूतों और स्त्री जाति की समस्याओं पर उचित विचार १९१९ के उपरांत गांधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में आने के साथ हुआ। गांधी जी सब धर्मों, वर्णों और जातियों को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते थे। उनके प्रयत्न विशेषत: अछूतों के पुनरुद्धार के हेतु थे। उनके अनुसार हम में से प्रत्येक का कर्त्तव्य निर्बल और असहायों को आश्रय प्रदान करने तथा किसी का हृदय न दुखाने

में है। यदि हम अपने निर्बल बन्धुओं पर किये गये अत्याचार के पापों का प्रायश्चित नहीं करते तो हम किसी भी प्रकार पशुओं से अच्छे नहीं।

गांधी जी का १९३२ का उपवास इसी अछूतोद्धार के प्रश्न से संबंधित था। १९३५ के 'गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट' द्वारा अछूतों को वोट देने का अधिकार मिल गया। भारत के स्वतन्त्र होने के उपरांत अछूतों की दशा में यथेष्ट सुधार हुआ है, और स्वतन्त्र भारत के विधान में अस्पृश्यता को ग़ैरकानूनी घोषित कर दिया है।

गांधी जी ने उतने ही उत्साह के साथ स्त्री जाति की स्वतंत्रता का भी प्रश्न लिया। फलस्वरूप भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध में अनेक स्त्रियों ने महत्वपूर्ण कार्य किया। इसके अतिरिक्त गांधी जी ने पर्दा प्रथा को भी हटाने का उपक्रम किया।

यह कहना युक्ति संगत न होगा कि इन सामाजिक आन्दोलनों की प्रेरणा पश्चिम से ही आई। पर साथ में यह कहना ठीक है कि इन आंदोलनों की प्रगति अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार के साथ-साथ ही हुई। विधवा-विवाह, नर-नारी की समानता, एक विवाह आदि के सिद्धांत पश्चिम में ही विशेषतः प्रचलित थे और उन्होंने बुद्धिजीवी भारतीयों पर अपना गहरा प्रभाव डाला।

(द) राजनीतिक आन्दोलन

राजनीतिक शक्ति के ह्रास और आर्थिक शोषण ने भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत कर दी। १८५७ में भारत में प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध लड़ा गया। यद्यपि यह युद्ध असफल रहा, किन्तु इसने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का अन्त तो कर ही दिया। कम्पनी के राज्य का अन्त और महारानी की १८५८की घोषणा ने भारत में शान्ति और विश्वास का वातावरण उपस्थित करने में सहायता दी। पर शीघ्र ही १८६१ से १९०० तक के कई दुर्भिक्षों, महामारियों, टेक्स, बेकारी आदि ने जनता के सामने उसकी कठोर परिस्थितियों को रख दिया। फलस्वरूप १८७६ में 'इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना निम्न उद्देश्यों से की गई:—(१) राजनीतिक प्रश्नों पर भारतीय जनता की सम्मति स्थापित करना; (२) भारतीयों में राजनीतिक रूप से एकता का उपक्रम करना; (३) हिंदू-मुस्लिम एकता को स्थापित करना।

१८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की बम्बई में प्रथम बैठक भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एक क्रांतिकारी चरण था। कांग्रेस के जन्मदाता ह्यूम थे

जो भारतवासियों को राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर विचार करने के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना करना चाहते थे। अपने प्रारंभिक काल में कांग्रेस अनावश्यक प्रतिबन्धों के हटाने तथा सुधार के लिए सुझाव के हेतु प्रस्ताव पास कर ब्रिटिश पार्लियामेंट को प्रभावित कर अपना राज्य (self Government) प्राप्त करने का उपक्रम कर रही थी। कांग्रेस के ये प्रारंभिक प्रयत्न कुछ परिणाम न ला सके जिसके फलस्वरूप कांग्रेस को बीसवीं शती में अपनी 'आराम कुर्सी वाली राजनीति' (arm-chair politics) छोड़कर एक सक्रिय संस्था बनना पड़ा। १६०५ में बंग-भंग के अन्यायपूर्ण आघात से सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गई। देश की एक मात्र राजनीतिक संस्था कांग्रेस अब दो दलों में विभाजित हो गई। १६०६ और १६०७ के कांग्रेस अधिवेषण इन दो दलों—एक नरम दल (Moderates) जिसमें सुरेन्द्रनाथ, फीरोजशाह, गोखले आदि थे, और दूसरा गरम दल (Extremists) जिसमें लाजपतराय, तिलक और विपिनचन्द्र पाल थे—के युद्ध स्थल बन गये। सूरत के १६०७ के कांग्रेस अधिवेषण में दोनों दलों में पूर्ण विच्छेद हो गया। इन दोनों की प्रतियोगिता दीर्घकाल तक चलती रही और १६१६ में जाकर उन दलों का पुनः एकीकरण हो गया।

बंगाल के विभाजन को रद्द करने के फलस्वरूप फिर भारत में ब्रिटिश राज्य के प्रति जनता में विश्वास आ गया और १६१४ के प्रथम महासमर में कांग्रेस ने ग्रेट ब्रिटेन को ब्रिटिश सरकार के आदेश के अनुसार सहायता दी। परन्तु ब्रिटिश विजय ने भारत को जनता का राज्य देने की अपेक्षा यहाँ पर और भी कड़े प्रतिरोधों को जन्म दिया। खिलाफत के मामले में मुसलमानों के प्रति विश्वासघात ने तथा 'रोलट बिल' (Rowlatt Bills), जिसमें भारतवासियों को उनके नागरिकता के प्रारम्भिक अधिकार से भी वंचित किया गया था, के विरोध ने समस्त राष्ट्र में क्रांति की आग धधका दी। इस समय गांधी जी ने जो तिलक की मृत्यु के पश्चात् कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे कांग्रेस के विधान में पूर्ण परिवर्तन कर दिया। कांग्रेस जो अब तक केवल बुद्धि जीवी वर्ग की संस्था थी अब पूर्णतः जनवादी बन गई। अधिकांश के लिए यह नया आदर्श विशेष उत्साह वर्द्धक था और शीघ्र ही भारत की जनता में राजनीतिक चेतना की लहर दौड़ गई। केवल कुछ थोड़े से व्यक्तियों ने जो राजनीति को गिने चुने लोगों की थाती समझते थे, अपने को कांग्रेस से पृथक कर लिया। इन थोड़े से व्यक्तियों में एम० ए० जिन्ना भी थे जो कांग्रेस से हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर मतभेद

होने के कारण नहीं, अपितु इस नई और प्रगतिशील जनवादी विचार धारा को अपनाने में असमर्थता के कारण पृथक् हो गये।[१३]

गांधी जी का १९१९ का पहला अवज्ञा आंदोलन (Civil Disobedience Movement) जो रोलट बिल और अन्य शिकायतों को दूर करने के लिए था, असफल रहा। इसी आंदोलन के समय में जालियां वाला बाग का हत्याकांड हुआ और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने वायसराय को अपनी नाइट हुड (Knighthood) की उपाधि लौटाने के लिए पत्र लिखा। १९२० के असहयोग आंदोलन को प्रारम्भ में तो अच्छी सहायता प्राप्त हुई परन्तु उत्तर प्रदेश में चौरीचौरा में कुछ व्यक्तियों द्वारा हिंसा के प्रदर्शन के कारण गांधी जी ने आंदोलन को बीच में ही रोक दिया। कुछ समय के लिए भारत के राजनीतिक क्षेत्र में निराशा का अंधकार छा गया। १९२७ में भारत के लिये नये विधान के विषय में विचार करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति से भारत में पुनः आशा की किरण फूट पड़ी। कांग्रेस ने अन्य संस्थाओं के साथ भारत के लिए 'डुमीनियन स्टेट्स' (Dominion Status) का विधान बनाया। पर ब्रिटिश पार्लियामेंट से इसका कुछ प्रतिउत्तर न मिला और १९२९ में कांग्रेस ने लाहौर अधिवेषण में शाँतिपूर्ण तथा कानूनी साधनों द्वारा पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति का अपना उद्देश्य रखा। १९३० में गांधी जी के द्वारा 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' (civil Dis-obedience movement) के आरम्भ होने पर इंग्लैण्ड की सरकार ने लन्दन में एक सभा का आयोजन किया जिसमें कुछ प्रमुख भारतियों को भारत के नये विधान के लिए परामर्श के हेतु निमन्त्रित किया गया। मार्च १९३१ में गांधी-इरविन समझौता हुआ और सरकार के द्वारा दमनात्मक प्रतिबन्धों को हटाने के फलस्वरूप कांग्रेस ने अपने आंदोलन को समाप्त कर दिया। १९३१ के अन्तिम दिनों में गांधी जी गोलमेज सभा (Round Table Conference) में सम्मिलित हुए। पर इसका भी कुछ परिणाम न हुआ और गांधी जी ने अपने आंदोलन को फिर से आरम्भ कर उसे १९३४ तक चलाया। सरकार ने अन्त में १९३६ में कांग्रेस के ऊपर से प्रतिबन्ध हटा लिया और इसी वर्ष १९३५ के वैधानिक एक्ट (Constitution Act of 1935) के अनुसार लड़े गये चुनाव में कांग्रेस की भारी विजय हुई।

१९३७ से लेकर १९४७ तक के दस वर्ष गांधीवादी भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध के अन्तिम चरण के वर्ष हैं। इस काल में कांग्रेस के मंत्रिमण्डल स्थापित

---

[१३] जे० नेहरू, 'द डिस्कवरी आफ इण्डिया' (१९४६), पृ० ४३१

हुए, ब्रिटिश प्रस्ताव आये, हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए और अन्त में भारत का विभाजन और उसे स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है भारतीय स्वतंत्रता का यह दीर्घकालीन युद्ध अंग्रेजी शिक्षा से अधिक प्रभावित था और इसके संगठन कर्ता पाश्चात्य विचारों से ओत प्रोत थे। डा० अमरनाथ झा का कथन है कि काँग्रेस वक्ताओं को बर्क (Burke), बायरन (Byron) अथवा स्विनबर्न (Swinburne) के किसी स्थल से अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए देखना एक साधारण दृश्य था।[१४] निस्संदेह हमारे नेतागण भारतीय स्वतंत्रता के महायुद्ध में फ्रांसीसी क्रांति ऐसी घटनाओं और रूसो (Rousseau), मिल (Mill) तथा बर्क ऐसे लेखकों से सदा प्रेरणा लेते रहे।

(ह) आधुनिक भारतीय साहित्य में युगान्तर

भारत में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का एक महत्वपूर्ण पक्ष आधुनिक भारतीय साहित्य में युगान्तर है। भारत में विविध भाषायें होने पर भी हमें उनमें एक आश्चर्यजनक साम्य दिखाई पड़ता है। उन सब का विकास मध्य युग में समस्त भारत में भक्ति आंदोलन के प्रसार के साथ हुआ है। समस्त मध्ययुगीन भारतीय साहित्य ने रहस्यवादी आदर्श को प्रतिध्वनित किया तथा धार्मिक एवं पौराणिक विषयों को मुख्यतः लिया है। मध्ययुग के उपरान्त सामन्तकाल (feudal age) में एक नए दरबारी साहित्य का सृजन हुआ जिसमें शृंगार की भावना का रूढ़िगत प्रतिपादन किया गया। इस प्रकार समस्त भारतीय साहित्य में हमें एक समरसता के दर्शन होते हैं। जदुनाथ सरकार का कहना है कि भारत में नवोत्थान के पूर्व के समस्त भारतीय साहित्य में हमें धार्मिक विषयों, शृंगार भावना तथा पौराणिक एवं वीरगाथाओं का वर्णन मिलता है।[१५]

---

[१४] 'ऐसेज एण्ड स्टडीज,' इंग्लिश एसोसियशन (यू० पी० ब्रान्च, १९३८) पृ० iii

It was quite a common sight to see the congress orators end with a passage of Byron or Burke or Swinburne.

[१५] जदुनाथ सरकार, 'इण्डिया थ्रू द एजेज' (तीसरा संस्करण) पृ० ६८

In the days before our Renaissance all Indian vernacular literatures dealt with religions subjects, erotics and mythological and heroic narratives.

हम देख चुके हैं कि पाश्चात्य प्रभाव के पूर्व के एक शताब्दी काल में किस प्रकार भारतीय संस्कृति अपनी अधोगति को प्राप्त हुई थी। १७०७ में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् विशाल मुग़ल साम्राज्य का पतन बड़े वेग से आरम्भ हो गया और केन्द्रीय शक्ति के ह्रास के साथ छोटे-छोटे राज्य स्वाधीन होकर साम्राज्य से पृथक् होने प्रारम्भ हो गये। ऐसी अराजकता के काल में सांस्कृतिक रूप से समस्त देश एक 'ऊजड़ प्रदेश' (waste land) में परिवर्तित हो गया और उसके साहित्यिक कार्य छोटे-छोटे राजों के दरबारों तक सीमित रह गये जहाँ कवि ओज और उत्साह से हीन ह्रासोन्मुखी साहित्य की रचना कर रहे थे।

अंग्रेजी प्रभाव ने हमारे भारतीय साहित्य को नवीन प्रवृत्तियाँ देकर समृद्ध किया। उसने हमारी सुप्त और विमूर्च्छित राष्ट्रीय भावना को जाग्रत किया और अपने गौरवशाली अतीत के प्रति हमें सजग किया। इस प्रक्रिया में अंग्रेजी शिक्षा का, यद्यपि अज्ञात रूप से, जो योग रहा है वह अत्यधिक महत्व का है। अंग्रेजी पढ़े लिखे बुद्धि जीवी वर्ग के व्यक्ति मिल(Mill), गोडविन(Godwin), पेन(Paine) और कांट(Kant) के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। अतः उनके दृष्टिकोण का राष्ट्रीय हो जाना स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त अनेक योरपीय विद्वानों ने, जिनमें सर विलियम जोन्स (Sir William Jones), हेनरी कोलब्रुक (Henry Colbrooke), चार्ल्स विलकिन्स (Charles Wilkins) और होरेस विलसन (HoraceWilson) के नाम प्रमुख हैं, हमारे अतीत गौरव की महानता को प्रमाणित किया। पर भारतीय साहित्य को सबसे अधिक प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य विशेषतः उसकी रोमांटिक धारा से मिली। डी० पी० मुकर्जी के अनुसार भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं के साहित्य में युगान्तर अंग्रेजी रोमांटिक लेखकों के गद्य तथा पद्य में अनुवादों से प्रारम्भ हुआ।[१६] आज अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य के विविध तत्व हमारे साहित्य में अपनी जड़ें जमा चुके हैं। अतएव भारतीय साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने का श्रेय अंग्रेजी प्रभाव को है।

---

[१६] डी० पी० मुकर्जी, 'माडर्न इण्डियन लिट्रेचर' (बम्बई, द्वितीय संस्करण, १९४८) पृ० ११८

On the English side we know it for certain that almost all the vernacular literature that is of some importance today started with the translations of the English romantics in prose and verse.

अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम के रूप में आधुनिक बंगला साहित्य

भारतीय साहित्य को नई आकृति में ढालने वाली शक्तियाँ विविध भाषाओं के प्रदेशों में एक-सी होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि इन भषाओं के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ भी बहुत कुछ समान हों। यहाँ पर हम केवल बंगला साहित्य की प्रवृत्तियों पर एक विहंगम दृष्टि डालने का उपक्रम करेंगे। बंगला साहित्य पर यहाँ विचार करना दो कारणों से आवश्यक है—प्रथम तो इस पर अंग्रेजी प्रभाव अन्य भाषाओं के साहित्य की तुलना में अधिक पड़ा है, और द्वितीय उसने हिन्दी के लेखकों के लिए अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम के रूप में कार्य किया है। अतएव आधुनिक बंगला साहित्य के इस अति संक्षिप्त विवेचन में हम केवल उन लेखकों अथवा कवियों पर ध्यान देंगे जिन्होंने हिन्दी के साहित्यकारों पर अपना प्रभाव डाला है।

बंगला साहित्य का आधुनिक काल १८०० से कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना से प्रारम्भ होता है। इसी समय बंगला पत्रकारिता का भी उदय हुआ जिसने अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम का भी कार्य सम्पन्न किया। अंग्रेजी के सम्पर्क से बंगला साहित्य को विविधता और जटिलता मिली और शीघ्र ही बंगाल का साहित्यिक प्रभाव अन्य भाषा भाषी प्रान्तों में फैलने लगा। पहले पहल बंगला साहित्य में युगान्तर का कारण यह था कि अंग्रेजी शिक्षा का सर्वप्रथम प्रसार बंगाल ही में हुआ था।

आधुनिक बंगला साहित्य में सर्वप्रथम माइकेल मधुसूदन दत्त तथा बंकिम चन्द्र के नाम हमारे ध्यान में आते हैं। मधुसूदन प्रारम्भ ही से अंग्रेजी संस्कृति से आकर्षित हुए थे, और अपनी युवावस्था ही में उन्हें शेक्सपीयर और अंग्रेजी रोमांटिक लेखकों से विशेष अभिरुचि हो गई थी। उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन अंग्रेजी में कविताएँ लिखकर प्रारम्भ किया था। पर बाद में उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा के साथ बंगला के साहित्यिक जगत में पदार्पण किया और बंगाली साहित्य में एक युगान्तर उपस्थित किया जिसे रोमांटिक विद्रोह की संज्ञा दी जा सकती है। उन्होंने परम्परागत काव्य के रूपों का बहिष्कार कर छन्द और पिंगल में अंग्रेजी छन्द शास्त्र के अनुसार नये प्रयोग किये। उनकी इस क्षेत्र में सबसे बड़ी देन अतुकान्त छन्द (Blank Verse) की थी। इसमें उनका आदर्श मिल्टन का काव्य था। वे अतुकान्त छन्द का प्रयोग बंगला के नाटकीय साहित्य में देखने के इच्छुक थे। उन्होंने इस नये माध्यम का प्रयोग 'पद्मावती'

और 'तिलोत्तमा-सम्भव' नाटकों में किया। मधुसूदन ने तत्पश्चात बंगला में 'सानेट' (Sonnet) का प्रयोग किया और अपनी 'चतुर्दशपदी' में १०२ 'सानेट' लिखे। अतएव मधुसूदन ने अतुकान्त छन्द और 'सानेट' का प्रयोग कर अपने आगे वाली पीढ़ी के कवियों—हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ आदि—के लिए मार्ग प्रदर्शित किया।

पर बंगला साहित्य में माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ बध' का प्रकाशन एक अद्भुत घटना थी। इस ग्रन्थ की रचना अतुकान्त छन्द में हुई थी और इसमें महाकाव्य के विषय का प्रतिपादन नितांत नवीन और अरूढ़िगत ढंग से हुआ। उन्होंने अपने इस महाकाव्य में कई पाश्चात्य लेखकों—जैसे होमर (Homer), तासो (Tasso), वर्जिल (Virgil) आदि के महाकाव्यों से सहायता ली। पर उन पर विशेषतः मिल्टन का प्रभाव था और इस अंग्रेजी महाकवि के गुणों को माइकेल सदा गाते थे।[१७] माइकेल ने रावण के चरित्र को अति महान बना कर दिखाया है। उनका यह विद्रोही व्यक्तित्व हमें मिल्टन के सैटन (Satan) का स्मरण दिलाता है जिसे कुछ आलोचकों ने 'पेराडाइज़ लास्ट' (Paradise Lost) का नायक ठहराया है।

बंकिमचन्द्र के सब ग्रन्थों में हमें राष्ट्रीयता की भावना मिलती है। उनके 'आनन्दमठ' में दिया हुआ वन्दे मातरम् का गीत आज भी भारतीय जन समुदाय का कंठहार बना हुआ है। वस्तुतः राष्ट्र प्रेम की भावना हमें आधुनिक बंगला साहित्य के विकास के प्रथम चरण ही में पर्याप्त मात्रा में मिलती है। माइकेल मधुसूदन की अनेक कविताएँ इसी राष्ट्रीय आदर्श से ओतप्रोत हैं। हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र के काव्य में भी इसी राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि मिलती है; उनके महाकाव्यों और गीतों में राष्ट्रीय भावना का सुन्दर प्रस्फुटन मिलता है। नवीन-चन्द्र का 'प्लासी युद्ध' बंगला के राष्ट्रीय काव्य में एक महत्वपूर्ण रचना है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि आधुनिक बंगला साहित्य के विकास के इस प्रथम चरण में अंग्रेजी प्रभाव इतना शक्तिशाली था कि उस समय माइकेल को बंगला का मिल्टन, नवीनचन्द्र सेन को बायरन और बंकिम को स्काट (Scott) के नाम से पुकारा जाता था।

---

[१७] प्रिया रंजन सेन 'वेस्टर्न इंफ्लूयेन्स इन बंगाली लिट्रेचर', पृ० १८८-१९१, इन पृष्ठों में विद्वान लेखक ने माइकेल के काव्य पर विविध विदेशी प्रभावों का उल्लेख किया है।

आधुनिक बंगला साहित्य में सबसे महत्व का व्यक्तित्व रवीन्द्रनाथ टैगोर का है। टैगोर भी माइकेल मधुसूदन की भाँति अनेक अंग्रेजी कवियों के ऋणी थे। ई० जे० टोमसन लिखते हैं:

"रवीन्द्रनाथ के सबसे अधिक उपजाऊ रचना-काल में ब्राउनिंग का यथेष्ट प्रभाव पड़ा।...वे कुछ शेक्सपीयर भी पढ़ते और पसन्द करते थे। वर्ड्सवर्थ उन्हें अच्छा लगता है पर सम्भवतः अधिक नहीं। परन्तु अंग्रेजी कवियों में उन्हें शैली और कीट्स सबसे अधिक प्रिय हैं।"[१८]

शैली की 'प्रकृति के नग्न सौन्दर्य' (Nature's naked loveliness) की खोज ने जिसे उसने अपनी एक कविता—(Hymn to Intellectual Beauty) में व्यक्त किया है, टैगोर की कल्पना पर अत्यधिक प्रभाव डाला। शैली की निराशा, उसका काल्पनिक जगत, उसकी इच्छाएँ तथा महत्वाकांक्षाएँ सभी ने टैगोर की प्रारम्भिक रचनाओं पर अपनी छाप छोड़ी है, और शीघ्र ही टैगोर को बंगला साहित्य का शैली कहकर संबोधित किया जाने लगा। पर कीट्स की 'ग्रीशन अर्न' (Grecian Urn) नाम की कविता का टैगोर पर अधिक स्थायी प्रभाव पड़ा। टैगोर ने स्वयं कहा है :

"मुझे 'ग्रीशन अर्न' बहुत प्रिय है। मुझे यह भावना अति रुचिकर लगी कि कोई भी वस्तु जो सुन्दर है व्यक्ति को अनन्त का स्पर्श कराती है—उसकी मेधा शक्ति को कुंठित कर देती है। अनन्त का गुण विस्तार नहीं पूर्णता है। पूर्णता व्यक्ति को भावना देती है, उसके ध्यान को हिला देती है—व्यक्ति को उद्वेलित कर देती है।"[१९]

---

[१८] ई० जे० टामसन, 'टैगोर, पोइट एण्ड ड्रेमेटिस्ट,' (आक्सफर्ड यू० प्रेस, १९२६) पृ० ३०५

Browning's influence was considerable......during his most prolific period......He read and liked some Shakespeare. Wordsworth he likes—not enthusiastically I imagine. But his deepest admirations have been for Shelley and Keats, among English poets.

[१९] वही, पृ० ३००

I like Grecian Urn very much. The idea appeals to me, that a thing which is beautiful gives you the touch of the Infinite—'teases out of thought'. The quality of the Infinite is not in extension but in perfection. The unity gives you the idea, and distracts your attention—teases you.

अतः टैगोर अपनी प्रकृति के प्रति भावना में शैली और कीट्स से प्रभावित हुए थे। टैगोर ने निःसंकोच होकर अंग्रेजी कवियों से सीखा था। उनके 'शार्प्स एण्ड फ्लाट्स' (Sharps and Flats) में शैली, एलिज़ाबेथ ब्राउनिंग (Elizabeth Browning), क्रिश्चेना रोसेटी (Christiana Rossetti) और स्विनबर्न (Swinburne) आदि की कविताओं के अनेक अनुवाद हैं।

टैगोर पर अंग्रेजी के इस शक्तिशाली प्रभाव को देखकर कुछ आलोचकों ने टैगोर के काव्य को पाश्चात्य ढंग का कहा है। एक आलोचक (जिसका संदर्भ टामसन ने अपनी टैगोर पर लिखी पुस्तक में दिया है) का कहना है कि यद्यपि रवीन्द्रनाथ बंगाल में उत्पन्न हुए थे पर उनका वातावरण पूर्णतः पाश्चात्य था जिसमें सम्भवतः उपनिषदों की संस्कृति को छोड़कर देश के निजी तत्व नहीं के बराबर थे। उनका काव्य पाश्चात्य विचारों से ओतप्रोत होने के कारण वह बंगालियों की अपेक्षा अंग्रेजी पाठकों को अधिक रुचिकर लगता है।[२०] पर यह विचार ठीक नहीं है। टैगोर अपनी आत्मा में मुख्यतः भारतीय ही थे और उनकी मेधा पर कालिदास, कबीर तथा उपनिषदों आदि का भारतीय प्रभाव पाश्चात्य प्रभाव की अपेक्षा अधिक गहरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त उनके अन्दर जो कुछ भी पश्चिम का था वह उनकी प्रतिभा से होकर अपनी स्वयं की विलक्षणता और नवीनता लेकर उद्भासित हुआ। यही कारण है कि टैगोर आधुनिक भारतीय रहस्यवाद और प्रतीकवाद के महर्षि समझे जाते हैं, यद्यपि उनकी शैली बहुत कुछ पाश्चात्य रंग लिये है। उनकी 'गीताञ्जलि' उनकी परिपक्व कला का उदाहरण है जिसमें विदेशी प्रभावों पर उनकी जातीयता का गहरा मुलम्मा चढ़ा है। पूर्व और पश्चिम का यह सूक्ष्म समन्वय टैगोर का प्रिय विषय है जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों में किया है।[२१]

---

[२०] वही, पृ० ३०६

He was born in Bengal but in a Europeanised atmosphere, in which there was hardly any indigenous element, except, perhaps a culture of the Upanishads......Owing to his poetry being thoroughly imbued with Western ideas he appeals to his English readers more widely than to Bengalis.

[२१] वही, पृ० ३०

बंगाली लेखकों में डी० यल० राय का नाम भी उल्लेखनीय आवश्यक है। यद्यपि उनका प्रभाव हिंदी जगत में नाटककार के रूप में आया है, किन्तु उनकी कविता और गीतों से भी हिन्दी लेखक लाभान्वित हुए हैं।

यहाँ पर बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरदचन्द्र का नाम भी लेना उपयुक्त होगा। उनके उपन्यास 'श्रीकान्त,' 'चरित्रहीन,' 'बड़ी दीदी,' आदि चरित्र-चित्रण में अद्वितीय होने के साथ-साथ दुखी मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकाशित करते हैं।

आज का बंगला साहित्य जटिल और विविध प्रकृति का है—वहाँ अधिकाँश हमें मार्क्सवादी तथा मनोविश्लेषवादी साहित्यकार मिलेंगे।

आधुनिक बंगला साहित्य का यह संक्षिप्त विवेचन हमें उसके विकास के दो चरण इंगित करता है। इसका अरविन्द ने अति सुन्दर शब्दों में विवेचन किया है:—

"बंगाल में काव्य और साहित्य दो स्थितियाँ पार कर चुका है और तीसरी स्थिति को पार करने की तैयारी में है जिसकी प्रकृति अभी निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती। इसका प्रारम्भ योरपीय और अधिकांशतः अंग्रेजी प्रभाव से हुआ, जिससे इसमें नये गद्य और पद्य के रूपों, साहित्यिक आदर्शों और कला के सिद्धांतों का समावेश हुआ।...वह काल अब समाप्त हो चुका है...बंकिमचन्द्र का कार्य अब अतीत की वस्तु बन गया है..., टैगोर का कार्य अब भी हावी है, पर उसने भविष्य के लिए नये रास्ते खोले हैं जो कि साहित्य को आगे ले जा सकेंगे। दोनों के प्रयास भारतीय आत्मा को नये रूपों में लौटाकर लाने के हैं, दोनों उषा के बैतालिक हैं...एक महान अनुभूति और कल्पना प्रधान जातीय साहित्य के चिह्न आज दृष्टि में आ रहे हैं।"[२२]

[२२] अरविन्द घोष, 'द रेनसां इन इण्डिया' (३ रा सं०) पृ० ५८-६०

Poetry and literature in Bengal have gone through two distinct stages and seem to be preparing for a third of which one cannot quite foresee the character. It began with a European and mostly an English influence, a taking in of fresh poetical and prose forms, literary ideas, artistic

आज बंगला साहित्य में शा (Shaw), इलियट (Eliot), पाउंड (Pound) आदि अंग्रेजी के आधुनिक लेखकों के अनेक अनुकरण के साथ ही एक नवीन जातीय साहित्य के विकसित करने का उपक्रम भी है।

उपसंहार

हमने इस अध्याय में भारतीय पुनरुत्थान को जन्म देने तथा भारतीय जन-जीवन में युगांतर उपस्थित करने वाले नए प्रभाव का विवेचन किया है। हमने उन सब विविध धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों का उल्लेख किया है जो यद्यपि स्वयं आंग्ल प्रभाव के परिणाम थे किन्तु जो हिंदी भाषी प्रदेश में पाश्चात्य विचारों को लाने में सहायक हुए। अन्त में अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम के रूप में आधुनिक बंगला साहित्य पर भी एक विहंगम दृष्टि डालने का उपक्रम किया गया है। इस पृष्ठभूमि के साथ अब हम हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव के परिणामों का अध्ययन कर सकेंगे।

---

canons......That period is long ever......The work of Bankim Chandra is now of the past......, the work of Ravindranath Tagore still largely holds the present but it has opened ways for the future which promise to go beyond it. Both show an increasing return to the Indian spirit in fresh forms; both are voices of the dawn......Some faint promise of a great imaginative and intuitive literature of a new Indian type is already discernible.

द्वितीय भाग

(हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव के परिणाम)

४ भारतेंदु-युग

५ द्विवेदी-युग

६ छायावाद-युग

(दो महायुद्धों के बीच का काल)

७ प्रगतिवाद युग

(१६३६ के बाद का काल)

४

भारतेन्दु युग

(१८६७–१९०३)

(अ) पृष्ठभूमि

१९वीं शती के अन्तिम तीस वर्षों को साधारणतया भारतेन्दु युग की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये वर्ष अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि इस युग में हिन्दी साहित्य की गतिविधि को नया मोड़ देने में आंग्ल प्रभाव कहाँ तक क्रियाशील रहा है।

(१) नये साहित्यिक केन्द्र

हमारे साहित्यिक मूल्यों में परिवर्तन का एक बड़ा कारण नये साहित्यिक केन्द्रों की स्थापना है। रीति-युगीन दरबारी वातावरण में पोषित कविता जन-जीवन से दूर हो कतिपय सामन्तों के जीवन का प्रतिबिम्ब मात्र रह गई थी। किन्तु अंग्रेजी राज्य के साथ, सामन्तवादी प्रथा के समाप्त होने के उपरान्त, ये दरबार प्रायः लुप्त हो चुके थे, और ऐसी स्थिति में साहित्यिक केन्द्रों का दरबारी जीवन से जनजीवन में आना स्वाभाविक था। नयी जनवादी संस्कृति ने जनता और साहित्य के संबंध को पुनः सुदृढ़ किया और भारतेन्दु-युगीन कविता संकुचित सामन्तवादी सीमाओं को तोड़ कर एक विकसित दृष्टिकोण को अपनाने में सफल हुई। कविता के नये आदर्श ने जनवादी मूल्यों की स्थापना की और हमारे साहित्यिक केन्द्र अब जनता द्वारा स्थापित किये जाने लगे। दरबारों के स्थान पर अब साहित्यिक क्षेत्र में गोष्ठियाँ, समितियाँ तथा संघ दिखाई पड़ने लगे। उदाहरणार्थ १८७० में भारतेन्दु ने 'कविता वर्द्धिनी सभा'

और उसके तीन वर्ष पश्चात् 'पेनी रीडिंग क्लब' की स्थापना की। अतः अंग्रेजों के आने के साथ सामन्तवादी प्रथा के समाप्त होने के कारण हिन्दी काव्य में एक महत्वपूर्ण युगान्तर उपस्थित हुआ।

(२) हिन्दी पत्रकारिता का विकास

इस जनवादी प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी पत्र कारिता का विकास हुआ। १८६७ में भारतेन्दु द्वारा 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आधुनिक हिन्दी काव्य की गतिविधि में पहली महत्वपूर्ण घटना है। दूसरी महत्वपूर्ण घटना महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा १६०३ में 'सरस्वती' का सम्पादन कार्य ग्रहण करने की है। इन दो घटनाओं के मध्य की, तीस वर्ष की अवधि को, आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास का प्रथम चरण कहा जा सकता है। अतः हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के ये दो वर्ष भारतेन्दु युग की सीमा निर्धारित करते हैं।

'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन के पश्चात् हिन्दी पत्र और पत्रिकाओं का विकास बड़े वेग से होने लगा। वस्तुतः इस क्षेत्र में प्रारंभिक कार्य करने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। १८७३ में इन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' नामक पत्रिका प्रकाशित की जो एक वर्ष पश्चात् 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से चल पड़ी। वह 'कवि वचन सुधा' से सबंधित एक मासिक पत्र था जिसका उद्देश्य साहित्यिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और धार्मिक विषयों पर निबंध, समीक्षा, नाटक, इतिहास, उपन्यास, कविता, व्यंग, हास्य आदि प्रकाशित करना था।[१] अतः यहाँ हमें अपनी प्राचीन साहित्यिक परंपरा से निश्चित विच्छिन्नता तथा अंग्रेजी की साहित्यिक परंपरा का अनुकरण मिलता है। १८८० में मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या इस पत्रिका को उदयपुर हटा कर ले गये और वहाँ से 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मोहन चन्द्रिका' के नाम से प्रकाशित करने लगे। भारतेन्दु 'चन्द्रिका' की इस गतिविधि से सन्तुष्ट न थे और उन्होंने पुनः १८८४ में इसे 'नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। किन्तु इस पत्रिका के केवल दो ही अंक निकल पाये थे कि

---

[१] दे० पत्रिका का मुख पृष्ठ

A monthly Journal published in connection with 'Kavi Vachan Sudha' containing articles on literary, scientific, political and religious subjects, antiquities, reviews, dramas, history, novels, poetical selections, gossips, humour and wit.

भारतेन्दु की मृत्यु हो गई। इस पत्रिका के अतिरिक्त भारतेन्दु ने १८७४ में स्त्री जाति के लिये 'बाला बोधिनी' नाम की पत्रिका भी प्रकाशित करना आरंभ किया था।

भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य साहित्यिकों ने भी हिन्दी पत्रकारिता के विकास में सहायता दी। १८७७ में कलकत्ते से 'भारत मित्र' नाम का साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ जो १९३७ तक चलता रहा। १८७७ ही में इलाहाबाद से 'हिन्दी प्रदीप' नाम का मासिक पत्र बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में निकलना प्रारंभ हुआ। यह मुख्यत: राष्ट्रीय पत्र था और इसने हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रारंभिक कार्य किया। इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त कलकत्ते से सदानन्द द्वारा सम्पादित 'सूर सुधा निधि' पत्र भी साहित्यिक महत्व का है। यह पत्र १८६६ में निकलना आरम्भ हुआ और तीन वर्ष पश्चात् बन्द हो गया। १८८३ में फिर दो साहित्यिक महत्व के पत्र देखने में आये—एक दैनिक 'हिन्दुस्तान' जो पहले लन्दन से और फिर कालाकाँकर से प्रकाशित हुआ, और दूसरा मासिक 'ब्राह्मण' जिसका सम्पादन प्रताप नारायण मिश्र कानपुर से करते थे।

इस प्रकार भारतेन्दु-युग के प्रथम पन्द्रह वर्षों में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ। यह भली भाँति सिद्ध करता है कि हमारे साहित्यिक मूल्य क्रमशः जनवादी हो रहे थे और हमारा साहित्य जन-जीवन के समीप आता जा रहा था।

(ब) काव्य के वर्ण्य-विषय पर प्रभाव : नये विषय

हम देख चुके हैं कि रीतिकालीन काव्य की मुख्य प्रवृत्ति श्रृंगार की थी। किन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना और हमारी संस्कृति में जनवादी तत्वों के सन्निवेश से काव्यगत विषयों में परिवर्तन आ गया। कविता अब जन मन के विचारों को अभिव्यक्त करने लगी और युग की चेतना पर प्रभाव डालने वाली विविध राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक शक्तियाँ काव्य की विषय-सामग्री पर अपनी छाप छोड़ने लगीं। अतः कविता में नये विषयों का प्रवेश आरम्भ हो गया।

(१) राजभक्ति

भारत में शान्ति स्थापना ब्रिटिश राज्य की एक महत्वपूर्ण देन थी। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् भारत ब्रिटिश राजसिंहासन के शासनाधिकार में

आ गया और कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया। भारत में अब चारो ओर शान्ति की स्थापना हो गई और प्रजा संतुष्ट जान पड़ने लगी। शान्ति के अतिरिक्त अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारत में अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों, अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली एवं नवीन शासन और न्याय के प्रबंध का सूत्रपात हुआ। इन कारणों से भारतीय प्रजा की ब्रिटिश राज्य में आस्था होती गयी।

अतएव भारतेन्दु–युग की हिन्दी कविता में सम्राट् के प्रति भक्ति भाव का होना स्वाभाविक है। प्रेमघन ने अपनी कविता 'हार्दिक हर्षादर्श' में भारत में कम्पनी राज्य के अन्त का और ब्रिटिश सिंहासन के शासनाधिकार के प्रारंभ का गुणगान किया।[२] उन्होंने सम्राज्ञी विक्टोरिया के न्याय, दया, शासन-प्रबंध आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।[३] विक्टोरिया के शासन काल में होने वाले रेल, पुल, नहर, गैस, विद्युत-प्रकाश, डाक, तार आदि वैज्ञानिक आविष्कारों पर उन्होंने अत्यन्त संतोष और प्रसन्नता प्रकट की।[४]

प्रेमघन की भाँति भारतेन्दु की कविता में भी हमें राजभक्ति की भावना मिलती है। अपनी कविता 'भारत वीरत्व' में वे भारतीय वीरों का, द्वितीय अफ़गान युद्ध में अंग्रेजों की ओर से युद्ध करने के लिये आह्वान करते हैं। उनकी राजभक्ति इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि वे अंग्रेजों के शत्रुओं को अपना शत्रु संबोधित करते हैं।[५] अतः वे भारतीय सेना को अंग्रेजों के पीछे

---

[२] बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन सर्वस्व,' भाग १, पृ० २७२

धन्य ईसवी सन् अठारह सौ अठ्ठावन।
प्रथम नवम्बर दिवस सितासित भेद मिटावन॥

[३] वही पृ० २७३

शुद्ध नीति को राज प्रजा स्वच्छंद बनायो,
साचे न्याय भवन मैं खरो न्याय दिखरायो।
देश प्रबंध चतुर, दयालु, न्याई दुखहारी,
विद्या विनय विवेकवान शासन अधिकारी।

[४] वही पृ० २७४

महा महानद माहिं सेतु सुन्दर बनवाये
तड़ित गैस प्रकास राजपथ रजनि सुहाये। आदि

[५] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग २ (नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् १९८१) पृ० ७६९

धाओ धाओ वेग सब पकरि पकरि तलवार,
लरन हेतु निज शत्रु सों चलहु सिन्धु के पार।

उसी प्रकार जाने के लिए कहते हैं जिस प्रकार एक आदर्श स्त्री सदैव अपने पति के पीछे जाती है।[६] वे यह भी कहते हैं कि भारतीयों को 'डिसलायल' कहने वाले वस्तुतः अत्यन्त मूर्ख हैं।[७]

भारतेन्दु की राजभक्ति का सुन्दर उदाहरण उनकी 'विजयनी विजय पताका' कविता है जिसे उन्होंने भारतीय सेना की सहायता से अंग्रेजों की मिस्र पर विजय के उपलक्ष में लिखा था। इस कविता को भारतेन्दु ने २२ सितम्बर १८८२ को बनारस में राजा शिव प्रसाद के सभापतित्व में आयोजित एक सभा में पढ़ा था। कविता में भारतेन्दु ने भारत की प्राचीन और अर्वाचीन स्थिति में वैषम्य दिखाया तथा मिस्र में ब्रिटिश विजय का वर्णन किया था। ब्रिटिश विजय के उत्सव में होने वाली इस सभा की अंग्रेजी-रिपोर्ट 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' में कविता सहित उद्धृत की गयी है।[८] अतः यह कविता

---

[६]वही, चढ़ि तुरंग नव चलहु सब निज पति पाछे लाग।

[७]वही, पृ० ७६५

डिसलायल हिंदुन कहत कहँ मूढ़ ते लोग।

[८]वही, पृ० ७६७-७६८

A special meeting of the Banaras Institute was held on the 22nd September 1882 at 6 P. M in the Town Hall to express our joy at the recent success of the Indian army in Egypt. Almost all the raises, civil, Revenue and Judicial officers, Pandits, Professors, Members of Municipal and District Committees and Scholars were present The hall was full and many were obliged to hear the recital from the verandah. The Honourable Raja Shiv Prasad C . S. I. was unanimously voted to the chair

Babu Harishchandra read an excellent poem in Hindi on the subject. The opening stanzas of the poem explain the cause of India's unusual cheerfulness. It is the signal success of the Indian army in Egypt. A vivid contrast is drawn between the past and present conditions of India and the victory of the British nation in Egypt is described.

The gentlemen present expressed their unqualified applause at the recital and the hall resounded with cheers. The Honourable Raja Shiv Prasad C. S. I then described the importance of Egypt as a high way to India and said that the British conquest has been extremely rapid. He thanked Babu Harishchandra for the excellent poem.

Mr. Bullock, the Collector, warmly thanked Raja Shiv Prasad and Babu Harishchandra for sentiments of loyalty to the British Government, expressed by the People of Banaras.

भारतेन्दु की राजभक्ति संबंधिनी भावनाओं को भली भाँति व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने २० जनवरी १८७० को ड्यूक आव एडिनबरा के बनारस आगमन के उपलक्ष में एक सभा का आयोजन किया। इस सभा में अनेक कविताएं पढ़ी गईं जिन्हें भारतेन्दु ने 'सुमनांजलि' नाम से संकलित किया। भारतेन्दु का विचार 'सुमनांजलि' स्वयं भेंट करने का था परन्तु वे ड्यूक आव एडिनबरा की अति लघु बनारस यात्रा के कारण ऐसा न कर सके। अतः उन्होंने अपने घर पर अनेक विद्वानों को आमंत्रित कर एक सभा आयोजित की जिसमें ड्यूक की हिन्दी में संक्षिप्त जीवन कथा के अतिरिक्त पंडितों ने उनके बनारस आगमन के उपलक्ष में अनेक श्लोक पढ़े। इन श्लोकों को उपर्युक्त 'सुमनांजलि' में संकलित किया गया जिसकी भूमिका[१] स्वयं भारतेन्दु ने अंग्रेजी में लिखी। १८७४ में इन्हीं ड्यूक के विवाहोपलक्ष में भारतेन्दु ने 'मुख दिखावनी' कविता लिखी। नवम्बर सन् १८७१ में प्रिंस आव वेल्स (एडवर्ड सप्तम्) के टाइफ़ायड से रोग ग्रस्त होने पर भारतेन्दु ने उनकी आरोग्यता के

---

[१] The Short stay of H. R. H. the Duke of Edinburgh at Banaras prevented me from personally presenting him this 'Offering of Flowers' on the occason of his visit to this city. With the cooperation of some of my esteemed friends I convened a meeting at my house on the 20th January and invited many respectable and learned Pandits and Gentlemen to attend it. The meeting was formally opened by me by reading the biography of the Royal Prince in Hindi, and in conclusion requesting the gentlemen present on the occasion to adopt suitable measures for the address. The Pandits of the city expressed their great satisfaction, and read individually some Shlokas (verses) in Sanskrit expressing their heart-felt joy on the advent of the Royal Prince to this city. The verses are entered systematically into this book. The meeting then broke. The gentlemen present on the occasion evinced great joy and loyalty to the Royal Prince for which this small book containing the expressions of their sincere loyalty, is most respectfully dedicated to his Gracious feet.

लिये प्रार्थना की।[१०] १८७५ में इन्हीं राजकुमार के भारत आगमन पर उन्होंने स्वागत के हेतु कविता लिखी।[११]

भारतेन्दु-युग के सभी प्रतिनिधि कवियों में हमें यह राज-भक्ति की भावना मिलती है। भारतेन्दु और प्रेमघन के अतिरिक्त राधाकृष्णदास और अम्बिकादत्त व्यास आदि ने भी सम्राज्ञी विक्टोरिया तथा उनके शासन की प्रशंसा में कवितायें लिखीं। सन् १८७० तक हमें हिन्दी काव्य में राजभक्ति की भावना के अक्षुण्ण रूप से दर्शन होते हैं। उत्तर पश्चिमी प्रांत के वर्नाक्यूलर रिपोर्टर में १८२३ में राजनीतिक विषयों पर भारतीयों के दृष्टिकोण पर एक टिप्पणी प्रकाशित हुई थी। यह टिप्पणी भलीभाँति भारतीय जनता की राजभक्ति सम्बन्धी भावनाओं की पुष्टि करती है। उसके अनुसार राजनीतिक विषयों पर भारतीयों के विचार अधिकतर उचित और वैधानिक थे और उनमें किसी प्रकार की हानिकारक अथवा अनुचित बात का न होना वस्तुतः प्रशंसनीय था। उनका विचार विनिमय तथ्यों पर निर्धारित, तथा उनका दृष्टिकोण विस्तृत था।[१२]

परन्तु यहाँ हमें यह कदापि भूलना न चाहिए कि यह राजभक्ति की भावना वस्तुतः कवियों की देशप्रेम की भावना का ही एक पक्ष थी। भारतेन्दु, प्रेमघन आदि कवि देशप्रेमी थे और वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही एक जनवादी राज्य को देखने के इच्छुक थे। वे उस अवसरवादी वर्ग के न थे जिसने १८५७ के क्रान्तिकारियों का क्रूरतापूर्वक दमन किया था अथवा जो ब्रिटिश

---

[१०] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' भाग २, पृष्ठ ६३३

बेगि सुनै हम कान सों प्रिय भये सानंद
परम दीन ह्वै जोरि कर यह विनवत हरिचंद।

[११] वही, पृ० ६६७

स्वागत स्वागत धन्य तुम भावी राजाधिराज..., इत्यादि

[१२] 'द रिपोर्टर आन वर्नाक्यूलर प्रेस इन नार्थ वेस्ट प्राविंस' (१८७२) आर्टिकिल ५३६, पृ० ३०१

The treatment of the political subject has been as a rule fair and legal. The absence of anything of an injurious or improper nature is to be commended, and the circulation of intelligent discussions based upon facts and taking a tolerably wide political and social scope, cannot but have a wholesome effect on the people.

राज्य में किसी प्रकार की बुराई देखने के लिए तत्पर न था। ये कवि तो देश-प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे। अतएव प्रिंस आव वेल्स के शुभागमन के समय भारतेन्दु ने उस समय की पुलिस और न्यायालयों की तीव्र आलोचना की।[१३] प्रेमधन अपनी कविता 'मंगलाशा' में दादाभाई के निर्वाचन पर ब्रिटिश पार्लियामेंट के उदार वर्ग की प्रशंसा करते हुए इस भारतीय नेता को 'काले' की संज्ञा से संबोधित किये जाने के कृत्य की निन्दा करना न भूले।[१४] वे सम्राज्ञी विक्टोरिया का भारतीय जनता के हित के लिए भारत में राज्य देखने के इच्छुक थे। अतएव इन कवियों के राजभक्ति और देशभक्ति कोई दो विपरीत विश्वास न थे, वरन् उनकी देशभक्ति उस युग की राजनीतिक चेतना की ही अभिव्यक्ति थी।

(२) देशभक्ति

किन्तु ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत जनवादी राज्य की सम्भावना की आशा अधिक समय तक न रह सकी। सम्राज्ञी विक्टोरिया के द्वारा १८५८ की घोषणा में दिये गये आश्वासन कार्यरूप से परिणत न हो सके और शीघ्र ही अकाल, महामारी, बेकारी, टैक्स आदि ने जनता को कठोर वास्तविकता की भूमि पर ला दिया और उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद की हानियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगीं। इसके फलस्वरूप सारे देश में देशभक्ति की लहर दौड़ गई, और अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने देशभक्ति की भावना को जनता में और भी जाग्रत कर दिया।

अतएव भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि में हम एक नवीन राजनीतिक चेतना को आन्दोलित होते पाते हैं। कम्पनी का राज्य शोषण, दमन तथा आतंक का इतिहास था और १८५७ का विद्रोह अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भारतीय स्वतन्त्रता का पहला युद्ध था। किन्तु इस युद्ध में अनेक व्यक्ति अंग्रेजों से मिल गये जिसके फलस्वरूप इसका बुरी तरह दमन कर दिया गया। प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविता 'ब्रेडला स्वागत' में ऐसे दुष्ट जनों पर आक्षेप किया है :

---

[१३] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली,' भाग २, पृ० ७००

पहरु नहिं कोउ लखि परैं होय अदालत बंद
ऐसी निरुपद्रव करो राजकुँवर सुखकंद।

[१४] दे० 'प्रेमधन सर्वस्व,' भाग१, पृ० २५४–५५

दुष्ट समझ अपने भाइन कँह साथ न दीन्हों।
भोजन बिन विद्रोहिन दल निर्बल कीन्हों ॥
ठौर ठौर निज घर लुटवाये अरु फुँकवाये।
प्रान खोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्रान बचाये ॥

किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि अधिकतर कवि या तो १८५७ के विद्रोह के प्रति मौन रहे, अथवा उन्होंने इसे कतिपय विवेकहीन भारतीयों का कृत्य कहा। कवियों के इस कायरतापूर्ण दृष्टिकोण का स्पष्ट कारण समझ में नहीं आता। सम्भवतः वे ब्रिटिश शासन के भय के कारण १८५७ के विद्रोह के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त न कर सके। किन्तु इसका और कारण यह भी हो सकता है कि ये कवि अधिकतर नये मध्य वर्ग के व्यक्ति थे जिसका उदय ब्रिटिश शासन के संस्पर्श से हुआ था। यह वर्ग अपने ब्रिटिश शासकों पर निर्भर था और अपने व्यवसायिक जीवन में जनता से पृथक् जा पड़ा था। जो कुछ भी हो कवियों का इस महान घटना के प्रति यह मौन और तटस्थ भाव हमारी आत्मा को आघात पहुँचाता जान पड़ता है।

परन्तु कलाकार और जनता के मध्य की प्राचीर अधिक देर तक न रह सकी। जनजीवन में निर्धनता और भूख की ज्वाला ने कवि को अपने काल्पनिक जगत से निकल आने के लिए बाध्य कर दिया। भारतेन्दु ने शीघ्र ही ब्रिटिश शासन के अनेक कृत्यों के विरोध में आवाज उठाई। फलस्वरूप सरकार ने उन पर कड़ा निरीक्षण प्रारंभ किया और उनको अपने अवैतनिक न्यायाधीश पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके अतिरिक्त 'कवि वचन सुधा' जिसकी १०० प्रतियाँ सरकार लेती थी और जिसका चन्दा यू० पी० गज़ट के अनुसार २५० रुपया था, का लेना बन्द कर दिया गया। किन्तु इस प्रकार के कार्य हिन्दी कवियों की देशप्रेमी भावनाओं पर कोई प्रभाव न डाल सके और अब वे भारत की दीन स्थिति के प्रति पूर्णतया जागरूक हो गये। भारतेन्दु इस आन्दोलन के अग्रणी बने और उनका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' राजनीतिक आलोचना का मुख्य पत्र बन गया। मैगजीन के प्रथम अंक ही में एक प्रश्नावली प्रकाशित हुई थी जिसमें एक भारतीय ने अपने योरपीय मित्र से अनेक प्रश्न किये थे। ये प्रश्न भारत में अंग्रेजों की नीति और उनके मन्तव्यों पर तीव्र आलोचना के रूप में थे। दूसरे अंक में अंग्रेजों के हितैषी नवाब, राजा, जमींदार आदि पर आघात किया गया था। नवें अंक में भारतीयों का मन अंग्रेजों से क्यों नहीं मिलता इस विषय पर एक निबंध था। यह सम्पूर्ण निबंध ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष की भावना

अभिव्यक्त करता है। अतः यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु भारत की अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत उसकी दयनीय स्थिति से भलीभाँति परिचित थे।

'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु ने भारत की निर्धन और अज्ञानग्रस्त जनता का नग्न चित्रण किया है। कवि का हृदय भारत की दयनीय स्थिति को देख कर द्रवित हो चला है और वह औरों को मिलकर उस पर रोने के लिए कहता है।[१५] उसे भारत के प्राचीन ऐश्वर्य और गौरव का स्मरण हो आता है जब भारतीय संस्कृति का ऋण पाकर मिस्र, यूनान आदि देश सभ्य हो गये थे।[१६] भारत के अतीत काल के गौरव के प्रति यह भावना भारतेन्दु की 'भारत भिक्षा' कविता में भी अभिव्यक्त हुई है।[१७] इस पीछे की ओर मुड़कर देखने की प्रवृत्ति का कारण स्पष्ट है। भारतेन्दु-युग संक्रांति का समय था और भारतीय तथा अंग्रेजी संस्कृति के सम्मिश्रण से उत्पन्न जीवन के विरोधी मूल्यों के कारण बहुधा जनता के विचारों में अराजकता का होना स्वाभाविक था। अंग्रेज भारत में राजनीतिक विजय ही के लिए न आये थे, वे यहाँ अपनी संस्कृति और अपने धर्म का भी प्रचार करना चाहते थे। ईसाई धर्म प्रचारकों को प्रोत्साहन देना तथा अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार इस तथ्य की पुष्टि करता है। फलस्वरूप १९वीं शती में भारत में एक ऐसे वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ जो पाश्चात्य विचारों को अपनाने और भारतीय परम्परा को छोड़ने के लिए अत्यधिक लालायित था। उदाहरणार्थ बंगाल में डेरोज़ी सम्प्रदाय के लोग प्राचीन आस्थाओं को तोड़ने के उत्साह में इतने आगे बढ़ गये थे कि वे निःसंकोच मदिरा और गोमांस तक का सेवन करने लगे थे। अतः ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति के विनाश का बड़ा भय था और कवियों का भारत के अतीत के पुनर्निर्माण का प्रयत्न करना और उसे गौरवमय दिखाना अति स्वाभाविक हो गया था। अतएव ये कवि एक

---

[१५] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली,' भाग १ (ना० प्र० स०, सं० २००९) पृ० ४६९

रोवहु सब मिल कै आवहु भारत भाई,
हा हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई।

[१६] वही, पृ० ४६१-४६२

भारत के भुजबल जग रक्षित। भारत विद्या लहि जग सिच्छित
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना। भे पंडित लहि भारत दाना।

[१७] वही, भाग २, पृ० ७०७-७०८

जिनके भय कपित संसारा, सब जग जिनको तेज पसारा।...
युरुप अमरिका इहिहि सिहाहीं, भारत भाग सरिस कोउ नाहीं।

नवीन सांस्कृतिक राष्ट्रीयतावाद के प्रतिनिधि थे और वे भारत के अतीत को उसके समस्त गौरव और ऐश्वर्य के साथ जनता के सम्मुख रखना चाहते थे।

भारतेन्दु-युग की देशप्रेम सम्बन्धी कविताओं में एक और प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। ये कवि बहुधा अपनी मातृभूमि को उसकी दयनीय स्थिति से उबारने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ नीलदेवी की राष्ट्र को बचाने के लिए कृष्ण से प्रार्थना करने में, भारतेन्दु ने अपने युग के दुःख और वेदना को वाणी दी है।[१८] राधाकृष्णदास भी भारतवासियों की दयनीय दशा सुधारने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।[१९]

ईश्वर की शरण माँगने का यह कारण भी स्वाभाविक है। ब्रिटिश राज्य की स्थापना, जनता की आशा के विपरीत, भारत में किसी के हित का कारण न बन सकी। जनता ने शीघ्र ही अपने को कठोर तथ्यों का सामना करते हुए पाया। किन्तु अभी तक भारतीय जनता ने कर्म की महत्ता न जानी थी, और वह कर्म में रत होने के विपरीत ईश्वर से सहायता की याचना करने लगी थी। अतः कवियों की इस प्रकार की कवितायें जन-मन ही की अभिव्यक्ति हैं।

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस युग की देश-प्रेम संबंधी कविताओं में केवल भारत के अतीत गौरव का गान और उसकी अर्वाचीन शोचनीय दशा पर विलाप भर ही है। इसके विपरीत उनमें हमें कर्म का भी संदेश सुनाई पड़ जाता है। उदाहरणार्थ भारतेन्दु भारतवासियों को जाग्रत होने और उन्हें भारत के बचे गौरव की रक्षा करने के लिए आदेश देते है।[२०]

१८८५ में कांग्रेस की स्थापना और उसके पश्चात् स्वदेशी आन्दोलन ने राष्ट्रवाद के इस राजनीतिक पक्ष को और पुष्ट कर दिया। स्वदेशी वस्तुओं

---

[१८] वही, भाग १, पृ० ५३६

कहाँ करुणानिधि केशव सोये,
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये।

[१९] 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली', पृ० ६१

हम आरत भारत वासिन पै अब दीन दयाल दया करिये।

[२०] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', पृ० ४१०

जागो जागो रे भाई...
अबहु चेति पकरि राखो किन
जो कुछ बची बड़ाई।

ही का प्रयोग करने के लिए समग्र भारत में जन-समुदाय आतुर हो उठा। इसी भावना की अभिव्यक्ति हिन्दी कवियों के द्वारा भी हुई। अतः हम भारतेन्दु को विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने वाले लोगों की निन्दा करते हुये पाते हैं।[२१]

अतः हम अतीतोन्मुख राष्ट्रवाद के स्थान पर प्रगतिशील राष्ट्रवाद की क्रमशः स्थापना देखते हैं। उत्तर काल की भारतेन्दु-युगीन कविता में क्रान्ति की भावना के चिह्न यत्र-तत्र मिल जाते हैं। यहीं पर भारतेन्दु-युग की राष्ट्रीय कविता समाप्त होती है और अगली पीढ़ी के कवियों को हम भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अपनी वाणी का सहयोग देते हुए पाते हैं। अतः भारतेन्दु-युग को हम राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों पक्षों के बीजारोपण का काल (seed time) कह सकते हैं।

(३) आर्थिक शोषण

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारत में अंग्रेज मुख्यतया यहाँ का आर्थिक शोषण करने के उद्देश्य से आये थे। अंग्रेज व्यापारी इङ्गलैण्ड में वस्तुओं के क्रय से भारी लाभ उठाते थे। कभी-कभी उन्हें उनके मूलधन पर ३०० प्रतिशत तक लाभ हो जाता था। फलस्वरूप इङ्गलैण्ड के कपड़े के उद्योग का ह्रास होने लगा और भारत में इङ्गलैण्ड से धन आने लगा। इसे रोकने के लिये इङ्गलैण्ड की सरकार ने भारतीय व्यापार को नष्ट करने के लिये प्रयत्न आरंभ कर दिये और शीघ्र ही भारतीय वस्तुओं को इङ्गलैण्ड में क्रय करने पर वैधानिक रूप से निषेध कर दिया। १७३५ के विधान द्वारा भारतीय वस्तुएँ क्रय करने वाले अंग्रेज व्यापारी पर २५ पाउण्ड दंड का विधान किया गया। इसके अतिरिक्त भारत में अंग्रेज़ी माल की खपत के लिए भारतीय वस्तुओं पर भारत ही में ऊंचा कर लगाया गया और भारतीय उद्योगों को नष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया गया।

जब कि अंग्रेजी सरकार भारत के लिये अपनी आर्थिक नीति बना रही थी उसी समय यूरोप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। यह यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति थी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना इङ्गलैण्ड और यूरोप में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति की घटना के साथ हुई।

---

[२१] वही, भाग २, पृ० ७३५

मारकीन मखमल बिना चलत कछु नहिं काम
परदेसी जुलहान के मानहुँ भये गुलाम।

बंगाली लेखकों ने, जिनमें दीनबन्धु मित्रा और मधसूदन दत्त प्रमुख हैं, इन योरपीय मालिकों के दुर्व्यवहार का नग्न चित्रण किया है।

हिन्दी लेखकों का ध्यान भी शीघ्र ही भारत के इस आर्थिक शोषण की ओर गया। भारतेन्दु ने, जिन्होंने भारत में अंग्रेजी राज्य की पहले इतनी प्रशंसा की थी, अब भारतीय धन के विदेश चले जाने पर अति खेद प्रगट किया।[२२] उन्होंने पहेलियों के रूप में अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता के शोषण पर प्रहार किया।[२३]

इसके अतिरिक्त अबीसीनिया (१८६७), ईराक़ (१८७५), अफ़गानिस्तान (१८७८), मिस्र (१८८२), सूडान (१८८५) और बर्मा (१८८६) के युद्ध में भारत को युद्ध-व्यय के लिए धन देने के लिये बाध्य किया गया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय कोष पूर्णतः रिक्त किया जाने लगा। इसका सुन्दर वर्णन भारतेन्दु ने अपनी कविता 'विजयवल्लरी' में किया है जिसे उन्होंने अंग्रेजो की अफ़गान-युद्ध में विजय के अवसर पर लिखा था।[२४]

बालमुकुन्द गुप्त की कुछ कविताओं में ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत भारत के आर्थिक शोषण का नग्न वर्णन मिलता है। एक कविता में वे ईश्वर से प्रश्न करते हैं कि किस पाप के कारण भारत देश में आज हाड़ों की चक्की चलती है और उनका व्यापार होता है। नर कंकालों के ढेर के रूप में भारत

---

[२२] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग १, पृ० ४७०

अंगरेज राज सुख साज सबै अति भारी
पै धन विदेश चलि जाति यहै अति ख्वारी।

[२३] वही, भाग २, पृ० ८११

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।

[२४] वही, पृ० ७६५

भारत कोष विनास को हिय अति ही अकुलात
....

स्ट्रेची डिजरैली लिटन चितन नीति के जाल
फँसि भारत जर्जर भयो काबुल युद्ध अकाल।

का यह वर्णन रोमांचकारी दृश्य उपस्थित करता है।[२५] दूसरे स्थान पर वे भारत को मरघट के रूप में और भारतवासियों को प्रेत रूप में देखते हैं।[२६]

प्रताप नारायण मिश्र की कवितायें भी बहुधा भारतीय जनता के आर्थिक शोषण को व्यक्त करती हैं। उनकी 'तृप्यन्ताम' कविता का प्रकाशन हिन्दी के व्यंग्यात्मक काव्य में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस कविता का व्यंग इतना तीखा है कि उसकी तुलना केवल प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक स्विफ़्ट (Swift) से की जा सकती है।[२७] वे कहते हैं कि ऐसी स्थिति में जब मँहगी और कर के कारण साग-पात भी प्राप्त करना दुर्लभ हो रहा है, नागदेवता को दुग्ध पान कराना असम्भव है। वे उन कवियों पर भी व्यंग की छींटें डालते हैं जो ऐसी शोचनीय स्थिति में भी नायिका के सौंदर्य वर्णन में अपने कवित्व की गरिमा समझते हैं।[२८] ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लालच और भूख की चरम सीमा तो श्मशान के दृश्य में व्यक्त की गई है जहाँ प्रेत और प्रेतनियाँ नर-नारियों के मृतक शरीरों को खाने में व्यस्त हैं पर वे उनमें रक्त की एक बूँद भी पाने में असमर्थ हैं।[२९]

---

[२५] 'स्फुट कविता', 'हे राम'

जहँ वहँ नर कंकाल के लागे दीखत ढेर
नरन पशुन के हाड़ सों भूमि छई चहुँ फेर।
हरे राम केहि पाप ते, भारत भूमि मँझार
हाड़न की चक्की चले, हाड़न को व्यापार।

[२६] वही, 'आवहु माई'

भारत घोर मसान है, तू आप मसानी
भारतवासी प्रेत से डोलहिं कल्यानी।

[२७] डॉ० रामविलास शर्मा, 'भारतेन्दु युग' (युग मन्दिर, उन्नाव) पृ० १५६

[२८] 'तृप्यन्ताम' (बाँकीपुर पटना, खड्ग विलास प्रेस, १६१४) पद १६

मँहगी और टिकस के मारे हमहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम।
साग पात लौं मिलै न जिय भर लेबो वृथा दूध को नाम॥
तुमहि कहा प्यावैं, जब हमरो कटत रहत गोवंश तमाम।
केवल सुमुखि-अलक उपमा लहि नाग देवता तृप्यन्ताम।

[२९] वही, पद ५७

सुख सों खेलहु खाहु सजहु तन जो कछु मिलै हाड़ औ चाम।
लहौ जो एकौ बूँद रकत तो बसि पिशाच कुल तृप्यन्ताम।

भारतेन्दु युग की कविता आर्थिक शोषण को व्यक्त करने में और जन-मन की भावनाओं को मुखरित करने में सफल हुई है। कलाकार की विचार-वस्तु उसके स्वप्न न होकर वास्तविकता के कठोर तथ्य होते हैं और काव्य जन-मन के भावों का माध्यम स्वरूप होता है अतः वह जनता में आर्थिक चेतना जाग्रत करने का शस्त्र बन जाता है।

(४) सामाजिक एवं धार्मिक सुधार

अंग्रेज़ों द्वारा भारत के लिये एक महत् कार्य यह हुआ कि वह वाह्य जगत के सम्पर्क में आ सका, और इससे भारत पर संसार के सब प्रकार के आन्दोलनों का प्रभाव पड़ना आरंभ हो गया। अब भारत के लिये अपनी प्राचीन रूढ़िवादी प्रथाओं का त्याग स्वाभाविक था। धर्म और समाज के विषयों में एक प्रश्नात्मक दृष्टिकोण का विकास होने लगा। इसका पहला प्रभाव यह पड़ा कि प्राचीन आस्थाओं से हमारा विश्वास हट गया। फलस्वरूप सामाजिक और धार्मिक मूल्यों में अराजकता आने लगी। आलोचना के इस ज्वार में हम अपनी संस्कृति के अच्छे तत्वों को भी बहाने लगे, और पाश्चात्य संस्कृति के चकाचौंध करने वाले किन्तु अनैतिक आदर्शों को अपनाने का प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजी संस्कृति और सभ्यता के संपर्क का यह हानिकारक प्रभाव भारतेन्दु-युग के कवियों से छिपा न था और उन्होंने भारतीयों की इस मनःस्थिति की तीव्र आलोचना की। भारतेन्दु ने स्पष्ट कहा कि अंग्रेजों से उनके अवगुण ही भारतीय लेने में समर्थ हो सके।[३०] अपनी एक मुकरी में भारतेन्दु ने बहुधा अनुसरण की जाने वाली अंग्रेजी संस्कृति पर व्यंग करते हुए कहा कि वह बाह्य रूप में सुन्दर होते हुए भी अन्तस में तत्व रहित है।[३१]

भारतेन्दु ने अपनी 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में अंग्रेज़ी में हास्य रस की कुछ रचनायें प्रकाशित की थीं। १५ मई १८७४ के अंक में 'आत्म परिचय' (Self Introduction) नाम की कविता प्रकाशित हुई जिसमें अंग्रेजी

---

[३०] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग १, पृ० ४७४

लिया भी तो अंग्रेज़ों से तो औगुन।

[३१] वही, भाग २, पृ० ८१०

सब गुरुजन को बुरो बतावै, अपनी खिचड़ी आप पकावे।
भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेजी।

संस्कृति के अन्धानुकरण पर व्यंग था:—

I introduce myself to you, sir, I am poora gentleman,
Take my salam, give me chair,
Honour me very much if you can,
I'm born in noble family, noble parents, I have too
I get chair in Lat Sab Darbar,
My number is ninety two...etc.

'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन,' संख्या ७, वर्ष १८७३ में भारतीय बाबू लोगों की शोचनीय मनःस्थिति पर व्यंग था:—

When I go sir molakat ko, these chaprasis
Trouble me much,
How can I give daily Inam, ever they ask
Me I say much,
Sometime they give me gardaniya
And tell me' Bahar niklo tum
Dena na lena muft ke aya yaha hain
Bare Darbari ki dum,

अतः अंग्रेजी सभ्यता के अन्धानुकरण के विपरीत एक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क के फलस्वरूप भारत की सुप्त बौद्धिक एवं आलोचनात्मक दृष्टि फिर से तीव्र हो गई। १८५७ में कर्नल कनिंघम (Col. Conningham) के प्रयत्न से पुरातत्व विभाग की स्थापना हुई जिसके परिणामस्वरूप तक्षशिला, बनारस, हड़प्पा और मोहन जोदड़ों में खोज कार्य सम्पन्न हो सका। इस प्रकार भारत के अतीत गौरव के विषय में चेतना उत्पन्न करने में इस विभाग द्वारा पर्याप्त सहायता मिली। सन् १८७४ में स्थापित बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा संस्कृत की कई पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद हुआ। ये अनुवाद योरप भर में बड़े आदर से देखे गए। इसके अतिरिक्त भारत में उसके वैदिक साहित्य की पुनर्स्थापना हुई। ये वेद और संहिताएँ भारतीयों के लिए दुर्लभ हो गए थे और योरपीय विद्वानों के परिश्रम से ही इनका पुनः स्थापन हो सका।

जिस प्रकार योरपीय पुनरोत्थान (Renaissance) शीघ्र ही धार्मिक सुधार (Reformation) का कारण बना था, उसी प्रकार भारत के अतीत गौरव की पुनर्स्थापना धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सुधार और प्रगति का कारण बनी। दीर्घकाल से रूढ़िग्रस्त तथा गतिहीन भारतीय संस्कृति प्राचीन

वैदिक साहित्य के अभिनव पर्यवेक्षण द्वारा पुनः प्रगतिशील बन गई। सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में नये सुधार करने के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना होने लगी। ये संस्थायें अपनी प्रेरणा सदा इंग्लैंड और योरप से लेती थीं। अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म प्रचारकों के कार्य से भी इन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को प्रेरणा प्राप्त हुई।

इन अनेक संस्थाओं में आर्यसमाज और ब्राह्म समाज प्रमुख हैं। हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि आंग्ल प्रभाव से किस प्रकार इन संस्थाओं की स्थापना और उनके विकास में सहायता मिली है। इन आन्दोलनों का पढ़ी-लिखी भारतीय जनता ने बड़े उत्साह से स्वागत किया और हिन्दू धर्म ने नवीन तत्वों को अंगीकार कर अपनी उदारता का आश्चर्यजनक परिचय दिया। इन आन्दोलनों का उद्देश्य भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में सुधार करना था. अतः हिन्दू धर्म में गुरुडम और कर्मकांड का वहिष्कार अब इन आन्दोलनों के कारण सरल हो गया।

१८७५ में स्थापित आर्य समाज ने भारतेन्दु-युग की विचारधारा पर यथेष्ट प्रभाव डाला। इस संस्था ने एक विशुद्ध हिन्दू धर्म का प्रचार किया जो केवल वेदों के प्रमाण पर आधारित था। आर्य समाज ने वेदोत्तरकालीन हिन्दू धर्म के पौराणिक स्वरूपको सर्वथा त्याज्य बताया तथा वेदों में धर्म और विविध विज्ञान के सब तत्वों का समावेश सिद्ध किया। भारतेन्दु और उनके युग के अन्य कवि आर्य समाज की इस कट्टरता के पक्ष में न थे किन्तु वे आर्य समाज द्वारा सामाजिक सुधार के कार्यक्रम से अत्यधिक प्रभावित हुये। भारतेन्दु विधवा-विवाह, समुद्र-यात्रा, स्त्री-शिक्षा आदि के समर्थक थे और वे बालविवाह, बहुविवाह आदि कुप्रथाओं का विरोध करते थे। उन्होंने सिद्ध किया कि समुद्र-यात्रा, विधवा-विवाह आदि का धर्म शास्त्रों में विधान है।[३२] ब्राह्म समाज और आर्य समाज के विषय में भारतेन्दु कहते हैं:—

"ब्राह्म समाज ने आर्य संस्कृति पर आक्रमण तो अवश्य किया है, पर हमारे लुप्तप्राय प्राचीन साहित्य का प्रकाश भी उसने हमें दिया है।

---

[३२]दे० ब्रजरत्नदास, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९३५) पृ० ९१

"बहुत सी बातें जो समाज विरुद्ध मानी हैं किन्तु धर्म शास्त्रों में जिनका विधान है उनको चलाइये जैसे जहाज़ का सफ़र, विधवा विवाह आदि।··· बहु विवाह आदि को दूर कीजिये। लड़कियों को भी पढ़ाइये।"

उसके प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय निस्संदेह एक असाधारण पुरुष थे। हमें ब्राह्म समाज से घृणा न करनी चाहिये। इसी प्रकार आर्य समाज द्वारा भी बहुत कुछ सामाजिक सुधार होने की हमें आशा है। आर्य समाज ही अप्रत्यक्ष रीति से सनातन धर्म की रक्षा करेगा।"[३३]

अतः भारतेन्दु अपने विचारों में उदार थे और वे युग की गतिवर्द्धक शक्तियों के पक्ष में थे। 'भारत दुर्दशा' में एक स्थल पर उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का विशद वर्णन किया है। उन्होंने बहुविवाह होने और विधवा-विवाह न होने से समाज पर उनके दुष्परिणामों का उल्लेख किया है। वे भारतीयों से विदेश-यात्रा करने और कूप-मंडूकता के परित्याग के लिए अनुरोध करते हैं। उनके मतानुसार बिना सम्पर्क में आये किसी भी संस्कृति का प्रचार संभव नहीं हो सकता।[३४] उन्होंने छुआछूत तथा बहुसंख्यक धर्मों का भी विरोध किया।[३५] वे लड़कियों की शिक्षा के पक्ष में थे और परीक्षाओं में सफल छात्राओं को पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित करते थे।[३६]

भारतेन्दु सदैव सामाजिक सुधार के पक्ष में थे। युग के अन्य कवि भी भारतेन्दु की भाँति सामाजिक पुनर्संगठन के पक्ष में थे। किन्तु इन सब में भारतेन्दु का दृष्टिकोण समन्वयात्मक होने के कारण सब से अधिक तर्क-संगत था। वे दो विपरीत शक्तियों से, जिनमें एक रूढ़िवादी थी और दूसरी नवीनता-प्रेमी, उत्पन्न सामाजिक मूल्यों की अराजकता से भलीभाँति परिचित थे। प्राचीनता-प्रेमी वर्ग में पुराणों के प्रति अपार श्रद्धा थी और वह किसी भी परिवर्तन के लिए सहमत न था, दूसरा नवीनता-प्रेमी वर्ग पाश्चात्य संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित था कि वह रूढ़ि और परम्परा का

---

[३३] वही, पृ० १३६

[३४] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग १, पृ० ४७५

करि कुलीन के बहुत विवाह बल वीरज मार्‌यो
विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचार्‌यो।
रोकि विलायत गमन कूप-मंडूक बनायो
औरन को संसर्ग छुटाई प्रचार घटायो।

[३५] वही, ४७४

बहुत फैलाये हमने धर्म, बढ़ाया छूआछूत का कर्म।

[३६] दे० ब्रजरत्नदास, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,' पृ० ६१

सर्वथा त्याग चाहता था।[३७] भारतेन्दु को ये दोनों प्रकार की मनोवृत्ति अरुचिकर थी। यदि वे भारतीयों को कूप-मंडूक देखना नहीं चाहते थे तो दूसरी ओर वे उनका ईसाई होना भी सहन न कर सकते थे। वे संक्रांतिकाल की विपत्तियों को पहिचानते थे। अतः उन्होंने लोगों से अपने दृष्टिकोण में एकांगी न होने के लिए अनुरोध किया।

प्रेमघन भी भारतेन्दु की भाँति अपने विचारों में उदार थे। वे प्रचलित अंधविश्वासों और परम्पराओं को त्यागने के पक्ष में थे[३८] और समाज में आवश्यक संशोधन चाहते थे।[३९]

(स) अंग्रेज़ी ग्रन्थों के अनुवाद[४०]

यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का नया साहित्य अंग्रेज़ी ग्रन्थों के अनुवादों से प्रारम्भ हुआ है। आधुनिक

---

[३७] 'भारतेन्दु ग्रन्थावली,' भाग २, पृ० ५००-५०१

भारत में एहि समय भई है सब कुछ बिनहिं प्रमान हो दुइरंगी।
आधे पुराने पुरानहिं माने ! आधे भये किरिस्तान हो दुइरंगी॥
क्या तो गदहा सो चना चढ़ावैं, कि होइ दयानंद जायँ हो दुइरंगी।
क्या तो पढ़ै कैथी कोठिवलियै. कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइरंगी॥

[३८] 'प्रेमघन सर्वस्व,' भाग १, पृ० ३७४

प्रचलित हाय अंध परिपाटी पर तुम चलते जाते
आर्य वंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं लजाते।

[३९] वही,

आवश्यक समाज संशोधन करो न देर लगाओ।

[४०] अंग्रेजी कविताओं के हिन्दी अनुवाद वस्तुतः द्विवेदी-युग की विशेषता हैं। किन्तु कुछ हिन्दी कवियों ने ये अनुवाद १९वीं शती में ही प्रारम्भ कर दिये थे। अतः इन अनुवादों का उल्लेख भारतेन्दु-युग के साथ हो, जिसका विस्तार ३५ वर्षों तक सन १८६७ से १९०२ तक है, करना आवश्यक जान पड़ता है। अन्यथा इन अनुवादों का परम्परा प्रारम्भ होते ही हिन्दी कविता में एक नवीन युगान्तर उपस्थित हो जाता है। अतएव अध्याय के इस भाग को हम द्विवेदी-युगीन हिन्दी कविता की भूमिका के रूप मे ले सकते हैं। विशेषकर श्रीधर पाठक को जिनकी रचनाओं पर अभी विचार किया जावेगा, हम भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के बीच की कड़ी मान सकते हैं।

हिन्दी साहित्य में भी यही बात घटित होती है। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन से भारतीयों के सम्मुख विचार और अनुभूति का एक स्पृहणीय मार्ग प्रशस्त हो गया। अनेक अंग्रेज़ी ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद प्रारम्भ हो गया और हिन्दी साहित्य को एक नयी साहित्यिक परम्परा के दर्शन हुये। यहाँ पर उन प्रमुख अंग्रेजी लेखकों का नाम लेना युक्तिसंगत होगा जिन्होंने हमारे साहित्य की गतिविधि को एक नये मोड़ पर लाने में सहायता प्रदान की है। इनकी रचनाएँ हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में बड़े उत्साह के साथ पढ़ी जाती थीं और उन्होंने हिन्दी कवियों के मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है। इनमें विशेषकर वे लेखक हैं जो हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश के विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० की कक्षाओं में पढ़ाये जाते थे। अंग्रेजी कवियों में पोप (Pope), गोल्डस्मिथ (Goldsmith), टामसन (Thomson), ग्रे (Gray), कूपर (Cowper), वर्ड्सवर्थ (Wordsworth), स्काट (Scott), बायरन (Byron), मैकाले (Macaulay) और लांगफेलो (Longfellow) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों की अनेक कविताओं का भारतेन्दु-युग के उत्तर काल में हिन्दी में अनुवाद किया गया।

भारतेन्दु-युग में सम्भवतः गोल्डस्मिथ हिन्दी लेखकों का सर्वप्रिय अंग्रेजी कवि था। विश्वविद्यालयों में गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट' (Hermit), 'डेज़र्टेड विलेज' (Deserted Village) और 'ट्रेवलर' (Traveller) ग्रन्थ विशेष कर पढ़ाये जाते थे। उन सब ग्रंथों का हिन्दी भाषा में शीघ्र ही अनुवाद हो गया। 'हर्मिट' का सर्व प्रथम अनुवाद १८७६ में लक्ष्मीप्रसाद पांडे द्वारा खड़ी बोली हिन्दी में हुआ। इस अनुवाद का नाम 'योगी' था और उसको पूर्णतया भारतीय पृष्ठभूमि दी गई थी। किन्तु गोल्डस्मिथ के ग्रंथों का सफल अनुवाद करने का श्रेय श्रीधर पाठक को ही है। उन्होंने रीतिकाल की काव्य परम्परा का विरोध किया। रीतिकाल की कविता की विषय-सामग्री नायक-नायिका भेद और प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन पक्षों तक ही सीमित थी। श्रीधर पाठक ने इन दोनों साहित्यिक परम्पराओं का विरोध किया। उन्होंने नायक-नायिका का विषय न लेकर साधारण व्यक्ति के भावों को काव्य के माध्यम द्वारा व्यक्त किया और प्रकृति का एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में वर्णन किया। अंग्रेज़ी काव्य में उन्हें इस प्रकार की भावना पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुई। गोल्डस्मिथ के काव्य के प्रकृति-चित्रण ने उनकी काव्य-कल्पना पर यथेष्ट प्रभाव डाला। अतः उन्होंने इस अंग्रेज़ी कवि की प्रमुख रचनाओं का हिन्दी अनुवाद करना आरम्भ किया। १८८६ में उनका 'हर्मिट' का अनुवाद

'एकान्तवासी योगी' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद ने हिन्दी कविता को नई गतिविधि प्रदान की। अंग्रेज़ी काव्य के प्रकृति-चित्रण ने हिन्दी कवियों के सम्मुख एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन किया। 'एकान्तवासी योगी' के प्राकृतिक सौन्दर्य के छोटे-छोटे चित्रण, और उसके संगीत के कारण उसे अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इसमें शृंगारिक भावना रूढ़ि और परम्परा के अनुसार न होकर नवीन रोमांटिक ढंग की थी। कविता के समस्त वातावरण को भारतीय पृष्ठभूमि दी गई थी और उसके योगी का चित्र बहुत कुछ भारतीय ऋषि का स्मरण दिला देता है जिसे परमेश्वर की दया पर विश्वास, पशुहिंसा से भय और जिसका आहार कंद-मूल फल-फूल होता है।[४१] रम्य कुटी, झरना और गिरिपर्वत पर हरियाली प्रकृति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति करते हैं। अतः यह अनुवाद हिन्दी काव्य में एक नवीन वस्तु थी और इसने कवियों को प्राचीन साहित्यिक परम्परा तोड़ने में सहायता दी।

इसके उपरांत श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'डेज़रटेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से किया। इस कविता में भी पाठक ने भारतीय वातावरण के अनुकूल वर्णन किया। इस अनुवाद के विषय में लन्दन के 'ऐलेन इण्डिया मेल' ने अति प्रशंसा करते हुए कहा कि यह अपने हिन्दी भाषान्तर में सर्व प्रकार से पूर्ण तथा सफल है, तथा यदि कोई हिन्दी कवि किसी अंग्रेजी ग्राम का वर्णन अपनी मौलिक कृति में भी करता तो इससे अधिक सफल न हो सकता था।[४२] लन्दन की 'इण्डियन मैगज़ीन' ने भी इसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि इस कविता पुस्तक में मन को थकाने वाली काल्पनिक उड़ान की अपेक्षा प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण की अधिक प्रवृत्ति है तथा

---

[४१] **इस पर्वत की रम्य कुटी में मैं स्वच्छंद विचरता हूँ**
परमेश्वर की दया देख के पशुहिंसा से डरता हूँ।
गिरिवर ऊपर हरियाली झरना जल निर्दोष
कंद मूल फल फूल इन्हीं से करूँ क्षुधा सन्तोष।

[४२] 'एलेन इण्डिया मेल आव लन्दन,' ७ फ़र्वरी १८६०

A very successful translation of 'The Deserted Village' into Hindi has just made its appearance...... It reads with perfect fluency and sonority in its Hindi dress; indeed had an Indian composed an original poem on English Village life he could not have put together a more finished production.

इस प्रकार के परिवर्तन का प्रभाव भारतीय साहित्य के लिये अति हितकारी सिद्ध हो सकता है। इस पत्रिका के अनुसार पूर्व का साहित्य अस्वाभाविक उपमाओं और अलंकारों से परिपूर्ण होने के कारण मस्तिष्क को एक काल्पनिक जगत् में विचरण करने के लिये ले जाता है और उसे व्यवहारिक जगत् के लिये अयोग्य बना देता है। इसके विपरीत प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन हृदय की सौंदर्य-प्रवृत्ति को संतुष्ट करने के साथ मन को सत्य और वास्तविकता की परिध में भी रखता है।[४३]

श्रीधर पाठक वास्तव में गोल्डस्मिथ से अत्यधिक प्रभावित थे और उनके गोल्डस्मिथ के अनुवाद उनकी मौलिक रचनाओं से प्रतीत होते हैं। वे अपने अनुवादों की पृष्ठभूमि में सदा देशी वातावरण उपस्थित करते हैं। ग्वालिनियों और गाँव के रसिक युवकों के गाये गीत, अपने बछड़ों के लिए रंभाते हुये गायों के झुण्ड, तालाबों में शोर मचाते हुए हंस, गाँव की पाठशाला से लौटते हुये बालक आदि 'ऊजड़ ग्राम' में दिये अनेक चित्र किसी भी ब्रज के गाँव की स्मृति दिला देने के लिये पर्याप्त हैं।[४४]

पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ के 'ट्रेवलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' (१६०२) देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। देश प्रेमी को सदैव

---

[४३] 'द इण्डियन मेगज़ीन आब लन्दन,' जून १८८८

It is obviously an attempt on the part of an observing man to lead his countrymen from the extravagance of romance and induces them to realise the more satisfying beauties of Nature... the consequence of such a change of sentiment, if ever accomplished, would be most beneficial to India. The exuberance of hyperbole which disfigures oriental verse and legend, lifts the mind into clouds of dreamland and weakens the practical virtues which make a nation great. The simplicity of Nature, on the other hand, while satisfying and ennobling the heart keeps the mind within the range of fact and probability.

[४४] कलित ग्वालिनी गान ज्वान छैला जिहि गावैं,
त्यों गौवन के जूथ मिलन बछराव रंभावै।
शब्द शील कलहंस वारिबिचि रारि मचावै,
खेल भरे जो बाल तुरत शाला तजि धावै।

अपने देश पर गर्व रहता है और उसे सब ही स्थानों में अपने देश का ध्यान रहता है।[४९]

श्रीधर पाठक की कविता में हम देखते हैं कि मानव-प्रेम ('एकांतवासी योगी'), प्रकृति-प्रेम ('ऊजड़ ग्राम') और देश-प्रेम ('श्रांत पथिक') की सुन्दर त्रिवेणी है।[४६]

गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त हिन्दी कवियों को ग्रे की कविता भी अत्यन्त प्रिय थी। ग्रे की प्रसिद्ध 'एलेजी' (Elegy written in a Country Churchyard) का अनुवाद अनेक कवियों ने हिन्दी में किया। १८९७ में इसका सर्व प्रथम अनुवाद मांउटआबू के किसी विद्या रसिक ने किया था। किन्तु यह अनुवाद स्वाभाविक न होने के कारण सफल न हुआ। १९१० में कामताप्रसाद गुरु ने इस कविता का सफल अनुवाद किया और उसे भारतीय पृष्ठभूमि दी। ग्रे के 'शेफर्ड एण्ड फ़िलासफ़र' का अनुवाद 'गड़रिया और आलिम' के नाम से १८८४ में श्रीधर पाठक ने किया।

इन अनुवादों के अतिरिक्त श्रीधर पाठक ने लांगफेलो के 'एवेंजलीन' (Evangeline) का 'एञ्जलेना' के नाम से १८८६ में अनुवाद किया। टामस पार्नेल (Thomas Parnell) के 'हर्मिट' (Hermit) का अनुवाद भी १८९५ में 'योगी' के नाम से हुआ।

इन अनुवादों का एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि हिन्दी कविता की वर्ण्य वस्तु में पहले से अधिक स्वाभाविकता मिलने लगी। प्रेमघन की वर्णनात्मक कविता 'जीर्ण जनपद' इसी प्रकार की सत्य और वास्तविकता पर आधारित एक कविता है। इस कविता की प्रेरणा प्रेमघन को गोल्डस्मिथ के 'डेज़र्टेड विलेज' से प्राप्त हुई। गोल्डस्मिथ ही की भाँति प्रेमघन ने भी ग्राम जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा ग्राम पाठशाला आदि के वर्णन किये हैं। कवि ने अपने बाल्य-काल का स्मरण अति रुचिर ढंग से किया है। गोल्डस्मिथ की भाँति प्रेमघन के इस काव्य का विषय भी अतीत की सुखद स्मृतियाँ प्रतीत होता है। कवि को ग्राम की ऊजड़ अवस्था देखकर अनायास अपनी बाल्यावस्था

---

[४९] है स्वदेश प्रेमी का ऐसा ही सर्वत्र देश अभिमान,
उसके मन में सर्वोत्तम है, उसका ही जन्म स्थान।

[४६] दे० सुधीन्द्र, 'आधुनिक कवि,' (दिल्ली, १९५०), पृ० ८

के कोलाहलपूर्ण ग्राम का स्मरण हो आता है, और उसका हृदय एक असीम वेदना से भर जाता है।[४७] ग्राम का वह फाटक जहाँ पहले दिन रात प्रहरी उपस्थित रहते थे अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा है।[४८] अपने बाल्यकाल की पाठशाला के खंडहर देखकर तो कवि का हृदय द्रवित ही हो उठता है।[४९] किन्तु दत्तापुर ग्राम के जीवन की प्रशंसा करने में प्रेमघन उनकी अनेक बुराइयों का विस्मरण नहीं कर देते। वे उस सामन्तयुग में ग्रामीणों पर जमींदार और उसके कर्मचारियों द्वारा किये गये अत्याचारों का भी वर्णन करने में नहीं चूकते।[५०] ग्राम की आधुनिक स्थिति का वर्णन करने में वे वहाँ की निर्धनता, बेकारी तथा शारीरिक एवं मानसिक अधःपतन की ओर भी संकेत कर देते हैं।[५१]

अतः प्रेमघन अपने काव्य 'जीर्ण जनपद' में तथ्यों का निष्कपट वर्णन करने में अधिक सफल हुये हैं। इस दिशा में उनका वर्णन गोल्डस्मिथ की अपेक्षा सम्भवतः क्रेब (Crabbe) के अधिक निकट है।[५२]

---

[४७]प्रेमघन सर्वस्व', भाग १, पृ० ८

हा दत्तापुर रह्यो जो देश उजागर
गमना गमन मनुज समूह जित रहत निरंतर... इत्यादि

[४८]वही, पृ० ११

नित जापै प्रहरीगन गाजत रहे निरंतर
वह फाटक सुविशाल सयन करि रह्यो भूमि पर।

[४९]वही, पृ० २२

मच्यो रहत नित सोर सुभग बालकन को जँह
आज रोर काकन को करकश सुनियत है तँह।

[५०]वही, पृ० १४

कहलावत दीवान दया की बानि बिसारी
बाकी लेत चुकाय छनहिं में मालगुजारी॥ इत्यादि

[५१]वही, पृ० ५६

नहिं इनके तन रुधिर, मास नहिं बसन समुज्ज्वल
नहिं उनके नारिन तन भूषन हाय आज कल।...इत्यादि

[५२]डे० राम विलास शर्मा, 'भारतेन्दु युग', पृ० १६३

भारतेन्दु की कुछ प्रकृति संबंधी कविताओं में भी अंग्रेज़ी कवियों का प्रभाव दृष्टि में आता है। किन्तु अधिकांश कविताओं में वे रीतिकालीन परम्परा से निर्देशित हुए। उन्होंने प्रकृति-वर्णन अधिकतर 'उद्दीपन' अथवा 'आलम्बन' के भाव से किया है। केवल कुछ कविताओं में उन्होंने प्रकृति-वर्णन स्वतन्त्र रूप से किया है। उदाहरणार्थ 'चन्द्रावली' नाटिका के 'यमुना वर्णन' में अथवा 'हरिश्चन्द्र' नाटक के 'गङ्गा वर्णन' में इन्होंने रीतिकालीन परंपरा को तोड़ कर प्रकृति का स्वतन्त्र एवं स्वाभाविक वर्णन करने की चेष्टा की है। किन्तु इन कविताओं में भी उपमाओं और रूपकों की भरमार है। केवल अपनी कविता 'प्रात समीरण' में वे प्रातः समीर का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन करने में सफल हो सके हैं।[९३]

किन्तु अंग्रेज़ी काव्य का सर्वाधिक प्रभाव श्रीधर पाठक की प्रकृति संबंधी कविताओं पर पड़ा है। हम पहले देख चुके हैं कि वे अपने अनुवादों में रीतिकालीन काव्य परंपरा तोड़ने में पूर्णतया सफल हुए थे। उनके द्वारा रचित नए काव्य में प्रकृति-प्रेम भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अपने प्रकृति-चित्रण में गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त उन्हें जेम्स टामसन (James Thomson) की 'द सीज़न्स' (The Seasons) नामक कविता से भी यथेष्ट प्रेरणा मिली है। उनकी 'मेघागमन', 'घनविनय', 'गुणवंत हेमंत', 'बसन्त' आदि कविताओं में टामसन के काव्य का प्रकृति-दर्शन प्राप्त होता है। उनकी 'हेमंत' कविता में टामसन के 'विन्टर' (Winter) की प्रतिध्वनि मिलती है।

श्रीधर पाठक ने 'काश्मीर सुषमा' में प्रकृति को एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में देखा है। प्रकृति अपना शृंगार करने के लिए काश्मीर के स्वर्ग में एकान्त स्थान खोज लेती हैं। वह क्षण-क्षण में अपना वेश परिवर्तित करती है।[९४] पाठक ने प्रकृति का इस प्रकार विलासपूर्ण युवती के रूप में दर्शन किया है।[९५]

---

[९३] मंद मंद आवै देखो प्रात समीरन
करत सुगंध चारो ओर विकीरन।
गात सिहरात तन लगत सीतल
नैन निद्रालस जन-सुखद चंचल।...इत्यादि

[९४] प्रकृति यहाँ एकांत बैठ निज रूप सँवारति
पल पल पलटति भेस छनिक छबि छिन छिन धारति।...इत्यादि

[९५] विहरति विविध विलास भरी जोबन के मद सनि
ललकति किलकति अलकति निरखति छिरकति बनि बनि।

श्रीधर पाठक के प्रकृति-काव्य में एक और तत्व दुखियों और पीड़ितों के प्रति समवेदना का है। 'मेघागमन' में मेघों के घिर आने का वर्णन करते हुए उन्हें बाल विधवा की भावनाओं का स्मरण हो आता है।[६६] एक दूसरी कविता 'घनविनय' में उन्होंने १८६६ के अकाल का हृदय-विदारक वर्णन तथा बादलों से गगन मंडल पर घिरकर पृथ्वी पर जलधार रूप में बरसने का अनुरोध किया है।[६७]

इस प्रकार प्रकृति का स्वतंत्र रूप से वर्णन हमें भारतेन्दु-युग के उत्तरकालीन अनेक कवियों की रचनाओं में प्राप्त होता है। इस नवीन दिशा में बालमुकुन्द गुप्त तथा अन्य कवियों के सफल प्रयास रहे हैं।

अंग्रेजी काव्य का प्रभाव हिन्दी की देश-प्रेम संबंधी कविताओं पर भी पड़ा है। टामसन की 'रूल बरतानिया'('Rule Britannia') तथा सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) की कविताओं ने भारतेन्दु-युग के कवियों पर यथेष्ट प्रभाव डाला है। प्रेमघन के 'जीर्ण जनपद' काव्य में देश-प्रेम की भावना स्काट के प्रभाव का परिणाम प्रतीत होती है। श्रीधर पाठक ने टामसन की 'रूल बरतानिया' कविता का हिन्दी में अनुवाद किया था। उनकी 'भारत गीत', 'भारत नौमि', 'भारत प्रशंसा' आदि कविताओं पर स्काट और टामसन का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

(द) काव्य के रूप पर प्रभाव

भारतेन्दु-युगीन कविता पर आंग्ल प्रभाव अधिकतर उसकी विषय-सामग्री पर ही पड़ा है। किन्तु यह प्रभाव काव्य की भाषा तथा रूप-विधान पर भी यत्रतत्र मिलता है। जहाँ तक काव्य के अनेक रूपों का संबंध है भारतेन्दु-युग में रीतिकालीन परंपरा का ही पालन हुआ है और केवल कुछ ही काव्य के रूप अंग्रेज़ी कविता से लिये गये हैं।

(१) काव्य के रूप

भारतेन्दु-युग में काव्य के नये रूपों में 'एलेजी' (Elegy) अथवा शोकगीति का नाम लिया जा सकता है। अंग्रेजी में 'एलेजी' अपने प्रारंभिक

---

[६६]अँधियारी रात, हाथ न दिखात, बिन नाथ बाल विधवा डरात।

[६७]भारत है रखो भारत तुम्हारि हि आस,
पुनि पुनि पैकि पुकारत वेगि मिठावहु त्रास।

काल में एक विशेष छन्द में जिसे 'एलेजियक' (Elegiac) कहते हैं लिखा हुआ शोक संबंधी गीत रहा करता था। शोक का कारण मृत्यु, युद्ध, आदि कुछ भी हो सकता था। आधुनिक 'एलेजी' में मृत्यु बहुधा एक प्रारंभिक बिंदु की भाँति ली जाती है जिसका आधार लेकर कवि अनेक विषयों पर मनन करता है यथा पार्थिक जगत् और परलोक, मित्रों को श्रद्धांजलियाँ आदि। हिन्दी में शोकगीतों का प्रारंभ ग्रे को प्रसिद्ध 'एलेजी' के अनुवाद से हुआ। उसके उपरांत प्रेमघन ने एक सुन्दर शोकगीति 'शोकाश्रुबिन्दु' भारतेन्दु की मृत्यु पर लिखा। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त ने भी शोकगीतों की रचना की।

शोकगीति के अतिरिक्त अंग्रेजी काव्य के 'ओड' अथवा संबोधन गीत (Ode) का भी हिन्दी काव्य में प्रचलन हुआ। आक्सफर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'ओड' गाने के उद्देश्य से रचित कविता होती थी, किन्तु अपने आधुनिक रूप में वह कोई भी 'गीति' (Lyric) हो सकती है जिसे संबोधन के रूप में तुकांत अथवा अतुकांत ढंग से ५० और २०० पंक्तियों के मध्य के आकार में लिखा जावे। हिन्दी में संबोधन-गीति का प्रयोग हिन्दी कवियों द्वारा अंग्रेजी प्रभाव के आगमन के साथ ही प्रारंभ हो गया। भारतेन्दु ने विशेष अवसरों पर पढ़ने के लिए अनेक संबोधन-गीतों की रचना की। उनकी 'वैजन्ती विजय पताका', 'भारतभिक्षा' और 'भारत वीरत्व' आदि कविताएँ 'ओड' की शैली में लिखी गई हैं। किन्तु भारतेन्दु अंग्रेजी 'ओड' से सीधे प्रभावित न हुए थे। उदाहरणार्थ उनकी पहली 'ओड' 'भारत भिक्षा' (१८७५) हेमचन्द्र बनर्जी द्वारा प्रिंस ऑव वेल्स के भारत आगमन के अवसर पर रचित कविता के अनुरूप लिखी गई थी।

'ओड' और 'एलेजी' के अतिरिक्त अंग्रेजी काव्य के कुछ अन्य रूपों की भी हिन्दी कविता में अवतारणा हुई। अंग्रेजी 'सानेट' (Sonnet) के अनुरूप श्रीधर पाठक ने चौदह पंक्तियों की एक कविता अपने 'श्रांत पथिक' में समर्पण के रूप में (dedication) लिखी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के व्यंग्य काव्य (satiric poetry) का भी प्रभाव पड़ा। व्यंग्य काव्य सामाजिक कुरीतियों अथवा कुप्रथाओं का उपहास करता है अथवा व्यक्तिगत आक्षेप का रूप धारण कर लेता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ हमें भारतेन्दु-युग के काव्य में प्राप्त होती हैं। भारतेन्दु की 'सन्तो देखी तुम्हरी काशी' व्यंग्य काव्य का अच्छा उदाहरण है। किन्तु प्रतापनारायण मिश्र की 'तृप्यन्ताम' कविता सम्भवतः हिन्दी के व्यंग्य काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

अंग्रेजी काव्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी में एक और नवीन शैली के वर्णनात्मक काव्य का श्रीगणेश हुआ। इस काव्य में चरित्रों और स्थानों के वर्णन के साथ मनन, हास्य तथा व्यंग्य भी रहता था। श्रीधर पाठक के 'श्रान्त पथिक' तथा 'ऊजड़ ग्राम' अनुवादों से इस प्रकार के वर्णनात्मक काव्यों की रचना प्रारम्भ हो गई। इसके उपरान्त प्रेमघन ने 'जीर्ण जनपद' काव्य की रचना की। गोल्डस्मिथ की 'डेज़र्टेड विलेज' कविता की सब विशेषताएँ इस काव्य में थीं—उदाहरणार्थ ग्रामीण जीवन का सुन्दर वर्णन, ग्राम पाठशाला के अध्यापक का वर्णन आदि सब प्रेमघन की कविता में भी था। इसके अतिरिक्त हिन्दी में वर्णनात्मक काव्य में पाठक का 'श्रांत पथिक' अनुवाद भी महत्व का है। गोल्डस्मिथ के मूल 'डेज़र्टेड विलेज' का प्रभाव पाठक की रचना 'देहरादून' में भी मिलता है। हिन्दी में रोमांटिक प्रेम विषयक वर्णनात्मक काव्य का सूत्रपात पाठक की 'एकान्तवासी योगी' कविता से हुआ जो कि गोल्डस्मिथ के हर्मिट (Hermit) का अनुवाद था।

(२) काव्य की भाषा

भारतेन्दु-युग में काव्य की भाषा में जो परिवर्तन आ रहा था उसका एक कारण आंग्ल साहित्य का प्रभाव कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में यद्यपि गद्य तो खड़ी बोली में लिखा जा रहा था किन्तु पद्य की भाषा ब्रज ही थी। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन से कुछ कवियों ने यह अनुभव किया कि गद्य और पद्य की भाषा का भिन्न होना अधिक युक्तिसंगत नहीं है। स्वयं भारतेन्दु का विचार खड़ी बोली को पद्य की भाषा बनाने का था अतः उन्होंने खड़ी बोली में भी कुछ कविताओं की रचना की। उनकी पहली खड़ी बोली की कविता 'प्रात समीरण' है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह कविता बँगला के पयार छन्द में लिखी गई थी और इसका प्रकाशन 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में अक्टूबर सन् १८७४ में हुआ था। १८८१ में उन्होंने इस दिशा में कुछ और भी प्रयोग किये तथा सितम्बर मास के 'भारत मित्र' में तीन दोहे प्रकाशन के लिए दिये। उन्होंने दोहों के साथ यह टिप्पणी भी दी : **"प्रचलित साधु-भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखियेगा कि इसमें क्या कमी है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इसमें काव्य सौंदर्य बन सकता है। लोग विशेष इच्छा करेंगे तो मैं और भी लिखने का प्रयत्न करूँगा।"**

'दशरथ विलाप' (१८७६) कविता में भारतेन्दु को यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई। इसी वर्ष लक्ष्मीप्रसाद पांडे का गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट' का अनुवाद 'योगी'

नाम से खड़ी बोली हिन्दी में प्रकाशित हुआ। किन्तु खड़ी बोली का आंदोलन भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् ही आगे बढ़ा। १८८६ में श्रीधर पाठक का 'एकांन्त वासी योगी' खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ। इस कविता में ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। उसमें ब्रज और खड़ी बोली दोनों का बहुधा मिश्रण मिलता है।

अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली हिन्दी के आंदोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने १८८८ में लन्दन से फ्रेडरिक पिन्काट (Frederic Pincott) के सम्पादन में खड़ी बोली हिन्दी में रचित अपनी कविताओं का संकलन प्रकाशित किया। इस संकलन का नाम था 'खड़ी बोली हिन्दी का पद्य' और इसकी प्रशंसा में पिन्काट ने लिखा कि कवितायें अपने ढंग की अनुपम कृतियाँ हैं तथा उनमें प्रकृति-प्रेम, पवित्र वस्तुओं के प्रति आदर-भाव, मानव-हित आदि भावनाओं का प्रकाशन है। (The pieces are all of them excellent in tone and they manifest a love for nature, a reverence for sacred things, and a desire for the best interests of humanity, the whole of which affords good evidence of progress India is now making)

पिन्काट महोदय ने अयोध्याप्रसाद खत्री को बधाई देते हुए कहा कि उनका अपने देशवासियों को ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में पद्य लिखने के लिए उत्साहित करने का प्रयत्न प्रशंसनीय है। केवल कृत्रिमता-प्रेमी पद्य-कार ही ऐसे भावों के विषय में पद्य रचना करते हैं जो उनके नहीं होते, अथवा ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो पुरातन, जीर्ण तथा विलक्षण हो चुकी है।[९८]

---

९८ दे० 'सरस्वती', मार्च १९०५, पुरुषोत्तमदास शर्मा का अयोध्याप्रसाद खत्री पर निबन्ध।

Your endeavour to induce your countrymen to employ *khari boli* in poetry in preference to Brij Bhasha is worthy of all praise and encouragement. It is only artificial versifiers who make up verses about feelings which are not their own, who waste their time in composing in old, archaic or peculiar forms of speech.

इस प्रकार भारतेन्दु युग में ही खड़ी बोली हिन्दी को पद्य के लिए माध्यम बनाने का आंदोलन प्रारम्भ हो जाता है। हम अगले अध्याय में देखेंगे कि इस आंदोलन को वर्ड्सवर्थ के इस विचार से कि गद्य और पद्य की भाषा में कोई भेद न होना चाहिए, किस प्रकार और बल मिला। किन्तु इस आंदोलन के प्रारम्भ का श्रेय भारतेन्दु-युग ही को है। 'हिन्दुस्तान' के तीसरी अप्रैल १८८८ के 'सम्पादकीय' स्तम्भ में खड़ी बोली के पक्ष में लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया था कि गद्य और पद्य की भिन्न भाषा होना हमारे लिये उतना गौरव का विषय नहीं है जितना लज्जा और उपहास का।

उपसंहार

हम देख चुके हैं कि आंग्ल प्रभाव ने हिन्दी काव्य को अपनी प्राचीन परम्पराओं को तोड़ने में बड़ी सहायता प्रदान की है। आंग्ल प्रभाव से पूर्व हिन्दी काव्य संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अन्धानुकरण, परिमित विषयों, प्रेम के कृत्रिम निरूपण तथा नायक-नायिका भेद आदि कारणों से बेड़ियों में जकड़ा पड़ा था। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति ने हिन्दी काव्य को मुक्ति प्रदान करने तथा उसे नयी गतिविधि देने में अत्यन्त महत्व का कार्य किया।

आंग्ल प्रभाव ने भारतेन्दु-युग के हिन्दी काव्य को दो प्रकार से नई दिशाओं में अग्रसर किया। (१) अंग्रेजी संस्कृति के सम्पर्क के फलस्वरूप हिन्दी कविता को नये विचार मिले। अंग्रेजी संस्कृति के समागम से राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता और जनवाद के पश्चिम से आये विचारों ने भारत में राजनीतिक चेतना को जन्म दिया। इस भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति १८८५ में कांग्रेस की स्थापना के रूप में हुई। अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म-प्रचारकों के माध्यम द्वारा आने वाले पाश्चात्य विचारों ने सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में अनेक सुधार किये। आर्य समाज (१८७५), ब्राह्म समाज (१८२८), थीयोसफी (१८७५), रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन आदि संस्थाएँ इसी सुधार की भावना के परिणाम हैं। इन संस्थाओं को प्रेरणा देने वाले विचारों ने हिन्दी कवियों के मस्तिष्क को भी आन्दोलित किया, और फलस्वरूप हिन्दी काव्य की वर्ण्य-वस्तु का विस्तार आरम्भ हो गया। अतः राजनीतिक चेतना, आर्थिक शोषण, धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आदि

विषयों पर काव्य रचना होने लगी। हिन्दी काव्य की इस नई गतिविधि का संचालन भारतेन्दु के द्वारा हुआ।

इन नये विषयों के परिणामस्वरूप हिन्दी कविता जन-जीवन के अधिक समीप आती गई और उसमें जनवादी तत्वों का अधिक समावेश होने लगा। वह काल्पनिक और पारलौकिक के जगत् में विचरण करने की अपेक्षा अब अपनी जीवन-सामग्री सत्य और वास्तविकता की कठोर भावभूमि से प्राप्त करने लगी।

(२) आंग्ल साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी कविता की शैली अधिक स्वाभाविक हो गई, और उसमें प्रकृति-प्रेम की भावना अधिक स्पष्ट होने लगी। श्रीधर पाठक ने जिन्होंने अनेक अंग्रेजी काव्य-पुस्तकों का अनुवाद किया अंग्रेजी साहित्य की विशेषताओं को सबसे पहले ग्रहण किया था। रूढ़िगत उपमाओं और अलंकारों के भार से दबी हिन्दी कविता को प्रथम बार स्वतन्त्र और स्वाभाविक रूप से अपनी गतिविधि निश्चित करने का अवसर मिला। नये आदर्शों द्वारा प्रकृति-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं को विशेष बल मिला और हिन्दी कविता चरित्रों तथा प्राकृतिक दृश्यों को चित्रण करने में सफल हुई।

अंग्रेजी काव्य का हिन्दी काव्य के रूपों पर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा। किन्तु यह प्रभाव विचार-वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव से कहीं न्यून था। पर अंग्रेजी कविता के कुछ रूप, उदाहरणार्थ 'ओड', 'सानेट', 'एलेजी' और वर्णनात्मक काव्य, हिन्दी कविता में व्यवहृत होने आने लगे। वर्ड्सवर्थ के 'लिरीकल बैलेड्न' (Lyrical Ballads) के दूसरे संस्करण की भूमिका के परिणामस्वरूप अनेक कवि खड़ी बोली हिन्दी में कविता लिखने का प्रयास करने लगे, और इस प्रकार गद्य और पद्य की एक भाषा होने का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग के काव्य की विषय सामग्री में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुये, किन्तु उसके रूपों और भाषा में विशेष अन्तर न पड़ सका।

५

द्विवेदी-युग

(अ) नवीन शक्तियाँ

आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास का दूसरा चरण १६०३ में महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' का सम्पादन-भार ग्रहण करनेके समय से आरंभ होता है। १६०३ के परवर्ती पन्द्रह वर्षों में हिन्दी काव्य-धारा पुनः एक नई दिशा में अग्रसर हुई। अधिकांश भारतेन्दु-युगीन कविता रूढ़िगत ही थी और वह रीतिकालीन काव्य की परिपाटियों को पूर्णतया छोड़ने में समर्थ न हो सकी थी। किन्तु इन पुरानी प्रवृत्तियों के साथ काव्य का नवीन जनवादी आन्दोलन भी भारतेन्दु युग में आगे बढ़ रहा था। द्विवेदी-युग में इस नई काव्य धारा का उद्रेक बड़े वेग से हुआ, जिसके फलस्वरूप पुरानी धारा लुप्तप्राय सी हो गई।

द्विवेदी-युग में हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि ब्रजभाषा को काव्य के माध्यम के रूप में सर्वथा त्याग दिया गया। काव्य की भाषा विषयक समस्या अब हल हो गई और खड़ी बोली काव्य-भाषा के रूप में सर्व सम्मति से स्वीकृत कर ली गई।

काव्य के रूप-रंग में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन किस प्रकार सम्भव हो सका इसका सम्यक् विवेचन आँग्ल प्रभाव द्वारा विजनित नवीन शक्तियों को ध्यान में रख कर ही किया जा सकता है। अतः हिन्दी काव्य में इन युगांतरकारिणी शक्तियों का उल्लेख यहाँ पर आवश्यक प्रतीत होता है।

हमारे साहित्यिक मापदण्डों में परिवर्तन लाने का बहुत कुछ श्रेय सर्व प्रथम प्रेस और उसके साथ आने वाली हिन्दी पत्रकारिता को है। १६वीं शती के प्रथम दो दशकों में ही उच्च कोटि की कही जाने वाली हिन्दी पत्रकारिता

का प्रादर्भाव हुआ । शीघ्र ही अनेक पत्र और पत्रिकाएं हिंदी संसार में दिखाई पड़ने लगीं । किन्तु इस युग की हिंदी पत्रकारिता के सब रूपों में सर्वाधिक जन-प्रियता मासिक पत्रिकाओं को प्राप्त हुई और 'सरस्वती,' 'इन्दु,' 'मर्यादा' इत्यादि अनेक मासिक पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य के विकास में अत्यन्त महत्व-पूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ ।

इस शताब्दी के प्रथम दो दशकों में हिन्दी पत्रकारिता का नेतृत्व अधिकांशतः महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने किया । १६०३ में द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन कार्य प्रारम्भ किया था । यह वर्ष आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगति में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है । द्विवेदी जी के सम्पादन काल (१६०३—१६२०) में 'सरस्वती' स्वयं एक संस्था बन गई थी। उसने खड़ी बोली को काव्य का माध्यम बनाने के लिए इस बीच बड़े महत्व का कार्य किया । वास्तव में २०वीं शती के प्रथम दो दशकों में हिन्दी साहित्य के विकास का इतिहास इस समय की 'सरस्वती' का ही इतिहास है । मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, कामताप्रसाद गुरु गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' इत्यादि कवियों को जनता के सामने लाने का श्रेय 'सरस्वती' को ही है ।

१६०३ से १६१६ तक के समय में हिन्दी काव्य के विकास में एकमात्र 'सरस्वती' का ही योग रहा । किन्तु हिंदी कविता में एक नवीन विचारधारा का उदय १६११ में 'इन्दु' के प्रकाशन से होने लगा था । इस पत्रिका ने जयशंकर 'प्रसाद' को सर्व प्रथम जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया और युद्धोत्तरकालीन हिंदी काव्य के छायावादी आन्दोलन की भूमिका प्रस्तुत की ।

प्रेस और पत्रकारिता के अतिरिक्त सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भी जो स्वयं आँग्ल प्रभाव के परिणाम थे, जनता के जीवन और विचारों में परिवर्तन लाने में अत्यन्त महत्व का कार्य किया । तार, रेल, समाचार-पत्र इत्यादि वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण भारत अब संसार की मुख्य विचार धाराओं के सम्पर्क में आ गया । इसके परिणामस्वरूप भारत में एक सांस्कृतिक जागृति हुई और ब्राह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थीयोसफी इत्यादि अनेक सांस्कृतिक आन्दोलनों का भारत में प्रादुर्भाव हुआ । इन सब आन्दोलनों का द्विवेदी-युग के साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । भारतीय नवोत्थान के अनेक सूत्रधारों के

विषय में 'सरस्वती' में समय-समय पर लेख प्रकाशित किये जाने लगे।[1] इस प्रकार हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश का युग की प्रमुख सांस्कृतिक धाराओं से संबंध स्थापित हो गया। द्विवेदी-युग के कवियों का नैतिकतावादी और सुधारवादी दृष्टिकोण इस सांस्कृतिक जागृति का ही स्पष्ट परिणाम है।

नवीन शताब्दी ने भारतीय राजनीति में भी एक नये युग को जन्म दिया। इण्डियन नेशनल कांग्रेस (स्थापना १८८५) प्रारम्भ में उच्चवर्ग के कतिपय व्यक्तियों की संस्था थी जो राजनीति को अपने अवकाश के समय का मनोरंजन मात्र समझते थे। २०वीं शती में कांग्रेस मध्यवर्गीय और जनवादी भावनाओं से ओत-प्रोत व्यक्तियों के हाथ में आकर एक सक्रिय संस्था बन गई। इसके अतिरिक्त बंग-भंग (१९०५) के असंतोष ने स्वदेशी आंदोलन को जन्म दिया जो शीघ्र ही भारत भर में फैल गया। इस स्थिति के फलस्वरूप हिन्दी काव्य और साहित्य में नवीन राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। रूस और जापान के बीच युद्ध (१९०४) और जापान की विजय ने भी भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक प्रगतिशील शक्ति के रूप में कार्य किया। एक पूर्वीय राष्ट्र की पश्चिमी राष्ट्र पर इस विजय ने भारतीयों में अपने स्वातंत्र्य युद्ध के प्रति एक मनोवैज्ञानिक विश्वास उत्पन्न कर दिया। उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में जापान की विजय के उपलक्ष में अनेक निबंध और कवितायें प्रकाशित हुईं। हिन्दी कवि तो इस विजय से इतने प्रसन्न हुए कि 'जापान टाइम्स' में प्रकाशित जापान के एक युद्ध गीत ('Hail the rising sun, the emblem of our world renowned Japan') का हिन्दी अनुवाद 'सरस्वती' (नवम्बर १९०४) में प्रकाशित हुआ।

राष्ट्रीयता के उदय के साथ ही मातृभाषा के प्रति प्रेम का भाव भी तीव्रतर होने लगा और हिन्दी प्रचार के हेतु अनेक साहित्यिक संस्थाओं और सभाओं की स्थापना आरंभ हो गई। १८९३ में श्यामसुन्दरदास के सत्प्रयत्नों से बनारस में 'नागरी प्रचारिणी सभा' स्थापित की गयी। तत्पश्चात् १९१० में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हुई।

---

[1]रामकृष्ण परमहंस के विषय में महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा एक निबंध 'सरस्वती' के फ़रवरी-मार्च १९०३ अंक में प्रकाशित हुआ, दूसरा निबंध राजा राममोहन राय पर ज्वालादत्त शर्मा द्वारा 'सरस्वती' के अगस्त १९१४ अंक में प्रकाशित हुआ।

किन्तु आँग्ल प्रभाव को प्रसारित करने में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। द्विवेदी-युग तक हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान अंग्रेजी साहित्य से पूर्णतया परिचित हो गए थे। हिन्दी प्रदेश में सर्वाधिक प्रिय अंग्रेजी लेखक वे थे जिनकी कृतियाँ विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में पढ़ाई जाती थीं। १९०९ में 'सरस्वती' के मई अंक में लक्ष्मीप्रसाद पांडे का 'कविता का दरबार' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस 'कविता के दरबार' में पाश्चात्य काव्य का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि थे—होमर (Homer), वर्जिल (Virgil), दाँते (Dante), चासर (Chaucer), स्पेंसर (Spenser), शेक्सपीयर (Shakespeare), मिल्टन (Milton), ड्राइडन (Dryden), पोप (Pope), ग्रे (Gray), गोल्डस्मिथ (Goldsmith), कूपर (Cowper), लौंगफेलो (Longfellow), बर्न्स (Burns), कोलरिज (Coleridge), मूर (Moore), सदे (Southey), वर्ड्सवर्थ (Wordsworth), स्काट (Scott), बायरन (Byron), शेली (Shelly) और टेनीसन (Tennyson)। इन कवियों की सूची के अतिरिक्त पाश्चात्य काव्य की विशेषताओं पर भी इस निबंध में प्रकाश डाला गया था। इस सूची से हमें द्विवेदी-युग में प्रिय लगने वाले कवियों के विषय में भी संकेत मिल जाता है। इनमें से अनेक कवियों की जीवनी और उनकी कृतियों पर 'सरस्वती' में समय-समय पर निबंध प्रकाशित हुये।[2] इन निबंधों में पाश्चात्य काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिये इन कवियों के काव्य से यथेष्ट मात्रा में उद्धरण दिये गये। अंग्रेजी कविता की वे प्रवृत्तियाँ जिन पर विशेष ज़ोर दिया गया है यह हैं—विद्रोह और विप्लव की प्रवृत्ति[3], मातृभाषा के प्रति

---

[2]ये निबंध शेक्सपियर (काशी प्रसाद जयसवाल द्वारा 'सरस्वती' फर्वरी १९०७), होमर (खुशीलाल वर्मा द्वारा, 'सरस्वती' मार्च १९०४,) मिल्टन (बद्री-नारायण भट्ट द्वारा, 'सरस्वती' नवम्बर १९११), शेक्सपियर पर फिर (गंगाप्रसाद द्वारा 'सरस्वती' मार्च १९१५), गेयटे (श्यामसुन्दर जोशी द्वारा, 'सरस्वती' जुलाई १९१७) तथा टेनीसन (ब्रजविहारी शुक्ल द्वारा, 'सरस्वती', अगस्त १९१९) पर थे।

[3]बद्रीनारायण भट्ट मिल्टन पर लिखित अपने निबंध में 'पैरा डाइज़ लोस्ट' (Paradise Lost) से उद्धृत करते हैं :

What though the field be lost
All is not lost.

प्रेम [३], मातृ भूमि के प्रति प्रेम, [५] और अन्त में स्वयं स्वतंत्रता के प्रति प्रेम।[६] इन प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से कवि की कृतियों से उदाहरण भी दिये गये हैं। स्वतंत्रता के प्रति प्रेम की भावना पर विशेष ज़ोर दिया गया है। इस प्रवृत्ति को द्विवेदीयुगीन लेखकों ने पूर्णतया अपनाया। अतः १९१५ में जून मास के 'सरस्वती' अंक में मधुसूदन शर्मा का 'स्वतंत्र विचार में रुकावटें' नामक निबंध प्रकाशित हुआ। यह निबंध मिल्टन की 'ऐरीओपेजीटिका' (Areopagitica) के इस प्रसिद्ध अंश से प्रारंभ किया गया था : 'Give me the liberty to know, to utter, and to argue freely according to conscience, above all other liberty.' महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिल की 'लिबर्टी' (Liberty) पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया। अतः यह स्पष्ट है कि हिन्दी लेखकों को अपने स्वातंत्र्य प्रेम में अंग्रेजी साहित्य से विशेष प्रेरणा मिली।

द्विवेदी-युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते हैं। १९०३ से १९०८ के मध्यवर्ती काल में महावीरप्रसाद

---

[३] काशीप्रसाद जयसवाल शेक्सपीयर के 'रिचर्ड द्वितीय' (Richard II) से उद्धृत करते हैं :

The language I have learn'd, for forty years
My native English............

[५] गंगा प्रसाद 'रिचर्ड द्वितीय' से उद्धृत करते हैं :

This royal throne of kings, this sceptr'd isle
......This precious stone set in the silver sea.

तथा 'जुलियस सीजर' से :

Cowards die many a time in their life
The valiant never tastes of death but once.

काशीप्रसाद जयसवाल उद्धृत करते हैं :

Then England farewell, sweet soil; adieu,
My mother and my nurse, that bears me yet!
Wherev'r I wander, boast of this I can
Though banished, yet a true born English man.

[६] बद्रीनारायण भट्ट मिल्टन से उद्धृत करते हैं :

Life in captivity
Among inhuman foes.

तथा

Myself my sepulchre, a moving grave
buried............

द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिये अथक परिश्रम किया था। ये अनुवाद अनवरत रूप से 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहे। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अनुवादों की सूची इस तथ्य को और भी पुष्ट करने में सहायक होगी।

मास और वर्ष	अंग्रेजी कविता	हिन्दी अनुवाद
जून १९०३	बायरन की 'Fare thee well.'	'आशीर्वाद' गौरी दत्त बाजपेयी द्वारा।
फर्वरी १९०४	जेम्स टेलर की 'My Mother.'	'मेरी मैया' जैनेन्द्रकिशोर द्वारा।
जून १९०४	बायरन की 'And art thou dead, so young and fair.'	'तरुणी तू चल बसी अभी' गौरीदत्त बाजपेई द्वारा
अगस्त १९०४	लांगफेलो की 'Psalm of life.'	'जीवन गीत' लक्ष्मीनारायण द्वारा।
फर्वरी १९०५	शेक्सपीयर की 'Friendship.'	'मित्रता' कालीशंकर व्यास द्वारा।
जुलाई १९०५	सदे की 'Sleep.'	'निद्रा' सनातन शर्मा द्वारा।
फर्वरी १९०६	'Peace at Home'	'घर में शांति' रामरणविजय सिंह द्वारा।
अप्रैल १९०६	'The Cuckoo.'	'कोयल' जीतनसिंह द्वारा।
जुलाई १९०६	अर्नेस्ट जोन्स की 'The Poet and Liberty.'	'कवि और स्वतन्त्रता' महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा।
मार्च १९०८	ग्रे की 'Elegy.'	कामताप्रसाद गुरु द्वारा 'ग्रामीण गीत'।

इनके अतिरिक्त वर्ड्सवर्थ की 'The Affection of Margaret,' पोप की 'Happiness of Retirement', बायरन की 'Woman', सदे की 'Scholar', कूपर की 'Solitude of Alexander Selkirk,' स्काट की 'Patriotism' आदि कविताओं के अनुवाद भी 'सरस्वती' में

प्रकाशित हुये। पोप, टेनीसन तथा लावेल (Lowell) की कविताओं के छाया-नुवाद भी प्रकाशित हुए।

कवियों का दृष्टिकोण अब इतना विस्तृत हो गया था कि वे कभी-कभी पश्चिम के विषयों से भी प्रेरणा प्राप्त करने लगे। अतः पाश्चात्य वीरों पर भी हिन्दी में वर्णनात्मक कविताओं की रचना हुई। उदाहरणार्थ कामताप्रसाद गुरु ने यूलिसस (Ulysses) और सत्यनारायण 'कविरत्न' ने होरेशस (Horatius) पर काव्य लिखे। मैथिलीशरण गुप्त ने अंग्रेजी जलयान 'टाइटेनिक' (Titanic) के अतलांतिक सागर में मग्न होने पर कविता लिखी।[७]

अंग्रेजी साहित्य के साथ पाश्चात्य दर्शनशास्त्र का भी द्विवेदी-युग के हिन्दी काव्य पर प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य दर्शन के अध्ययन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में नये वर्ग का उदय हुआ जो अपनी विचारधारा में मिल (Mill), बेन्थम (Bentham), रूसो (Rousseau), स्पेंसर (Spenser) आदि पाश्चात्य दार्शनिकों से प्रेरणा लेता था।

अंग्रेजी के अतिरिक्त कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य ने जिन पर स्वयं अंग्रेजी का यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में एक गतिवर्द्धक शक्ति का कार्य किया। इन भारतीय भाषाओं में बंगला और मराठी प्रमुख हैं। काव्य की विषय-सामग्री पर तो बंगला साहित्य का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। माइकेल मधुसूदन दत्त, नवीन चन्द्र सेन, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि बंगला लेखकों पर 'सरस्वती' में अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित हुये।[८] मैथिली शरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ वध' और 'वीरांगना' का तथा नवीन चन्द्र सेन के 'पलासीर युद्ध' का अनुवाद किया। रवीन्द्र नाथ टैगोर का प्रभाव द्विवेदी-युग के कवियों पर सर्वाधिक पड़ा। मैथिली शरण गुप्त, मुकुटधर पांडे, सियाराम शरण गुप्त, रामकृष्ण दास और गिरधर शर्मा की कृतियों पर टैगोर का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। किन्तु रवीन्द्र नाथ टैगोर का सबसे अधिक प्रभाव १९१९ के बाद की हिन्दी कविता पर पड़ सका।

---

[७] दे० 'सरस्वती' 'टायटेनिक की सिन्धु समाधि', जुलाई १९१२

[८] इन कवियों पर 'सरस्वती' में क्रमशः जुलाई-अगस्त १९०२ में, अप्रैल १९०६ में और मार्च १९१२ में लेख प्रकाशित हुये।

(ब) काव्य की गतिविधि पर अंग्रेजी का प्रभाव

रीतिकालीन काव्य परंपरा को तोड़ने के उद्देश्य से द्विवेदी-युग के हिन्दी कवियों ने काव्य का एक नया कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस नवीन कार्यक्रम पर अंग्रेजी का कितना प्रभाव पड़ा, इसके विवेचन का यहाँ हम प्रयास करेंगे।

किन्तु इस कार्यक्रम पर अँग्रेजी के प्रभाव का अध्ययन करते समय यह ध्यान रहे कि यह कार्य मुख्यतः द्विवेदीजी द्वारा किया गया था। 'रसज्ञ रंजन' जो उनके समीक्षात्मक निबन्धों का संग्रह है, एक प्रकार से खड़ी बोली हिन्दी काव्य का 'मेनीफेस्टो' कहा जा सकता है। ये सब निबन्ध 'सरस्वती' में पहले ही प्रकाशित किये जा चुके थे। हिन्दी कविता किस प्रकार की हो, इस विषय पर अन्य लेखकों के कुछ और लेख भी प्रकाशित हुए, पर वे द्विवेदीजी द्वारा निर्धारित काव्य के कार्यक्रम पर ही आधारित थे। अतः महावीरप्रसाद द्विवेदी ने एक नवीन काव्यादर्श प्रस्तुत किया था जिसके अनुसरण का प्रयत्न इस युग के कवियों ने किया।

(१) काव्य का रूप

(क) भाषा :—काव्य की भाषा के संबंध में महावीरप्रसाद ने निम्नलिखित सुझाव रखे :

१—"कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिये जिसे सब कोई सहज में समझ लें। कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिये।..."

२—"गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिये...... यह निश्चित है किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषाकी कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी।"[१]

काव्य की भाषा के संबंध में यह विचार वर्ड्सवर्थ की काव्यभाषा विषयक विचार धारा के सर्वथा अनुरूप हैं। वर्ड्सवर्थ के अनुसार गद्य और पद्य की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं होनाचाहिये। उसने अपने ये विचार अपनी काव्य पुस्तक 'Lyrical Ballads' के द्वितीय संस्करण के प्राक्कथन में प्रकट किये थे। वर्ड्सवर्थ ने उसमें लिखा कि उसका मुख्य उद्देश्य साधारण जीवन की

---

[१] महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'रसज्ञ रंजन' (द्वितीय संस्करण) पृ० ५, ६, ७,

घटनाओं और स्थितियों को लेकर उन पर काव्य रचना करना और उन्हें जहाँ तक सम्भव हो सके जनसमुदाय की भाषा में अभिव्यक्त करना था।[१०]

अतः महावीरप्रसाद द्विवेदी काव्य की भाषा को सरल, स्वाभाविक और सुबोध बनाने के पक्ष में थे। मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'सरस्वती' के दिसम्बर १९१४ अंक में प्रकाशित अपने निबन्ध 'हिन्दी कविता किस ढंग की हो?' में सरल और स्वाभाविक भाषा को काव्य का माध्यम बनाने का समर्थन किया। अतः ये विद्वान् काव्य की भाषा सुगम और व्याकरण के नियमों के अनुरूप बनाने के पक्ष में थे।

इस प्रकार यह काव्य भाषा विषयक विचारधारा (जिसका प्रथम उद्देश्य था ब्रज के स्थान पर गद्य की भाषा खड़ी बोली का काव्य में प्रयोग, और द्वितीय, एक सरल और स्वाभाविक काव्य शैली को अपनाना) वस्तुतः वर्ड्सवर्थ के काव्य भाषा विषय संबंधी विचारों से, जिन्हें उसने अपने काव्य संग्रह (Lyrical Ballads) के द्वितीय संस्करण की भूमिका में प्रस्तुत किया था, यथेष्ट रूप से प्रभावित है।

(ख) अनुप्रास और छन्द :—महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पद्य और कविता के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा :

> **"कविता और पद्य में वही भेद है जो अंग्रेजी की Poetry और Verse में है। किसी प्रभावोत्पादक और मनोरंजक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है और नियमानुसार तुली हुई सतरों का नाम पद्य है ···गद्य और पद्य दोनों में कविता हो सकती है। तुकबन्दी और अनुप्रास कविता के लिये अपरिहार्य नहीं। अंग्रेजी में अनुप्रासहीन बेतुकी कविता होती है।"[११]**

अतः महावीरप्रसाद द्विवेदी काव्य में तुकबन्दी अथवा अनुप्रास को अधिक महत्व नहीं देते थे। उन्होंने यहाँ तक कहा कि "पद्य के नियम कवि के लिये एक प्रकार की बेड़ियाँ हैं। उनमें जकड़ जाने से कवियों को अपनी स्वाभाविक उड़ान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।"[१२] अतएव वे

---

[१०] "The principal object then proposed in those poems was to choose incidents and situations from common life and to relate or describe them throughout, as for as possible, in a selection of language really used by men."

[११] रसज्ञ रंजन, पृ० ३६

[१२] वही, पृ० ३८

केवल ऐसे ही छन्दों का प्रयोग करना चाहते थे जो कवि-कल्पना में बाधा न डाल सकें। अतः उन्होंने विविध छन्दों के प्रयोग करने के पक्ष में कहा कि **"कवियों को चाहिये कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और-और छन्द भी लिखा करें।"[१३]**

काव्यात्मक अनुभूति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी काव्य में अतुकान्त छन्द (Blank Verse) के प्रयोग का विधान भी आवश्यक समझा। इस अतुकान्त छन्द का प्रयोग बहुत पहले अंग्रेजी से बँगला काव्य में माइकेल मधुसूदन द्वारा हो चुका था। बँगला काव्य में इस छन्द का नाम 'अमिताक्षर छन्द' रखा गया था। द्विवेदीजी को हिन्दी काव्य में अतुकान्त छन्द के प्रयोग की प्रेरणा बँगला काव्य ही से मिली। किन्तु यहाँ पर ध्यान रहे कि संस्कृत काव्य में भी कुछ ऐसे छन्द थे जिनमें अनुप्रास की आवश्यकता न होती थी। अतः महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा :

> **"इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला में विद्यमान हैं तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखे जावें। अनुप्रास युक्त पादान्त सुनते–सुनते हमारे कान इस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गये हैं। इसलिये अनुप्रासहीन रचना अच्छी नहीं लगती, बिना तुक वाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी होने लगेगी इसमें कोई सन्देह नहीं।··· अनुप्रासों के ढूँढ़ने का प्रयास उठाने में समर्थक शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुकरता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ को व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त में अनुप्रास हीन छन्द भाषा में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है।"[१४]**

अतएव शीघ्र ही हिन्दी कवियों और आलोचकों का ध्यान अतुकान्त छन्द के प्रयोग की ओर आकृष्ट हुआ। २०वीं शती के दूसरे दशक के मध्यकाल तक अतुकान्त छन्द में हिन्दी में अनेक कविताएँ प्रकाशित हुईं। १९१५ की 'इन्दु' पत्रिका के जुलाई–अगस्त अंक में लोचनप्रसाद पांडे की अतुकान्त छन्द सम्बन्धी एक प्रश्नावली प्रकाशित हुई। इसके उत्तर में मिश्रबन्धु, अयोध्या-

---

[१३] वही, पृ० ३

[१४] वही, पृ० ४

प्रसाद उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि ने अतुकान्त छन्द के पक्ष में लिखा। अतः द्विवेदी-युग के समाप्त होते अतुकान्त छन्द का हिन्दी काव्य में लगभग सर्वसम्मति से विधान हो गया।

(२) काव्य की वर्ण्य-वस्तु

(क) विषय—अंग्रेजों के आने से दो शताब्दियों पहले शृङ्गार रस का परम्परागत वर्णन ही हिन्दी काव्य का मुख्य विषय था। नायक-नायिका-भेद तथा षट्ऋतु-वर्णन ही उस युग के कवियों के प्रिय विषय थे। यह ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति मौलिक साहित्य रचना में बाधक थी। द्विवेदी जी ने नायक-नायिका भेद की प्रवृत्ति का घोर विरोध किया। उन्होंने नायक-नायिका-भेद विषयक ग्रन्थों का विरोध करते हुए कहा :

> **"इस प्रकार की पुस्तकों का होना हानिकारक है, समाज के सच्चरित की दुर्बलता का दिव्य चिह्न हैं। हमारी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द हो जाना चाहिये, और यही नहीं, किन्तु आज तक जितनी इस विषय की दूषित पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण होना भी बन्द हो जाना चाहिये। इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुँचेगी, उलटा लाभ होगा।"[१५]**

उन्होंने यह भी कहा कि **"जहाँ तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद-वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है, और बहुत भारी हानि है।"[१६]**

इस प्रकार द्विवेदी जी ने शृंगार की रीतिकालीन प्रवृत्ति का अन्त करा दिया और हिन्दी कवियों को अपनी संकीर्ण परिधि से निकाल कर अनेकानेक विषयों पर लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया।

"यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्य्यन्त तक, भिक्षुक से लेकर राजा पर्य्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्य्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है।"[१७]

---

[१५]वही, 'नायक-नायिका भेद', पृ० १२

[१६]वही, पृ० ६०

[१७]वही, पृष्ठ १२

अतः द्विवेदीजी ने हिन्दी काव्य की वर्ण्य वस्तु का अत्यधिक विस्तार कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि **"समस्या पूर्ति विषय को छोड़कर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुन कर, कवियों को यदि बड़ी न हो सके, तो छोटी-छोटी स्वतंत्र कविता करनी चाहिये।"**[१८] उनका विश्वास था कि संसार की तुच्छ से तुच्छ वस्तु भी काव्य का विषय हो सकती है '**यदि 'मेघनाथ बध' अथवा 'यशवन्तराव महाकाव्य' वे नहीं लिख सकते तो उनको ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में से छोटे से छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविता करनी चाहिए।"**[१९]

हिन्दी काव्य की वर्ण्य वस्तु के विस्तार का एक बड़ा कारण अंग्रेजी का प्रभाव है। द्विवेदीजी के काव्य के विषयों से सम्बन्ध रखने वाले विचारों पर वड्र्सवर्थ के विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। वड्र्सवर्थ ने अपने कविता संग्रह 'Lyrical Ballads' में साधारण जीवन की घटनाओं और स्थितियों को काव्य का विषय बनाया था। द्विवेदीजी ने भी तुच्छ से तुच्छ विषयों पर काव्य रचना करने के लिए कवियों को प्रोत्साहित किया। वड्र्सवर्थ की भाँति द्विवेदी जी भी मनुष्य और प्रकृति को काव्य का मुख्य विषय मानते थे। उनके अनुसार **"प्रकृति पर्यालोचन के सिवा कवि को मानव स्वभाव की आलोचना का भी अभ्यास करना चाहिए।"** तथा **"जिस कवि को मनोविकारों और प्राकृतिक बातों का यथेष्ट ज्ञान नहीं वह कदापि अच्छा कवि नहीं हो सकता।"**[२०] सम्भवतः काव्य में कल्पना के तत्व पर ज़ोर देते समय द्विवेदीजी को वड्र्सवर्थ का ही स्मरण रहा था। वड्र्सवर्थ ने 'Lyrical Ballads' की भूमिका में लिखा था कि उसका उद्देश्य काव्य के विषयों को कल्पना से रंजित करना था। द्विवेदीजी ने भी कहा कि **"कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है। उसके लिए कल्पना (Imagination) की बड़ी ज़रूरत है।"**[२१]

महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने विचारों में सुधारक थे। अतएव वे कविता के विषय को मनोरंजक और उपदेशप्रद बनाने के पक्ष में थे।[२२] उन्होंने कहा

---

[१८] वही, पृ० १३

[१९] वही, पृ० ११

[२०] वही, 'कवि और कविता', पृ० ४२

[२१] वही, पृ० ४१

[२२] वही, पृ० ११

कि कवि "समय समय पर कल्पित अथवा सत्य आख्यानों के द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयों की शिक्षा दे।"[२३] मैथिलीशरण गुप्त के भी अनुसार कवि का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, अपितु उपदेश भी होना चाहिये।[२४] कला का यह सुधारवादी दृष्टिकोण द्विवेदी-युग के सांस्कृतिक आन्दोलनों के अनुरूप ही था। इसका मुख्य कारण सम्भवतः पोप के 'मोरल ऐसेज़' (Moral Essays) का प्रभाव था जो हिन्दी जगत में सर्व प्रिय हो रहे थे। वड्सवर्थ की कविताओं का दृष्टिकोण भी नैतिकतावादी था अतः संभव है कि द्विवेदीजी इनसे भी प्रभावित हुए हों।

(ख) *अर्थ-सौरस्य*:—द्विवेदीजी ने काव्यात्मक अनुभूति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया था। वे उन कवियों की मानसिक प्रवृत्ति का घोर विरोध करते थे जो काव्यात्मा का गला घोंट कर तुकान्त, यमक, समस्या-पूर्ति आदि में काव्य-सौन्दर्य ढूँढ़ते हैं।[२५]

द्विवेदीजी के अनुसार काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए दो बातों का प्रतिपालन आवश्यक है। प्रथम, कवि अपने विषय से पूर्णतया तादात्म्य स्थापित करे और द्वितीय, वह अपनी अनुभूति को सहज भाव से अभिव्यक्त करे। पहली बात के लिए वे कहते हैं:

"कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिये. ऐसा न होने से अर्थ-सौरस्य नहीं आ सकता। विलाप-वर्णन करने में कवि के मन में यह भावना होनी चाहिये कि

---

[२३] वही, पृ० १८

[२४] दे० 'सरस्वती', दिसम्बर १९१४, 'हिन्दी कविता किस ढंग की हो?'

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।"

[२५] महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'हे कविते'

तुकान्त ही में कवितान्त है, यही
प्रमाण कोई मतिमान मानते।...
कवीश कोई यमकच्छटा मयी...
सदा समस्या सबको नयी नयी...
बताइये जीव विहीन देह से
सजीव की सुन्दरि क्या समानता?

वह स्वयं विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयं अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन करने के समय उसके अन्तःकरण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिये कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत तथा बन के सम्मुख वह स्वयं उपस्थित होकर उसकी शोभा देख रहा है। कवि की आत्मा का वर्ण्य विषयों से जब इस प्रकार का निकट संबंध हो जाता है तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता को पढ़ कर पढ़ने वालों के हृदय पर पद्धत् भावनायें उत्पन्न होती हैं।[२६]

आगे चलकर वे काव्यात्मक अनुभूति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के विषय में कहते हैं:—

"कविता करने में हमारी समझ में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिये।······बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृत भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पद्य-बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है।"[२७]

स्पष्ट है कि इस अनुभूति-प्रधान काव्य की प्रेरणा अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों से मिली थी। वर्ड्सवर्थ भावोद्रेक की अनायास अभिव्यक्ति (Spontaneous overflow of powerful emotions) को काव्य मानते थे।

इसके अतिरिक्त द्विवेदीजी ने हिन्दी काव्य के अर्थ-सौरस्य को समृद्ध करने के लिए हिन्दी कवियों को संस्कृत और अंग्रेजी के ग्रन्थों से भाव लेने के लिए प्रोत्साहन दिया।[२८]

अतः हम देखते हैं कि द्विवेदीजी द्वारा प्रोत्साहित हिन्दी काव्य के रूप पर अंग्रेजी का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा। उन्होंने पोप, वर्ड्सवर्थ आदि

---

[२६] 'रसज्ञ रंजन', पृ० ८

[२७] वही, पृ० ६

[२८] दे० 'सरस्वती', फरवरी १९०५

इंगलिश का ग्रन्थ समूह अति भारी है···
संस्कृत भी सबके लिये सौख्यकारी है···
इन दोनों में से अर्थ रत्न लीजै
हिन्दी के अर्पण इन्हें प्रेम युत कीजै

कवियों से प्रेरणा प्राप्त की।[२९] वे मिल्टन के काव्य की व्याख्या से भी सहमत थे जिसके अनुसार काव्य सरल, रागात्मक और वासनामूलक (Simple, sensuous and impassioned) होना चाहिये। इस प्रकार द्विवेदी जी ने काव्य के रूप और रंग दोनों में क्रांति उपस्थित करने का उपक्रम किया। खड़ी बोली शीघ्र ही काव्य माध्यम के रूप में स्वीकृत की जाने लगी। अतुकान्त छन्द का भी हिन्दी में स्वतन्त्र रूप से प्रयोग होने लगा। हिन्दी कविता अनेक नवीन विषयों पर लिखी जाने लगी। अब हम देखेंगे कि काव्य की इस नवीन विचार वस्तु पर अंग्रेजी का प्रभाव किस सीमा तक पड़ा है।

(स) काव्य के विषयों तथा उपादानों पर प्रभाव

अब हमारे लिए द्विवेदी-युगीन हिन्दी कविता की विचार-वस्तु पर अंग्रेजी के प्रभाव के अध्ययन का कार्य अधिक सुगम होगा। हम देख चुके हैं कि अंग्रेज़ी के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी कविता की वर्ण्य-वस्तु का अत्यधिक विस्तार हो गया और लगभग प्रत्येक विषय पर काव्य रचना होने लगी। अब हम यहाँ पर उन प्रवृत्तियों का विवेचन करेंगे जो जनता के बौद्धिक जीवन को उद्वेलित कर रही थीं और जिन्होंने काव्य की विषय-सामग्री पर भी स्वभावतः अपना प्रभाव डाला। यहाँ पर यह ध्यान रहे कि ये प्रवृत्तियाँ उन शक्तियों का ही परिणाम हैं जिनका विवेचन हम इस अध्याय के प्रथम भाग में कर चुके हैं।

(१) बुद्धिवाद

भारतीय संस्कृति का योरपीय संस्कृति के सम्पर्क का एक बहुत बड़ा परिणाम यह हुआ कि हमने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक अथवा तार्किक दृष्टि से विचार करना आरम्भ कर दिया। विचार-स्वातंत्र्य की इस बढ़ती हुई महत्ता के साथ हमारे धर्म, दर्शन, समाज एवं कला की मान्यतायें ढहनी शुरू हो गयीं। इस प्रकार बुद्धिवाद के निरंतर विकास से प्राचीन मूल्यों और मर्यादाओं में क्रांति उपस्थित हो गई और आस्था के अभाव में सांस्कृतिक परम्पराओं के सन्तुलन में अस्थिरता उत्पन्न होने लगी। युग की संदेहात्मक प्रवृत्ति ने हमारी अब तक की समस्त मान्यताओं के सामने एक प्रश्न-चिह्न लगा दिया।

---

[२९] दे० 'रसज्ञ रंजन', पृ० ४७

योरप से आई हुई इस बुद्धिवादी लहर का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ा। इसने सर्वप्रथम रूढ़िवादी धार्मिक प्रतिष्ठाओं और मान्यताओं पर प्रहार किया और एक बार उन्हें जड़ से हिला दिया। शीघ्र ही इसका प्रभाव द्विवेदी-युगीन धार्मिक काव्य पर पड़ा और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुये। हिन्दी में राम और कृष्ण का जीवन-चरित्र सदा से कवियों का प्रिय विषय रहा है। द्विवेदी-युग में भी राम और कृष्ण पर काव्य रचना की गयी किन्तु उसका निरूपण सर्वथा नवीन और अरूढ़िगत था। कवि की पुरानी आस्थायें मिट रही थीं और वह नये मूल्यों और विश्वासों की खोज में लगा था। कभी वह घूम फिर कर अपनी पुरानी आस्था ही में विश्राम खोजने का प्रयत्न करता था, तो कभी प्राचीन मर्यादाओं, परम्पराओं और आदर्शों से विद्रोह कर अपनी नवीन संदेहात्मक प्रवृत्ति की पुष्टि करता था।

इन बुद्धिवाद का पहला प्रभाव हिन्दी के धार्मिक काव्य पर अवतार-वाद की भावना के विरुद्ध पड़ा। इस दिशा में हिन्दी कवियों को प्रेरणा बंगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त से प्राप्त हुई। द्विवेदी युग में राम और कृष्ण के जीवन चरित्र पर काव्य रचना करने वाले प्रमुख कवि थे— मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय इन दोनों कवियों को माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाद बध' से पर्याप्त प्रेरणा मिली। गुप्तजी तो इस बंगला महाकाव्य का हिन्दी अनुवाद करने के लोभ का संवरण ही न कर सके। उधर उपाध्यायजी ने भी अपने 'प्रिय प्रिवास' में 'मेघनाद बध' का ऋण स्वीकार किया।[३०] अतः यहाँ पर 'मेघनाद बध' पर पड़ने वाले विविध योरपीय प्रभावों का संक्षिप्त विवेचन असंगत न होगा।

मधुसूदन दत्त अपने 'मेघनाद बध' महाकाव्य की रचना में होमर (Homer), तासो (Tasso), वर्जिल (Virgil) आदि अनेक योरपीय महाकवियों से प्रभावित हुये थे। किन्तु उन पर सर्वाधिक प्रभाव अंग्रेजी कवि मिल्टन का था। मिल्टन की भांति वे अपने महाकाव्य का विषय राष्ट्रीय जीवन की अभिरुचि के अनुरूप ही बनाना चाहते थे। अतः उनके पास राम और कृष्ण के जीवन चरित्र के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय न था। मधुसूदन ने राम के जीवन में मेघनाद बध की विशिष्ट घटना को अपने काव्य का विषय

---

[३०] दे० अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'प्रिय प्रवास' (संशोधित संस्करण, संवत् २००८), भूमिका पृ० ८

बनाया। मिल्टन ही से प्रभावित होकर उन्होंने चरित्र वर्णन की परम्परागत शैली में परिवर्तन उपस्थित किया। द्विवेदी-युगीन बुद्धिवाद की प्रवृत्ति के अनुरूप उन्होंने इन चरित्रों के मानवीय पक्ष पर अधिक जोर दिया। राम 'मेघनाद बध' में ईश्वर स्वरूप न होकर एक मनुष्य की भांति कार्य करते हुये दिखाये गये हैं। एक ओर उनमें मानवीय दुर्बलतायें हैं तो दूसरी ओर रावण में मनुष्यता के उदार गुण भी हैं। 'मेघनाद बध' पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन करते हुए एच० एम० दास गुप्ता कहते हैं कि रामचन्द्र के ऊपर से देवत्व का परम्परागत भाव पूर्णतया हटा दिया गया है, और दूसरी ओर रावण पर बाल्मीकि द्वारा आरोपित दुष्टता भी वहाँ नहीं है। रावण एक सहृदय पिता, सच्चा राजा, वीर योद्धा और इस सबसे अधिक मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत व्यक्ति है। मेघनाद भी एक आज्ञाकारी पुत्र, एक प्रिय पति और एक आदर्श देशभक्त है।[३१] वे यह भी कहते हैं कि राम और उनके साथियों को मधुसूदन ने उनके उच्च आसन से उतार दिया है, और रावण तथा उसके परिवार को ऊँचा उठाया गया है। राम वहाँ देवों की भांति नहीं अपितु मनुष्यों की भांति आंसू बहाते दिखाये गये हैं।[३२]

अवतारवाद का यह विरोध हमें द्विवेदीयुग के 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' दोनों महाकाव्यों में मिलता है। यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त अपनी

---

[३१]एच० एम० दास गुप्ता, 'स्टडीज इन वेस्टर्न इन्फ्लूयंस आन नाइन्टीन्थ सेन्चुरी बंगाली पोइट्री' (कलकत्ता, १६३५) पृ० २६

The halo of divinity traditionally hanging about Ramchandra has been rudely dispelled,...Ravan has none of the viciousness purposely ascribed to him by Valmiki; an affectionate father, a true king, a great warrior swayed by passion he was, above all, a man rather than a hero of the epic age; Meghnad is a dutiful son, a loving husband and a noble patriot.

[३२]वही, पृ० १८

Rama and his rabble were brought down from their Olympian heights, while the demonaic Ravana and his family were raised to the skies...Ram was made to shed tears not such as angels weep, but as one of the mortal kind.

आस्था में पुरातनवादी हैं किन्तु वे भी युग की संदेहात्मक एवं बौद्धिक प्रवृत्ति से अछूते न बच सके। राम में उनका विश्वास ईश्वर के अवतार के रूप ही में है, किन्तु काव्य में वे राम का वर्णन ईश्वरावतार रूप में न कर मानव के रूप ही में करते हैं। यद्यपि उनका हृदय राम को केवल मानव मानने के लिए तत्पर नहीं है, परन्तु उन्हें बौद्धिक रूप से राम को मानव ही मानना पड़ता है। 'साकेत' में उनका प्रश्न **"राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो, क्या?"** उतना प्रश्न नहीं है जितनी कि तथ्य की आत्म स्वीकृति। यह प्रश्न वास्तव में उस युग में विश्वास और तर्क के द्वन्द्व का सुन्दर उदाहरण है। गुप्तजी द्वारा इस समस्या का हल विश्वास और तर्क का अच्छा समन्वय उपस्थित करता है। विश्वास में तो राम ईश्वर बने रहते हैं, किन्तु चरित्र-चित्रण के समय वे केवल मानव के रूप ही में सामने लाये जाते हैं। वे ईश्वरावतार तो हैं पर हमसे भिन्न भी नहीं है।[३३] गुप्तजी पाठकों पर राम के देवत्व को आरोपित करने की कभी चेष्टा नहीं करते। अतः गुप्तजी के काव्य में युग की आलोचनात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति भी मिलती है। उनके राम स्वर्ग अथवा वैराग्य का संदेश लेकर नहीं आते, वरन् वे भूतल ही को स्वर्ग बनाने आते हैं। राम कहते हैं कि स्वर्ग का निर्माण व्यक्ति अपनी देव-प्रवृत्तियों का विकास कर इस मृत्युलोक ही में कर सकता है।[३४] यही विचार गुप्त जी की 'पंचवटी' में मिलता है जहाँ लक्ष्मण मनुष्यता को सुरत्व की जननी के नाम से संबोधित करते हैं।[३५] अतः गुप्तजी के काव्य में राम वस्तुतः मानव ही हैं, ईश्वरावतार नहीं। राम के सम्बन्ध में कोई अलौकिक घटना अथवा कार्य का गुप्तजी ने वर्णन नहीं किया। कहीं-कहीं तो राम के मानवीय स्वभाव की दुर्बलतायें भी वर्णन की गयी हैं। उदाहरणार्थ लक्ष्मण के शक्तिवाण से आहत होने पर

---

[३३] राम राजा ही नहीं पूर्णावतार पवित्र
पर न हमसे भिन्न है, साकेत का गृह चित्र

[३४] भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

[३५] मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ।

राम को अति क्रोधित अवस्था में वर्णित किया गया है। वे युद्ध करते-करते मार्ग में कुम्भकरण को पाकर उसका वध **"भाइ का बदला भाई ही"** कह कर करते हैं। किन्तु वे शीघ्र ही रावण को अपने भाई कुम्भकरण की मृत्यु के शोक के कारण लगभग मूर्च्छित अवस्था में देख कर कह उठते हैं—**"राम से रावण सहृदय है आज।"** इस प्रकार गुप्तजी रावण के चरित्र को बहुत कुछ ऊँचा उठाते हैं और दूसरी ओर वे राम में प्रतिकार की स्वाभाविक मानवीय भावना दिखाकर उनके चरित्र को सामान्य धरातल पर ले आते हैं।

अतः द्विवेदी-युग में हम मानवीय मूल्यों की स्थापना होते देखते हैं और दुष्चरित्रों में भी मानव स्वभाव के मूल गुणों के दर्शन करते हैं। यह नवीन प्रवृत्ति पश्चिम के वैज्ञानिक अथवा तार्किक दृष्टिकोण का परिणाम थी जिसकी उपलब्धि हमको भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से हुई। गुप्तजी कैकेई, मेघनाद और रावण आदि दुष्चरित्रों के वर्णन में सहनशीलता और बौद्धिक सन्तुलन दिखाते हैं। इसके साथ-साथ वे इन चरित्रों के मानवीय पक्ष पर ज़ोर देने के कारण कहीं भी किसी अलौकिक शक्ति द्वारा इन चरित्रों के कार्य-व्यापार को प्रभावित करते नहीं दिखाई पड़ते। उदाहरणार्थ वे कैकेयी की 'मति' फिरने का कारण सरस्वती नहीं बताते, अपितु उसका एक मनोवैज्ञानिक कारण देते हैं। मंथरा द्वारा कैकेयी पहले ही भर दी गयी थी, और ऐसी स्थिति में राम के राज्याभिषेक ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर कैकेयी को भरत की अनुपस्थिति का खलना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार कैकेयी के मन में संदेह का बीज अंकुरित होने लगा। ठीक ऐसी ही स्थिति में दशरथ कैकेयी को उसके दो वरदानों की बात स्मरण करा देते हैं। इस नये आलोक में यदि हम कैकेयी के चरित्र का अवलोकन करें तो हमें उसका चरित्र बहुत कुछ स्वाभाविक ही लगेगा। तत्पश्चात् जब कैकेयी अपने कार्य पर दुखित होती है[३६] तो हम भी चित्रकूट की सभा के साथ कैकेयी की प्रशंसा **"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई"** के वाक्य के साथ करने के लिये बाध्य होते हैं। लक्ष्मण के शक्तिवाण लगने का समाचार पाकर जब कैकेयी लंका जाने के लिये आतुर दिखाई पड़ती है तब उसका चरित्र

---

[३६] **युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी**
'रघुकुल में थी एक अभागिन रानी'

और भी उज्वल लगने लगता है।[३७] गुप्तजी ने कैकेयी की भाँति मेघनाद और रावण के चरित्र-चित्रण में भी उदारता प्रदर्शित की है।

अतः द्विवेदी-युगीन कवि अलौकिक कृत्यों का वर्णन नहीं करता; वह युग के वैज्ञानिक अथवा तार्किक दृष्टिकोण के अनुरूप ही चरित्र-चित्रण करता है। 'अवतारों' के विषय में कहे गये अलौकिक कृत्यों का वह बहिष्कार अथवा बौद्धीकरण (rationalisation) करता है। उदाहरणार्थ 'जयद्रथ बध' में गुप्तजी परम्परा के अनुसार आकाश के अंधकारमय होने का कारण कृष्ण की माया का कृत्य न बताकर, पश्चिमी क्षितिज पर काले बादल के घिर आने को बताते हैं।

गुप्तजी ने विश्वास और तर्क के समन्वय का मार्ग खोजा था। किन्तु अयोध्यासिंह उपाध्याय का दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक है। वे अवतारवाद के सिद्धांत की बौद्धिक व्याख्या देने का प्रयत्न करते हैं। उनके अनुसार राम और कृष्ण ऐतिहासिक महापुरुष हैं जिनका प्रादुर्भाव संसार में संकट काल उपस्थित होने पर हुआ था। धर्म के प्रति यह मूलतः पाश्चात्य दृष्टिकोण है। केवल इसी प्रकार हम 'अवतारों' का ईश्वरेच्छा पूर्ण करने के लिये संसार में अवतरित होना युक्ति-संगत कह सकते हैं। उपाध्यायजी के लिये अवतारवाद का तात्पर्य ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरित होना उतना नहीं है जितना मनुष्य का देवत्व प्राप्त करना। दूसरे शब्दों में वह व्यक्ति जो अपने में आदर्श चरित्र का पूर्ण विकास प्राप्त करता है वास्तव में अवतार है। 'भगवद्गीता' का वह सिद्धांत, जिसके अनुसार प्रत्येक महान् और वैभवशाली वस्तु ईश्वर अंश से संभूत मानी गई है[३८] इसी नवीन विचार के अनुरूप है। उपाध्यायजी 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में 'गीता' का उद्धहरण देते हुये कहते हैं कि प्रत्येक महान पुरुष निश्चय ही ईश्वरावतार है।[३९] वे 'अवतारों को इसी आधार पर देवपुरुष मानने को तत्पर थे अन्यथा वे भी मनुष्यों की ही भाँति थे। अतः उन्होंने 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं वरन् एक महान व्यक्ति के

---

[३७] **भरत जायगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी।**
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी।

[३८] **यद्यद्विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।**
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम्।—गीता १०-४१

[३९] अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'प्रियप्रवास', भूमिका पृ० २६-२७

रूप में चित्रित किया और उनके चरित्र को आधुनिक मनोवृत्ति के अनुरूप ही दिखाया।[४०]

कृष्ण को उनके ऊँचे आसन से सामान्य धरातल पर लाने के लिये उपाध्यायजी ने दो उपायों का आश्रय लिया—प्रथम, कृष्ण को एक ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में चित्रित किया और द्वितीय, उनके संबंध में कहे जाने वाले अलौकिक कृत्यों का मानवीकरण (humanisation) किया। अतः कृष्ण को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हुए विश्व की एक विषम संकट काल की स्थिति में एक आदर्श नेता और पूर्ण व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। कृष्ण आदर्श मानव की भाँति समग्र गोपसमाज को सुसंस्कृत बनाते हैं।[४१] यद्यपि उनकी अवस्था अभी थोड़ी ही थी तथापि उनके कार्य महात्माओं के कार्यों के सदृश थे।[४२]

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने कृष्ण के संबंध में कहे जाने वाले अलौकिक कृत्यों का मानवीकरण भी किया है। कहीं-कहीं वे अलौकिक कृत्यों के बौद्धीकरण में अति सफल हुये हैं। उदाहरणार्थ तृणावर्त तथा बकासुर दैत्यों को उन्होंने झञ्झावात अथवा भयानक पशु के रूप में दिखाया है।[४३] गोवर्धन-धारण की कथा को भी परिवर्तित कर दिया है। कृष्ण स्वयं गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण नहीं करते अपितु वे आदर्श नेता के रूप में घोर वर्षा के समय जनसमुदाय को पर्वत की कन्दराओं में ले जाकर उनकी रक्षा करते हैं। गोवर्धन के नीचे रक्षा के हेतु इतना रिक्त स्थान पाकर जन-समुदाय यह कहने लगा कि कृष्ण ने अंगुली पर गोवर्धन पर्वत को धारण कर गोप समाज की रक्षा की।[४४] कवि ने गोवर्धन-धारण की कथा का और भी बौद्धीकरण किया है। उसने वर्षा को एक स्वाभाविक प्राकृतिक घटना के रूप में दिखाया है और इस प्रकार इन्द्र-क्रोध के प्रसंग का उल्लेख भी नहीं किया।

---

[४०] वही, पृ० ३०
[४१] वही, सर्ग १३, पद्य २४
[४२] वही, सर्ग १२, पद्य ६१
[४३] वही, सर्ग २
[४४] वही, सर्ग १२

किन्तु, उपाध्याय जी प्रत्येक स्थल पर अलौकिक कृत्यों अथवा दैवी घटनाओं का बौद्धीकरण नहीं कर सके हैं। उदाहरणार्थ गज और बालक कृष्ण का युद्ध और अन्त में बालक कृष्ण की विजय किसी भी भाँति युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होती।[४५] उन्होंने कालीदमन की कथा का वर्णन भी परंपरा के अनुसार ही किया है।[४६] यद्यपि उपाध्याय जी युग की बौद्धिक तथा तार्किक प्रवृत्ति के अनुरूप कृष्ण को एक ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में चित्रित करना चाहते थे, किन्तु इस प्रकार के निरूपण के लिये उनका विषय उपयुक्त न था। बालक कृष्ण की लीलाओं की भूमिका में वे 'गीता' के योगिराज कृष्ण का चरित्र सम्मुख रखने का प्रयत्न करना चाहते थे। इस प्रकार के निरूपण के लिये 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी' और 'साकेत' में गुप्तजी द्वारा वर्णित विषय अधिक उपयुक्त थे।

बुद्धिवाद की इस प्रवृत्ति का दर्शन हमको द्विवेदी-युगीन काव्य की पौराणिक कथाओं के वर्णन में भी प्राप्त होता है। उन्हें आधुनिक रुचि के अनुरूप प्रस्तुत करने के लिये उनका बौद्धीकरण किया गया है। इन पौराणिक कथाओं में देवताओं को दिव्य गुणों के और दैत्यों को अवगुणों के प्रतीकरूप में प्रस्तुत किया गया है। पाप और पुण्य का द्वंद्व और अन्त में पुण्य की पाप पर विजय ही अधिकतर इन पौराणिक कथाओं की कविताओं का विषय है। उदाहरणार्थ गुप्तजी का 'शक्ति' काव्य एक प्रतीकात्मक काव्य है। वहाँ शक्ति (पुण्य का प्रतीक) जो विविध देवताओं द्वारा विकीर्ण की गई ज्योति-किरणों का पुञ्जीकरण है अन्त में महिषासुर (पाप का प्रतीक) पर विजयी दिखायी गयी है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग संक्रांति का युग था। सन् १९०० के लगभग हमें एक विचित्र स्थिति के दर्शन होते हैं। प्राचीन विश्वासों, परम्पराओं और मान्यताओं का बहिष्कार हो चुका है किन्तु जीवन के नये मूल्य अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं। धर्म की प्राचीन मान्यताओं पर से विश्वास सर्वथा उठ गया है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुरुडम के विरोध में आन्दोलन दिखाई पड़ता है। प्रचलित मान्यताओं के खण्डन (iconoclasm) की इस प्रवृत्ति का मूल कारण युग का बुद्धिवाद है जिसका प्रादुर्भाव ईसाई

---

[४५]वही सर्ग ३, पद्य ६०, ६१

[४६]वही, सर्ग ६, पद्य ३१-५१

मिशनों और शिक्षा की नई प्रणाली के कारण भारत में हुआ। युग के साहित्य पर इन नवीन विचारों का प्रभाव स्वाभाविक ही था। अनिश्चितता और संकोच की इस स्थिति में भी प्रत्येक दिशा में नवीन प्रयोग हो रहे थे। द्विवेदी-युगीन काव्य में अवतारवाद की ऐतिहासिक व्याख्या, काल्पनिक और दैवी कृत्यों एवं घटनाओं का बहिष्कार, दुश्चरित्रों में भी सद्गुणों की खोज निकालने का प्रयत्न, पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण और मनुजता की अलौकिकता के ऊपर स्थापना आदि अनेक तत्व हिन्दी कवियों के नवीन प्रयोगों के परिचायक हैं।

(२) मानवतावाद

मानवता के प्रति रीतिकालीन हिन्दी कवियों का दृष्टिकोण बहुत ही संकीर्ण था। उनके लिए समस्त पुरुष नायक थे और स्त्रियाँ नायिकाएँ। उस ह्रासोन्मुखी युग में मानव व्यक्तित्व के केवल इसी एक रूप की अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी। रीतिकाल से पहले भक्तिकाल में भी मानव व्यक्तित्व की साहित्य क्षेत्र में पूर्णाभिव्यक्ति धार्मिक वातावरण के कारण न हो सकी थी। किन्तु द्विवेदीयुग में प्रथम बार मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया और शृंगारिकता एवं धार्मिकता की संकीर्ण कारा में दीर्घकाल से बंदिनी मानवता को मुक्त करने का प्रयास किया गया। काव्य अब उच्चवर्गीय जीवन मात्र का प्रतिबिम्ब न होकर, निम्नवर्ग के जीवन का भी चित्रण करने लगा। निरंतर शोषण के बीच जीवन-यापन करने वाले अशिक्षित कृषकों और श्रमिकों का जीवन अब हिन्दी कवियों का प्रिय विषय बन गया। इस प्रकार काव्य दुःख और दैन्य से त्रस्त मानवता के जीवन को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हो गया।

मानवता के प्रति यह विस्तृत दृष्टिकोण हमें द्विवेदी-युगीन काव्य में तीन प्रकार से प्राप्त होता है। (क) निर्धन और शोषित समाज के प्रति समवेदना; (ख) नारी के प्रति उच्च भावना; और (ग) मानवता की सेवा और उसके द्वारा ईश्वर-प्राप्ति की भावना।

(क) *निर्धन और शोषित समाज के प्रति समवेदना*—द्विवेदी-युग में हमें दुःखित और पीड़ित मानवता के प्रति समवेदना का भाव बहुधा मिलता है। इस युग के कवि आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित वर्ग के जीवन को अपनी कृतियों में व्यक्त करते हैं। वे करोड़ों किसानों और

श्रमिकों की भावनाओं और विचारों को ध्वनित करते हैं और इस प्रकार उनका काव्य धनी वर्ग के अत्याचारों को समाप्त करने का अस्त्र बन जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने कृषक वर्ग के जीवन के अनेक चित्र अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं। वे पूँजीवाद के विरोध में उठने वाली जनवाणी को अपनी कविताओं में मुखरित करते हैं। 'भारत भारती' में हमें निर्धन कृषकों के जीवन की झाँकी अनेक स्थलों पर मिलती है। 'कृषक कथा' और 'भारतीय कृषक' कविताओं में तो वे पीड़ित किसानों की शोचनीय स्थिति का हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत करते हैं तथा अपने वर्णनात्मक काव्य 'किसान' में वे सामाजिक और राजनीतिक अत्याचारों का नग्न चित्रण करते हैं। काव्य का नायक 'कलुआ' शोषक वर्ग के प्रतिनिधि,—पुलिस, जमींदार और महाजन—की निर्दयता और अत्याचार का लक्ष्य निरंतर बना रहता है।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की कविताओं में भी हम पीड़ितों और शोषितों के प्रति समवेदना पाते हैं। उनके काव्य-संग्रह 'कृषक क्रन्दन' की तीनों कवितायें 'आर्त कृषक' 'दुखिया किसान' एवं 'कृषक क्रन्दन' किसानों के दुःखी जीवन को व्यक्त करती हैं।

सियारामशरण गुप्त का काव्य भी मानवतावादी आदर्शों से प्रभावित है। वे समाज द्वारा बहिष्कृत निम्नवर्ग के प्रति अपार समवेदना प्रकट करते हैं। कृषक, श्रमिक, अछूत इत्यादि ने उनके ध्यान को विशेष आकृष्ट किया है। वे इस पीड़ित वर्ग की पीड़ा और दुःख का अनुभव करते हुए अपनी कविताओं में इस शोषित वर्ग के प्रति गहरी समवेदना प्रकट करते हैं जो पाठकों के हृदय को द्रवित किये बिना नहीं रहती। पीड़ित वर्ग की यह करुण कहानी हमें विशेषकर उनकी 'अनाथ' और 'एक फूल की चाह' नामक कविताओं में मिलती है। अनाथ में वे एक किसान के जीवन का यथार्थ चित्रण करते हैं जो भूख, बीमारी, असीम वेदना और अन्त में मृत्यु का सामना करता है। 'एक फूल की चाह' में वे अछूतोद्धार की समस्या प्रस्तुत करते हैं। यह कविता एक अछूत की आत्मकहानी के रूप में है जो अपनी मृतप्राय पुत्री की अन्तिम आकांक्षा पूर्ण करने के लिये मन्दिर से पूजा का एक फूल लाने के लिये जाता है। वहाँ वह अछूत अपने अपराध के कारण पकड़ लिया जाता है और उसे सात दिन का कारावास होता है। उसके मुक्त होने से कुछ पहले ही उसकी पुत्री की मृत्यु हो जाती है और उसका मृतक शरीर श्मशान ले जाया जाता है। बेचारा अछूत अन्त में अपनी पुत्री के स्थान पर बुझी हुई चिता के रूप

में केवल राख की एक ढेरी ही पाता है। इस प्रकार कविता का अन्त अत्यन्त करुण और हृदय-विदारक भावभूमि पर होता है।

किसानों के अतिरिक्त नारी वर्ग भी शोषित समाज के अन्तर्गत आ जाता है। द्विवेदी-युग मे पूर्व नारी-सम्बन्धिनी भावना का दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित था। नारी पुरुष के विलास का साधन एवं उसकी सम्पत्ति समझी जाती थी। किन्तु द्विवेदी-युग में मानव-व्यक्तित्व साधन न रहकर स्वयं अपने में ध्येय समझा जाने लगा जिसके परिणामस्वरूप स्त्री-स्वातन्त्र्य-सम्बन्धिनी भावना का क्रमशः विकास हुआ। समाज के इस पीड़ित और तिरस्कृत वर्ग के प्रति समवेदना का भाव हमें द्विवेदी युगीन-काव्य में प्रायः मिलता है। महावीरप्रदास द्विवेदी ने 'कान्यकुब्ज-अबला विलाप' नामक कविता में दिनरात निस्वार्थ सेवा कार्य में संलग्न रहने वाली इन दुःखी स्त्रियों पर तुलसीदास के 'ढोल तुल्य ताड़न अधिकारी' आक्षेप पर व्यंग किया है। द्विवेदीजी के अतिरिक्त श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' इत्यादि अन्य कवियों ने भी अपनी कविताओं में स्त्री-स्वातन्त्र्य-संबंधिनी भावना को व्यक्त किया है। ये कवि समाज के पीड़ित और दुखित वर्ग का चित्रण अत्यंत यथार्थ वादी ढंग से करते दिखाई देते हैं। समाज के इस कुरूप और दुर्गंधयुक्त अंग को देखकर वे आँखे बन्द नहींकर लेते अपितु उसका ईमानदारीके साथ चित्रण करते हैं। अतः उनकी रचनायें पाठकों के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं।

(ख) नारीत्व की उच्च भावना—पुरुष और स्त्री के समानाधिकार संबंधिनी भावना का उदय द्विवेदी-युग में ही हुआ है विशेषकर जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति के साथ स्त्रियाँ भी भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लेने लगीं। अब नारी मनुष्य की कामवासना के पूर्ति का साधन मात्र न रहकर राजनीति के क्षेत्र में उसकी सहकर्मिणी बन गई और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से विकास होने लगा।

स्त्री-स्वातन्त्र्य सम्बन्धिनी भावना का दर्शन सबसे पहले हमें रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में होता है। उनकी 'मिलन' और 'स्वप्न' नामक कवितायें नारीत्व की उच्च भावना से ओतप्रोत हैं। 'मिलन' में नायक और नायिका के संयोग और वियोग की अवस्थाओं का रूढ़िगत वर्णन नहीं है, वरन् वह एक विशुद्ध और निस्वार्थ प्रेम की कथा है। कविता की नायिका

विजया अपने पति की जीवन सहचरी के रूप में दिखाई गई है। अपने पति से विलग होने पर वह अपने कर्तव्य का पालन राष्ट्र और मानवता की सेवा के रूप में करती है। 'स्वप्न' की नायिका 'सुमन' का व्यक्तित्व और भी कर्मशील है। वह 'जोन आव आर्क' का भारतीय संस्करण प्रतीत होती है। वह पुरुष का वेष धारण कर विदेशियों से राष्ट्र की रक्षा करने के लिये युद्ध करती है। इसके अतिरिक्त वह अपने कायर पति को मातृभूमि की रक्षा करने के लिये उत्तेजित करती है।

काव्य-शास्त्र पर लिखे गये ग्रन्थों में भी हमें क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। नारीत्व की उच्च भावना के अनुरूप अयोध्यासिंह उपाध्याय अपने 'रस कलश' में नायिका के नवीन भेद देते हैं। वे देश-प्रेमिका, जाति-प्रेमिका, जन्मभूमि-प्रेमिका, निजतानुरागिनी, धर्म-प्रेमिका, लोक-सेविका नामकी नायिकाओं के नवीन रूपों का भी प्रयोग करते हैं। उपाध्याय जी के 'प्रिय प्रवास' की नायिका राधा इस नवीन वर्गीकरण की लोकसेविका नायिका के अनुरूप हैं। कृष्ण से विलग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानव जाति एवं समस्त लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है और वे प्रत्येक प्राणी एवं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण के ही रूप का दर्शन करती हैं। वे समाज की रक्षा पूजा एवं सेवा में ही प्रभु की सर्वोत्तम भक्ति समझती हैं।[४७] वे 'दीनों की भगिनी' एवं 'अनाथाश्रितों की जननी' हैं।[४८]

नारीत्व के प्रति उच्च भावना का दर्शन हमें मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में भी मिलता है। वे अधिकतर कवियों द्वारा उपेक्षित नारियों के चरित्र को अपने काव्य का विषय बनाते हैं, और उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित करते हैं। उनके 'साकेत' की उर्मिला और कैकेयी, 'यशोधरा' की यशोधरा, एवं 'द्वापर' की विधृता उनके ऐसे ही नारी चरित्र हैं। गुप्तजी के 'साकेत' के मूल में उपेक्षित उर्मिला के साथ न्याय करने की भावना ही प्रधान है। इस महाकाव्य में अपने निस्वार्थ त्याग के कारण उर्मिला का चरित्र सीता के चरित्र से भी अधिक ऊँचा उठ जाता है। सीता तो बन में राम के साथ चली भी जाती हैं, किन्तु उर्मिला ने अपने इस अधिकार का भी त्याग

---

[४७] 'प्रिय प्रवास', सर्ग १६, पद्य ११७

[४८] वही, सर्ग १७, पद्य ४६

किया ।[५९] वह अपने घर में ही रहना अधिक उचित समझती है और इस प्रकार प्रिय के पथ का विघ्न न बनकर वियोग का दुःख सहन करती है।[६०] इसी भांति यशोधरा का चरित्र भी अत्यन्त उदात्त है। नारी पुरुष के मार्ग का विघ्न नहीं है अपितु वह उसके उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए उसकी सहायिका है। वे अपने पतियों को स्वयं ही सुसज्जित करके क्षात्र-धर्म पालन के लिए रण में भेज देती हैं।[६१] यशोधरा के हृदय में अपने पति के लिए गर्व है कि वह किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए गृह त्याग कर गये हैं। किन्तु उसे क्षोभ इस बातका है कि वे उसे हीना समझते हुए बताकर नहीं गए। उसमें इतना आत्मसम्मान है कि महात्मा बुद्ध के कपिलवस्तु आने पर वह अपना कक्ष छोड़कर उनसे मिलने नहीं जाती और स्वयं बुद्ध को वहाँ जाने के लिए विवश होना पड़ता है। यशोधरा का यह आत्मसम्मान ही गौतम को नारीत्व की गरिमा स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है।[६२] 'द्वापर' में गुप्त जी विधृता ऐसी एक साधारण नारी का ही चरित्र चित्रण करते हैं। यथार्थ में उनका नारी के प्रति दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर विकसित है, और वे उसे मनुष्य के भोग मात्र की वस्तु न मानकर माँ, बेटी और बहिन के रूप में भी देखते हैं।[६३]

अतः द्विवेदी युग में हम प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का क्रमशः विकास देखते हैं और उसे पुरुष की सम्पत्ति मात्र न रह कर अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से विकास करने में समर्थ पाते हैं।

(ग) मानवता की सेवा और उसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना

आधुनिक हिन्दी कविता में जन सेवा की भावना का एक मुख्य कारण पाश्चात्य प्रभाव है। मानवता की सेवा और उसकी आराधना का आदर्श १९वीं शती के प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक कामटे के 'पाजिटिविस्ट' दर्शन (Comte's

---

[५९] "सीता ने अपना भाग लिया, पर इसने वह भी त्याग दिया।"

[६०] "कहा उर्मिला ने—हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।"

[६१] "स्वयं सुसज्जित करके क्षण में; प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में, क्षात्र धर्म के नाते।"

[६२] दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी।

[६३] नर के बांटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई ?
माँ, बेटी या बहिन हाय ! क्या संग नहीं लाई ?

Positivist Philosophy) का प्रधान अंग है। काम्टे का यह दर्शन उपयोगितावाद (Utilitarianism) पर अवलम्बित है जो प्रत्येक वस्तु का महत्व उसकी सामाजिक उपयोगिता में ही समझता है। काम्टे के अनुसार मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास में सुधार केवल मानवहितवादी धर्म के प्रचार द्वारा ही सम्भव है। अतः वह कहता है कि सामाजिक प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हमारी राजनीति नैतिकता पर आधारित हो, हमारे नैतिक मापदण्ड सही हों, पूँजी का वितरण न्यायोचित ढंग पर हो, पारि-वारिक जीवन के आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा हो एवं विवाह संबंधी विचारों के दृष्टिकोण का विकास हो। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति मानव-सद्प्रवृत्तियों के विकास द्वारा हो सकती है, और यह विकास मानवहितवादी धर्म के प्रचार द्वारा ही सम्भव है।[६४]

यद्यपि काम्टे का अनीश्वरवादी दर्शन भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल न था, किन्तु उसके मुख्य सिद्धांतों को यहाँ समुचित आदर मिला। विशेषकर बंगाल में १९वीं शती के अन्तिम दशकों में इसके अनुयायियों की संख्या फ्रांस से भी अधिक बढ़ गयी।[६५] मानवता की उच्च भावना का सब जगह बड़े उत्साह से समादर हुआ। बंकिम का धर्म वस्तुतः गीता और इस पाश्चात्य 'पाज़टि-विज़्म' का ही समन्वय था। भूदेव, विवेकानन्द, टैगोर इत्यादि बंगाल के अन्य साहित्यकारों पर भी इसका यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

वीतरागात्मकता के प्रति उदासीन रहकर मानव-सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की जो भावधारा बंगाल में प्रवाहित हुई उसका प्रभाव हिन्दी-भाषा-भाषी

---

[६४]दे० 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' भाग ६, पृ० १९४

Society can only be regenerated by the greater subordination of politics to morals, by the moralization of morals by the moralization of capital, by the renovation of the family, by a higher conception of marriage and so on. These ends can only be reached by heartier development of sympathetic instincts. The sympathetic instincts can only be developeed by the religion of humanity.

[६५]प्रियारंजन सेन, 'वेस्टर्न इन्फ्लूयेन्से इन बंगाली लिट्रेचर' (कलकत्ता विश्वविद्यालय १९३२), पृ० १४८

प्रदेश पर भी पड़ने लगा और अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि इससे प्रभावित हुये। हिन्दी की कुछ कविताओं में तो टैगोर का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि वे उनकी कविताओं की अनुकृति मात्र प्रतीत होती हैं।

जन-सेवा का यह आदर्श हमें अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य में अधिक दृष्टिगोचर होता है। यहाँ राधा के चरित्र में दाम्पत्य प्रेम का उन्नयन मानव-प्रेम के रूप में मिलता है। राधा मानवता में ही विश्वात्मा का रूप देखती हैं और वे सेवा में परमप्रभु की सर्वोत्तम भक्ति मानती हैं।[९६] इस भावना का साम्य हमें विवेकानन्द के दर्शन में मिलता है जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी ब्रह्म-स्वरूप है। वे कहते हैं कि कुछ व्यक्ति प्राणी मात्र के लिये दया के भाव की चर्चा करते हैं किन्तु जीव के प्रति, जो स्वयं शिव है, दया की भावना अत्यन्त उपहासास्पद है। दया की भावना दिखाने की अपेक्षा उन्हें प्राणी मात्र में ईश्वर का रूप देखना चाहिये और उसकी सेवा भक्ति-भाव से करनी चाहिये।[९७] पीड़ित मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति को इस भावना में विवेकानन्द सम्भवतः ईसाई मत तथा काम्टे के 'पाज़िटिविज्ट' दर्शन से प्रभावित हुये थे। 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण के चरित्र में यह भावना हमें पुनः प्राप्त होती है जहाँ वे 'रोगी दुखी विपत आपत में पड़े की' सेवा करते दिखाये गये हैं।[९८]

रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में भी हमें जन-सेवा की भावना उपलब्ध होती है। उनके 'मिलन' काव्य में विजया एक निर्धन परिवार की दयनीय दशा देख कर मानव-सेवा का संकल्प करती है, और उसेही अपने दाम्पत्य प्रेम का सही रूप मानती है। 'स्वप्न' में भी रामनरेश त्रिपाठी निस्सहाय, निरुपाय एवं चिन्तामग्न दीन जनों के मध्य हरि का दर्शन करते हैं।

---

[९६] 'प्रिय प्रवास', सर्ग १६, पद ११७

[९७] 'द कल्चरल हेरीटेज आव इण्डिया' में उद्धृत, भाग २, पृ० ५१३

They talk of mercy to the creature. How audacious it is to think of showing mercy on the 'Jiva', who is none other than Siva. One has to regard the creature as God Himself, and proceed to serve it with a devout heart, instead of taking up the pose of doling out mercy.

[९८] 'प्रिय प्रवास', सर्ग १२, पद ८०

किन्तु जन-सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना की अभिव्यक्ति हमें सबसे अधिक रवीन्द्रनाथ टैगोर से प्रभावित कविताओं में मिलती है। टैगोर के अनुसार ईश्वर की प्राप्ति किसी मन्दिर में सम्भव नहीं, वरन् वह श्रम-जीवी वर्ग के सम्पर्क में ही हो सकती है। उनका विश्वास है कि धरती के पुत्रों के मध्य में ही हम ईश्वर की खोज कर सकते हैं। इसीलिए वे भक्त को मन्दिर में आरती के गीत गाने और 'मनके' फेरने को बन्द करके स्वेद-सिक्त दीन श्रमिकों के बीच ईश्वर की खोज करने के लिये उत्साहित करते हैं।[६९]

टैगोर ने मानवता ही में ईश्वर के रूप का दर्शन किया। अतएव वे मानव-सेवा ही ईश्वर सेवा का सर्वोत्तम साधन मानते थे। किन्तु यह मानवता जिसे वे ईश्वर का प्रतिरूप मानते थे पीड़ित शोषित समाज की मानवता थी। यह एक शक्तिशाली विचार था जिसने धर्म के बाह्य स्वरूप पर प्रतिघात किया। मानव सेवा का यह आदर्श केवल अपनी मुक्ति के लिये परिश्रम करने के आदर्श से अधिक ऊँचा माना गया।

ईश्वरोपासना के इस जनवादी स्वरूप की अभिव्यक्ति द्विवेदी-युगीन हिन्दी काव्य में स्वाभाविक ही थी। अस्तु, मैथिलीशरण गुप्त ईश्वर को असहायों, दीनों और दुखियों के बीच पाते हैं।[६०] मुकुटधर पाण्डेय भी 'दीन हीन' के 'अश्रु नीर' एवं 'पतितों' के 'परिताप पीर' में ईश्वर का दर्शन करते हैं।[६१]

जन-सेवा के आदर्श के साथ ही वीतरागात्मकता के प्रति उपेक्षा का भाव भी हमें मिलता है। भारतवासी परम्परा ही से इहलोक की आवश्यकताओं के

---

[६९] 'गीताञ्जलि', कविता ११

[६०] 'सरस्वती', नवम्बर १९१८, 'स्वयमागत'

गलितांगों का गंध लगाये,
आया फिर तू अलख जगाये,
हट कर मैंने तुझे हटाया,
बार बार तू आया!

[६१] वही, १९१७, 'विश्वबोध'

दीन हीन के अश्रु नीर में,
पतितों के परिताप पीर में,
...करता था तू स्नान!

प्रति उदासीन तथा परलोक के सुखी जीवन के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। इस संसार के सब बंधनों को तोड़कर वे सन्यास ही में मुक्ति की साधना करते रहते हैं। किन्तु रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार मुक्ति संसार के बंधनों के त्याग में नहीं है।[६२] वे सांसारिक कर्त्तव्यों को आवश्यक मानते हैं और उनके पालन ही में मुक्ति की आशा करते हैं। हिन्दी कवियों में भी हमें इस नवीन विचारधारा का प्रवाह दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ मुकटधर पांडे 'घर ही में सब योग मुक्ति' और 'घर ही निर्वाण' मानते हैं।[६३]

अतः द्विवेदी-युगीन हिन्दी काव्य में नवीन विचार-धारा के प्रभाव के फलस्वरूप हमें एक नवीन मानवता-वादी दृष्टिकोण मिलता है—मानवता शृंगार और धर्म की वेदी पर बलिदान नहीं की जाती है, मनुष्य का मनुष्य के रूप में समुचित आदर होता है और मानवतावाद (humanitarian-ism) का क्रमशः विकास होता है, नारी पुरुष की अधिकृता सम्पत्ति न रह कर स्वतः अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करती दिखाई देती है, और अन्त में मानवता की सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना का विकास होता है।

(३) राष्ट्रीयतावाद

द्विवेदी-युग में हम राष्ट्रीयतावादी भावना का क्रमिक विकास देखते हैं। 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' का जनवादी मध्यवर्ग के हाथ में आना, बंग-भंग के पश्चात् स्वदेशी-आन्दोलन का प्रसार, रूस और जापान का युद्ध एवं जापान की विजय और 'होम रूल गवर्नमेंट' इत्यादि घटनाओं से भारतीय राजनीति में एक नवीन युगान्तर उपस्थित हुआ। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन से भी शिक्षित भारतीय जनता में नया उत्साह उत्पन्न हुआ। शेक्सपीयर और मिल्टन, बर्क और मिल वाले इंग्लैंड के साहित्य और विचारों ने भारतीयों को उनके स्वातंत्र्य-युद्ध में नवीन प्रेरणा दी। बंगाल में, जहाँ सर्व प्रथम अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ था, राष्ट्रीयता की लहर भी सबसे पहले फैली। बँगला साहित्य में बंकिम, विवेकानन्द, नवीनचन्द्र और टैगोर द्वारा राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दोनों ही पक्षों पर रचनायें की गईं।

---

[६२] 'गीतांजलि', कविता ११

[६३] 'सरस्वती', १९१७, विश्वबोध

घर ही में सब योग मुक्ति थी
घर ही था निर्वाण!

हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना तथा बंगाल की राष्ट्रीय जाग्रति की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। बंगला साहित्य की भाँति हिन्दी साहित्य में भी राष्ट्रीयतावाद के तीन मुख्य पक्ष रहे हैं—प्रथम, देश-प्रेम अर्थात् देश के प्रति प्रेम और आदर की भावना; द्वितीय, राष्ट्रीयतावाद का सांस्कृतिक रूप अर्थात् भारत के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना का प्रयास तृतीय, राष्ट्रीयतावाद का राजनीतिक रूप अर्थात भारत का स्वातंत्र्य-युद्ध।

(क) *देश-प्रेम*—हम देख चुके हैं कि अंग्रेजी साहित्य की देश-प्रेम संबंधिनी भावना का हिन्दी-भाषी शिक्षित जनता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। शेक्सपीयर, मिल्टन, स्काट और बायरन की भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वाले हिन्दी के साहित्यिकों के लिये यह स्वाभाविक ही था कि वे देश-प्रेम संबंधिनी भावना की अपने साहित्य में अभिव्यक्ति करते। स्काट की 'लव आव द कंट्री' कविता, जिसका अनुवाद गौरीदत्त बाजपेयी ने किया था, की अनुकृति पर अनेक कविताओं की रचना की गयी। स्काट की इस प्रसिद्ध कविता में निहित विचार द्विवेदीजी की 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में प्रतिध्वनित होते हैं। वे कहते है कि वह व्यक्ति जिसे अपनी जन्मभूमि से प्रेम नहीं होता वह पशुतुल्य है तथा उसके दर्शन से नर-नारी नरक को प्राप्त होते हैं।[६४] द्विवेदीजी के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त ('सरस्वती', दिसम्बर १६१८, 'मातृभूमि'), कामताप्रसाद गुरु ('सरस्वती', जून १६१६, 'जन्म-भूमि'), 'सनेही' ('सरस्वती', नवम्बर १६१६, 'देश-प्रेमोन्मत्त') और चन्द्रिका प्रसाद अवस्थी ('सरस्वती', अक्टूबर १६०५, 'स्वदेश-भक्ति') ने भी इसी भावना की अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है।

हिन्दी के देश-प्रेम संबन्धी काव्य में एक दूसरी प्रवृत्ति जन्मभूमि के दैवीकरण (apotheosisation) की है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतवासी पारलौकिक एवं अन्य धार्मिक विषयों में इतने अधिक डूबे रहते थे कि उन्हें देश के प्रति ध्यान रहता ही न था। जिसे आज देश-प्रेम कहते हैं वह केवल ब्रिटिश राज्य की स्थापना के उपरांत की वस्तु है। स्वदेश को सेव्य और पूज्य बनाने के अभिप्राय से कवियों ने अपनी जन्मभूमि को एक देवी के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। बंकिम ने 'आनन्द मठ' में राष्ट्र का दैवीकरण

---

[६४] 'द्विवेदी काव्य माला' पृ० ३६६

जग में जन्मभूमि सुखदायी, जिस नर पशु के मन न समायी।
उसके मुख दर्शक नर नारी, होते हैं अघ के अधिकारी।

मां दुर्गा के रूप में किया है। भूदेव के 'हिन्दू कण्ठहार' में पीतवस्त्र धारण किये हुए एक उदार देवी के रूप में राष्ट्र की स्तुति की गई है। हिन्दी कवियों ने भी मातृ-भूमि का दैवीकरण किया है। सम्भवतः इसका सर्वोत्तम उदाहरण मैथिलीशरण गुप्त की कविता है जिसमें उन्होंने मातृभूमि का सर्वेश की सगुण मूर्ति के रूप में स्तवन किया है।[६५] हिन्दी के अन्य कवियों ने भी, विशेषकर श्रीधर पाठक ने, भारत के प्राकृतिक भागों का चित्रण मानवीय अथवा दैवी शरीर के अंगों के रूप में किया है। मानवीयरूप में अधिकतर देश का वर्णन कोटि-कोटि सन्तान वाली उदार मां कह कर किया गया है। भारत मां के कुछ चित्र तो वस्तुतः हृदय-ग्राही हैं।

द्विवेदी-युग में जन्मभूमि के दैवीकरण (Deification) और उसकी आराधना के भाव के अतिरिक्त हमें एक और प्रवृत्ति भी दिखलाई देती है। कुछ कवि भारत की तीस कोटि जनता ही में भगवान् का दर्शन करते हैं। टैगोर की भगवत्भक्त को संबोधित कविता का उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। इसका प्रभाव गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की एक कविता में मिलता है। सनेहीजी आँख मूँद कर ध्यान करने वाले पुजारी को संबोधित कर कहते हैं कि वह इस प्रकार ईश्वर का दर्शन करने में सर्वथा असफल ही रहेगा; उसे मुक्ति भारत को तन मन से भजने से तथा उसकी तीस कोटि जनता में तीस कोटि भगवान देखने ही से हो सकती है।[६६] कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की भावना का कारण भारतीय कवियों पर पाश्चात्य विचारों का प्रभाव ही था।

---

[६५] 'सरस्वती', मार्च १९११

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह सूर्य तारे मण्डन हैं,
बन्दी विविध विहंग, शेष फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस बेश की
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

[६६] **करते हो किस इष्टदेव का आँख मूँद कर ध्यान?**
तीस कोटि लोगों में देखो, तीस कोटि भगवान।
मुक्ति होगी इस साधन से।
भजो भारत को तन धन से।

इस काल के भारतीय कवियों में भारत के प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। बंगला में बंकिम ने 'बन्दे-मातरम्' गीत में भारत देश के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है। बंग-भंग के समय यह गीत बहुत जन-प्रिय हो गया और इसका द्विवेदी-युगीन हिन्दी कवियों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। 'सरस्वती' के जनवरी सन् १६०६ के अंक में इस गीत का अंग्रेजी और हिन्दी दोनों अनुवाद प्रकाशित हुये। हिन्दी अनुवाद स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया। इसके उपरांत 'सरस्वती' में 'बन्देमातरम्' के अनुकरण में अनेक कवितायें प्रकाशित हुईं।

इस प्रकार द्विवेदी-युग में देश-प्रेम की भावना का क्रमशः विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा की भावना, प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक वर्णन, भारत देश और उसकी जनता के दैवीकरण की प्रवृत्ति और उनकी आराधना इत्यादि अनेक भावनाओं की अभिव्यक्ति हमें द्विवेदी-युगीन हिन्दी काव्य में मिलेगी।

(ख) *राष्ट्रीयतावाद का सांस्कृतिक पक्ष*—भारत में राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक पक्ष का विकास वस्तुतः २०वीं शती के प्रारंभ से होता है। द्विवेदी-युग अर्थात् २०वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में भारतीय विचारधारा में प्रतिवर्तनवाद (Revivalism) की भावना प्रबल हो रही थी। किन्तु इस प्रवृत्ति की मूल प्रेरणा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये शोध कार्य से प्राप्त हुई थी। इन विद्वानों में सर विलियम जोन्स (Sir William Jones), हेनरी कालब्रुक (Henry Colbrooke), चार्ल्स विलकिन्स (Charles Wilkins) और मैक्स मूलर (Max Muller) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के शोध-कार्य का हिन्दी लेखकों पर कितना शक्तिशाली प्रभाव पड़ा इसका अनुमान हम गुप्तजी की 'भारत-भारती' से लगा सकते हैं। गुप्तजी ने इस काव्य में भारत के प्राचीन गौरव के संबंध में कर्नल टाड (Col. Tod), वाल्टर रेले (Walter Raleigh), जोन्स (Jones), गेटे (Goethe), शापिन हावर (Schopenhaur) आदि के प्रमाण दिये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये शोध कार्य के लिये भारत सदा ऋणी रहेगा।

भारत के प्राचीन गौरव के प्रति प्रेम का यह भाव भारतेन्दु-युग के अतीतोन्मुख दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। भारतेन्दु-युग में अतीत की खोज और उसके

प्रति ममता की भावना उस युग की पलायनवादी प्रवृत्ति का परिणाम थी। कवि जीवन के कठोर तथ्यों का सामना करने में अपने को असमर्थ पाकर अतीत के सुनहरे स्वप्नों में डूब कर पलायनवादी हो जाता था। परन्तु द्विवेदी-युग में वह भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण भूत से अधिक गौरवशाली भविष्य के निर्माण के लिए करता था। इन दोनों युगों के कवियों के दृष्टिकोण में यही विशेष अन्तर है। द्विवेदी-युग में देश के गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण अर्वाचीन भारत की दयनीय स्थिति से वैषम्य दिखाने के लिए होता था जिसका उद्देश्य देश के निवासियों को अपने प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने के लिये प्रोत्साहन देना था। सियारामशरण गुप्त रचित 'मौर्य विजय' में मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं:—

> **"मंगलमय भगवान की कृपा से हम भारतवासियों में कुछ कुछ स्वदेशानुराग की जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं। किन्तु हमारी वर्तमान दशा ऐसी नहीं है कि उस पर विशेष अभिमान किया जा सके। ऐसी दशा में अपने अतीत के गौरव की ओर ध्यान होना आवश्यक ही है।...यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान कर सके तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है।...पतित जातियों को, उनके उत्थान में, उनके अतीत गौरव का स्मरण बड़ा सहायक होता है। आत्म-विस्मृति ही अवनति का मुख्य कारण है, और आत्मस्मृति ही उन्नति का।"**

इस युग में हिन्दी कवियों के लिये भारत के अतीत-गौरव का गान स्वाभाविक और आवश्यक था। अस्तु प्राचीन भारत के उच्च आदर्शों एवं परम्पराओं से प्रभावित होकर अनेक ग्रंथों की रचना की गयी। सियारामशरण के 'मौर्य विजय' में भारत के अतीत गौरव का स्मरण किया गया है। इस काव्य-ग्रंथ का विषय चन्द्रगुप्त मौर्य की सिकन्दर महान् के सेनापति पर ईसा के ३०५ वर्ष पूर्व की विजय है। पुस्तक का उद्देश्य भारतवासियों को अपने अतीत गौरव को पुनः स्थापित करने के लिये उत्साहित करना है। जयशंकर 'प्रसाद' के 'महाराणा प्रताप' में राजपूत राजाओं के उच्च और महान आदर्शों पर प्रकाश डाला गया है। मुग़ल सम्राट द्वारा परास्त किये जाने पर भी महाराणा प्रताप राजपूतों द्वारा एक मुस्लिम स्त्री पर बलात्कार सहन नहीं कर सकते। प्रताप के

उज्ज्वल चरित्र पर गोकुलचन्द शर्मा ने भी अपने ग्रंथ 'प्रणवीरप्रताप' में प्रकाश डाला है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त लाला भगवानदीन ने 'वीर पञ्चतंत्र' में भारतीय वीर और वीरांगनाओं पर अनेक वीर-गीत (ballads) लिखे। ये चरित्र हमारे इतिहास एवं पुराण दोनों से लिखे गये हैं। इनमें महाराणा-प्रताप, अभिमन्यु, लव-कुश, आल्हा, ऊदल, दुर्गावती, नीलदेवी, इत्यादि प्रमुख हैं। राजपूत राजाओं की वीरता-विषयक अनेक कवितायें इस युग में लिखी गयीं। सम्भवत: इन कवियों को कर्नल टॉड के 'राजस्थान' से प्रेरणा मिली। यूलीसस (Ulysses), तथा होरेशस (Horatius) इत्यादि पाश्चात्य-वीरों पर भी कवितायें लिखी गयीं।

इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयतावाद (Cultural Nationalism) का एक और रूप हमें रविवर्मा के चित्रों में दिखाई पड़ता है। इन चित्रों में अधिकतर पौराणिक चरित्रों का चित्रण किया गया है। 'सरस्वती' पत्रिका में रवि वर्मा के इन चित्रों पर प्राय: कविताएँ प्रकाशित हुआ करतीं थीं। इन कविताओं के जनप्रिय होने का कारण यही है कि वे हिन्दुओं की नवविकसित राष्ट्रीय अभिरुचि के अनुकूल थीं और उन्हें पढ़कर वे अपनी प्राचीन परम्पराओं, प्रतीकों एवं पौराणिक गाथाओं का स्मरण कर लेते थे।

राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक पक्ष की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति मैथिली शरण गुप्त की 'भारत भारती' में हुई है। उर्दू में मौलाना हाली ने, जो स्वयं अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित थे, मुसलमानों को उनकी सांस्कृतिक निद्रा से जाग्रत करने के लिये 'मुसद्दस' की रचना की थी। कुर्री सुदौली के राजा सर रामपाल सिंह ने गुप्तजी से हिन्दुओं केलिये इसी प्रकार की कोई पुस्तक लिखने केलिये प्रार्थना की। इसी का परिणाम गुप्त जी की 'भारत भारती' है। इस पुस्तक की भूमिका में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है।

> **"बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिये हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता-पुस्तक नहीं लिखी गयी जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्यत् के लिये प्रोत्साहन भी।··· उक्त राजा साहब का एक कृपा पत्र मुझे मिला जिसमें श्रीमान् ने हाली के मुसद्दस को लक्ष्य करके इस ढंग की एक कविता पुस्तक हिन्दुओं के लिये लिखने का मुझसे अनुग्रह पूर्वक अनुरोध किया।··· यह सोचकर कि बिलकुल न होने**

की अपेक्षा कुछ होना ही अच्छा है, मैंने इस पुस्तक के लिखने का साहस किया।"

'भारत भारती' का विभाजन तीन खंडों में किया गया है। ये तीन खंड क्रमशः भारत के अतीत, उसकी अर्वाचीन स्थिति तथा उसके भविष्य से संबंध रखते हैं। कवि बताता है कि हम पहले क्या थे, अब क्या हो गये हैं और भविष्य में क्या हो सकते हैं। प्रथम खंड में जहाँ भारत के अतीत-गौरव का वर्णन किया गया है कवि ने प्राचीन भारत के धर्म, दर्शन और कला की उन्नति का उल्लेख किया है। जैसा पीछे कहा जा चुका है भारत-भारती की पाद-टिप्पणियों में पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों से उद्धरण दिये गये हैं। किस प्रकार महाप्रलय के पश्चात् भारत ही में सर्व प्रथम वनस्पति उत्पन्न हुई इसे सिद्ध करने के लिये सर वाल्टर रेले की पुस्तक 'हिस्ट्री आव द वर्ल्ड' से उद्धरण दिया गया है तथा हिन्दुओं ने ही सबसे पहले साहित्य, धर्म और संस्कृति का विकास किया इस मत की पुष्टि के लिये डी० ओ० ब्राउन के २० फर्वरी १८८४ के 'डेली ट्रिब्यून' में प्रकाशित निबंध से उद्धरण दिया गया है। भारतीय विचारधारा की महानता पर मैक्स मूलर, उपनिषदों पर शापिन हावर तथा 'शकुन्तला' पर गेटे के मत दिये गये हैं। टाड के 'राजस्थान' तथा कनिंघम के 'आर्केलाजिकल सर्वे आव इण्डिया' से भी प्रमाण दिये गये हैं। पुस्तक के द्वितीय खंड में जहाँ भारत की अर्वाचीन स्थिति का वर्णन है कवि ने भारतीयों की पतनावस्था का उल्लेख किया है। तीसरे खंड में भारतीयों को अपने प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना कर उज्वल भविष्य के निर्माण के लिये प्रोत्साहन दिया गया है।

अत: द्विवेदी-युग की राष्ट्रीय कविता में प्रतिवर्तनवाद की प्रवृत्ति मुख्य रूप से है।

(ग) राष्ट्रीयतावाद का राजनीतिक पक्ष—भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के साथ राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव स्वाभाविक था। किन्तु १९वीं शती तक भारतीय जनता में राजभक्ति की भावना प्रबल थी और इस समय तक भारत में अंग्रेज़ी राज्य के अन्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। उनकी देशभक्ति उस समय के शासन प्रबंध में कतिपय सुधारों की माँग के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती थी। भारत का स्वातन्त्र्य-युद्ध वस्तुतः २०वीं शती से ही प्रारंभ होता है। १९०४ में बंग-भंग की घटना के पश्चात् भारतीय जनता का ब्रिटिश राज्य के प्रति विश्वास हटने लगा और वह एक

स्वतंत्र राष्ट्र की कामना करने लगी। तत्पश्चात् स्वदेशी-आन्दोलन के साथ समस्त भारत में राष्ट्रीयतावाद की लहर दौड़ गयी।

विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की इस प्रवृत्ति का द्विवेदी-युगीन हिन्दी साहित्य पर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा। इस दिशा में भी अंग्रेजी साहित्य तथा योरपीय राष्ट्रों के स्वातंत्र्य युद्धों से भारतवासियों को प्रेरणा मिली। स्वराज्य, स्वदेशी तथा 'होम रूल' से संबंध रखने वाली अनेक कवितायें हिन्दी में लिखी गयीं। राजनीतिक विषयों पर लिखने वालों में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिली शरण गुप्त तथा गयाप्रासाद शुक्ल 'सनेही' के नाम प्रमुख हैं। इनकी लिखी कविताओं में स्वदेशी वस्तुओं को व्यवहार में लाने तथा भारत के स्वातंत्र्य युद्ध के लिये तत्पर रहने के लिये प्रेरणा रहती थी।

रामनरेश त्रिपाठी ने जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के लिये कुछ वर्णनात्मक काव्य भी लिखे। 'मिलन' नामक काव्य में एक नव युवक आनंदकुमार तथा उसकी पत्नी विजया दोनों राष्ट्र को विदेशी शासन से मुक्त करने के लिये युद्ध करते दिखलाई देते हैं। उनकी दूसरी काव्य पुस्तक 'स्वप्न' में प्रेम और देश सेवा का द्वन्द्व दिखाया गया है। काव्य का नायक वसन्त जो स्वभाव से आलसी तथा विलासी व्यक्ति है अन्त में देश-प्रेम की भावना का महत्व जान जाता है। त्रिपाठी जी ने 'पथिक' काव्य में कांग्रेस की अहिंसक नीति से प्रेरणा ली है। १९१९ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि ही एक प्रकार से इस काव्य-पुस्तक की भावभूमि प्रस्तुत करती है।

मैथिलीशरण गुप्त ने नवीनचंद्र सेन के 'प्लासीर युद्ध' का हिन्दी में अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में नवीनचन्द्र ने बंगाल के अंतिम स्वतन्त्र शासक सिराजुद्दोला की अंग्रेजों द्वारा हार का उल्लेख किया है।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना और अंग्रेजी साहित्य के पठन-पाठन से भारत में राष्ट्रीयतावाद की भावना का क्रमशः विकास हुआ। देश प्रेम, सांस्कृतिक जाग्रति तथा धर्म, कला और दर्शन के क्षेत्रों में प्राचीन मूल्यों की पुनर्स्थापना तथा राजनीतिक चेतना आदि अनेक भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हमें द्विवेदी-युगीन हिन्दी काव्य में मिलेगी। इस युग की राष्ट्रीय कविता आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

(४) प्रकृति-चित्रण

द्विवेदी-युग में हिन्दी कविता के विषयों और उपादानों पर बुद्धिवाद, मानवतावाद और राष्ट्रीयतावाद की तीन मुख्य प्रवृत्तियों का शक्तिशाली

प्रभाव पड़ा है। किन्तु इसके अतिरिक्त द्विवेदी-युग के हिन्दी कवियों के प्रकृति वर्णन पर भी अंग्रेजी का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। अतः द्विवेदी-युगीन हिन्दी कविता की विचार-वस्तु पर आँग्ल प्रभाव के प्रसंग को समाप्त करने से पहले यहाँ इसका उल्लेख भी आवश्यक है। हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि श्रीधर पाठक ने अपने प्रकृति-दर्शन में अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित हो कर प्रचलित काव्य-परम्परा का परित्याग किया था। जैसा पहले कहा जा चुका है, पाठक जी की ये प्रकृति-संबंधिनी कवितायें भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के मध्य की कड़ी हैं। उनकी 'काश्मीर-सुषमा' का प्रकृति-वर्णन अंग्रेजी कवियों के प्रकृति वर्णन के अनुरूप है। किन्तु प्रकृति के मनोरम दृश्यों का अत्यन्त स्वाभाविक एवं सरल वर्णन हमें इनकी 'देहरादून' कविता में मिलता है।

प्राकृतिक दृश्यों के स्वतन्त्र वर्णन की यह परम्परा इस प्रकार श्रीधर पाठक से प्रारंभ होती है। इस नवीन परम्परा का निर्वाह द्विवेदी-युग के सभी प्रमुख कवियों ने किया है। इन कवियों में रामचन्द्र शुक्ल, मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय और रामनरेश त्रिपाठी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रामचन्द्र शुक्ल के 'बुद्धचरित' में, जो एडविन आर्नल्ड (Edwin Arnold) की 'लाइट आव एशिया' का अनुवाद है, प्रकृति के मनोरम एवं भयंकर, दोनों स्वरूपों का वर्णन किया गया है। शुक्लजी ने गौतम बुद्ध के हृदय में राक्षसों द्वारा भय की भावना उत्पन्न करने के अभिप्राय से प्रकृति के भयावह स्वरूप का वर्णन किया है। इसी प्रकार अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी 'प्रिय-प्रवास' में प्रकृति के दोनों स्वरूपों का वर्णन किया है।

कुछ कवियों की कृतियों में प्रकृति-प्रेम एवं देश-प्रेम दोनों भावनाओं का सम्मिलन हुआ है। उदाहरणार्थ रामनरेश त्रिपाठी की 'मिलन', 'पथिक' एवं 'स्वप्न' नामक कविताओं में राष्ट्र-प्रेम के अतिरिक्त मातृभूमि के प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य वर्णन की भी प्रवृत्ति मिलती है।

(द) काव्य के रूप और शैली पर प्रभाव

(१) काव्य-रूप

हिन्दी कविता के बाह्य स्वरूप पर भी अंग्रेजी का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है। इस संबन्ध में सबसे पहले हम यहाँ हिन्दी के महाकाव्यों का उल्लेख करेंगे। द्विवेदी-युग में लिखे गये महाकाव्य भारत के प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से कुछ दूर हो जाते हैं। 'प्रिय-प्रवास' और 'साकेत' महाकाव्य

अपनी विशेषताओं में 'महाभारत', 'रामायण', 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्मावत', 'रामचरित मानस', 'रामचन्द्रिका' इत्यादि संस्कृत और हिन्दी महाकाव्यों से भिन्न हैं। हिन्दी काव्य के इस रूप-परिवर्तन का मुख्य कारण पाश्चात्य प्रभाव है। 'प्रिय प्रवास' के लिखने में उपाध्यायजी ने अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है। यद्यपि संस्कृत में भी अतुकान्त छन्द का प्रयोग होता था, किन्तु इसकी प्रेरणा उन्हें अंग्रेजी महाकाव्यों से ही मिली। मंगलाचरण, वस्तु निर्देश इत्यादि का वहिष्कार भी इन महाकाव्यों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही हुआ। इसके अतिरिक्त 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' दोनों ही महाकाव्य अपनी रचना एवं भावभूमि में नये हैं। इन दोनों पर मिल्टन एवं अन्य पाश्चात्य महाकवियों का प्रभाव माइकेल मधुसूदन दत्त की कृतियों के माध्यम से पड़ा है। जैसा पहले अन्य प्रसंग में कहा जा चुका है, गुप्तजी तथा उपाध्यायजी दोनों ही पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण करने वाले बंगला कवि मधुसूदन दत्त से प्रभावित थे। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि उन पर इसी बँगला कवि के माध्यम द्वारा प्रभाव पड़ा हो।[६७]

महाकाव्य के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रभाव इस युग के उपदेश-काव्य (Didactic poetry) एवं व्यंग्य-काव्य पर भी पड़ा। यद्यपि काव्य के ये रूप पहले भी हिन्दी में प्रचलित थे किन्तु उनको विशेष प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य ही से मिली। उपदेश-काव्य के लिये तो द्विवेदी-युग का वातावरण सुधारवादी आन्दोलनों के कारण विशेष उपयुक्त था। पोप के काव्य का इस उपदेश-काव्य पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसके 'मारेल एसेज' (Moral Essays), 'एसे आन मैन' (Essay on Man) तथा 'एसे आन क्रिटिसिज्म' (Essay on Criticism) उस समय के छात्रों को अधिक प्रिय थे; अतएव उनका हिन्दी के उपदेश-काव्य पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। महावीरप्रसाद द्विवेदी[६८] तथा मैथिलीशरण गुप्त[६९] तो पोप की भाँति अपने मतानुसार काव्य की अनिवार्य विशेषताओं को भी पद्य-बद्ध करते थे।

---

[६७] विशेष विवरण के लिये देखिये पृष्ठ

[६८] दे० महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'हे कविते!'

[६९] 'सरस्वती,' दिसम्बर १६१४

केवल मनोरंजन न कवि का धर्म होना चाहिये,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।

द्विवेदी-युग में कुछ कवियों ने व्यंग्य-काव्य की रचना भी की। इस व्यंग्य-काव्य का उद्देश्य समाज के दोषों और कुरीतियों का उपहास कर उन्हें विनष्ट करना था। आर्यसमाजी कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने इस प्रकार के अनेक व्यंग्य-गीति लिखे।

द्विवेदी-युग में संबोधन-गीति तथा 'सानेट' जिनके भारतेन्दु-युग में भी प्रयोग हुये थे, रचना की गई। इसके अतिरिक्त रोमांटिक प्रेम के प्रबन्ध-काव्यों की भी, जिसकी परम्परा गोल्डस्मिथ के 'द हर्मिट' के अनुवाद से प्रारम्भ हुई थी, रचना की गई। इन प्रबन्ध-काव्यों में जयशंकरप्रसाद का प्रेम-पथिक एवं राम नरेश त्रिपाठी के 'मिलन' और 'पथिक' उल्लेखनीय हैं।

(२) छन्द के रूप

हिन्दी काव्य के रूप में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन अतुकान्त छन्द (Blank Verse) का है। अंग्रेजी में अतुकान्त छन्द का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम सरे (Surrey) द्वारा एलिजबेथ के युग में हुआ था। प्रारम्भ में यह अतुकान्त काव्य अत्यन्त ऊबड़ खाबड़-सा प्रतीत होता था, किन्तु मार्लो (Marlowe), शेक्सपियर और मिल्टन के हाथों में वह परिमार्जित हो गया। अतुकान्त छन्द में पहले अन्त्य विराम (end stop) वाली पंक्ति का प्रयोग होता था, जिसमें प्रत्येक पंक्ति के साथ ही आशय को भी समाप्त होना पड़ता था। किंतु बाद में अग्र-प्रवाहनी (run on) पंक्तियों का प्रयोग किया जाने लगा जिसमें आशय एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति तक जाने लगा।

हिन्दी में अतुकांत छन्द का प्रादुर्भाव अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के प्रभाव के कारण हुआ। बंगला में अतुकांत छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'पद्मावती' में अंग्रेजी से प्रभावित होकर किया था। इसके पश्चात् उन्होंने इस नवीन छन्द का प्रयोग अपने अन्य काव्यों में भी किया। तत्पश्चात् हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ आदि ने भी इसका प्रयोग किया। अतुकांत छन्द का पहले संस्कृत काव्य में भी प्रयोग होता था यथा 'वार्णिक' छन्द में अधिकांशतः तुक अथवा अनुप्रास का प्रयोग न होता था।

अतः महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी कवियों के सामने अतुकान्त छन्द के प्रयोग के लिए अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत तीनों काव्यों के उदाहरण

रखे ।[७०] परिणामस्वरूप हिन्दी में अतुकान्त छन्द का प्रयोग होने लगा और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' की रचना अन्त्या-नुप्रास-हीन मात्रिक छन्दों में की। किन्तु बाद में संस्कृत की इस परम्परा का भी परित्याग कर दिया गया और हिन्दी कवि किसी भी छन्द में अनुप्रासहीन कविता लिखने लगे, उदाहरणार्थ जयशंकरप्रसाद का 'प्रेम-पथिक'।

(३) काव्य की भाषा

हम देख चुके हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी वर्डसवर्थ के काव्य-भाषा विषयक विचारों से, जिन्हें उसने अपनी कविता-पुस्तक 'लिरीकल बैलेड्स' (Lyrical Ballads) के द्वितीय संस्करण की भूमिका में प्रस्तुत किया था, अत्यन्त प्रभावित हुये थे। द्विवेदीजी ने काव्य की भाषा के लिए दो बातों पर विशेष बल दिया। प्रथम तो यह कि काव्य में ब्रज भाषा के स्थान पर गद्य की भाषा खड़ी बोली का ही प्रयोग हो, द्वितीय यह कि सरल और स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया जाय। काव्य-भाषा संबन्धी यह आन्दोलन १९वीं शती के अन्तिम दशक से ही प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि खड़ी बोली काव्य की भाषा के रूप में २०वीं शती में सर्वसम्मति से स्वीकृत की गई तथापि इसका प्रयोग २०वीं शती के प्रारम्भ से ही होने लगा था।

उपसंहार

अतः हम देखते हैं कि द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता में एक नवीन परंपरा का विकास हुआ जिसकी मुख्य प्रवृत्तियों—बुद्धिवाद, मानवतावाद, राष्ट्रीयतावाद तथा प्रकृतिचित्रण—पर पाश्चात्य विचारधारा एवं अंग्रेजी साहित्य का विशेष प्रभाव पड़ा। अवतारवाद की ऐतिहासिक व्याख्या, अलौ-किक एवं कपोलकल्पित कथानकों का परित्याग, मनुष्य का मनुष्य के रूप में समुचित आदर, स्त्री-स्वातंत्र्य सम्बन्धी आन्दोलन, जन सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना एवं राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्वरूपों का उदय और विकास, प्रतिवर्तनवादी दृष्टिकोण और अंत में प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन आदि द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता की इन विशेषताओं की मूल प्रेरणा पाश्चात्य विचारधारा तथा अंग्रेजी साहित्य से ही मिली है।

अंग्रेजी का हिन्दी के काव्य-रूपों पर प्रभाव भी विशेष महत्वपूर्ण रहा है। द्विवेदी-युग के महाकाव्यों पर मिल्टन तथा अन्य पाश्चात्य महाकवियों का

---

[७०] विशेष विवरण के लिये देखिये पृष्ठ ६८

बंगला कवि मधुसूदन दत्त की कृतियों (विशेषकर उनके 'मेघनादवध') द्वारा प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप महाकाव्य की प्रचलित शैली तथा भावधारा में परिवर्तन हो गया। अंग्रेजी काव्य, विशेषकर पोप के काव्य, का हिन्दी के उपदेश-काव्य एवं व्यंग्य-काव्य पर प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त संबोधन गीति, सानेट और रोमांटिक प्रेम विषयक प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्रों में भी प्रयोग किये गये। छन्द के रूपों में अतुकांत छन्द का प्रयोग आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। अन्त में ब्रज स्थान पर खड़ी बोली का काव्य-भाषा के रूप में स्वीकृत होने की प्रेरणा भी बहुत कुछ वर्ड्सवर्थ के काव्य-विषयक विचारों से मिली।

इस प्रकार द्विवेदी-युग में हिन्दी काव्य के विषय तथा उपादान एवं उसके रूप पर अंग्रेजी का अत्यन्त शक्तिशाली प्रभाव पड़ा।

६

छायावाद-युग

(दो महायुद्धों के बीच का काल)

(अ) भूमिका

(१) पृष्ठभूमि

साहित्य के काल-विभाजन का कार्य, विशेषकर विविध वादों के इस युग में, तो बड़ा दुष्कर हो जाता है। परन्तु जहाँ तक हिन्दी कविता का सम्बन्ध है, हम दो युद्धों के बीच की कविता में बहुत कुछ एकरसता पाते हैं। इस काल की हिन्दी कविता में विभिन्न प्रवृत्तियों के होने पर भी मुख्य प्रवृत्ति 'रोमांस' की रही है। अतः दो महायुद्धों के बीच के वर्ष आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस काल में हिन्दी के रोमांटिक काव्य का उदय, विकास और क्रमशः ह्रास हुआ है। रोमांटिसिज़्म का प्रादुर्भाव जो हिन्दी में छायावाद के नाम से प्रचलित हुआ, १९१४ के लगभग होता है और १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभ होते ही वह तीव्र-गति से ह्रासोन्मुख होने लगता है।

हमारे सामने स्वभावतः यह प्रश्न आता है कि इन दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी कविता में यह परिवर्तन कैसे सम्भव हुआ और भारत से इतनी दूर पर लड़े गये इन महायुद्धों का इतना शक्तिशाली प्रभाव किस भाँति हिन्दी साहित्य पर पड़ा।

हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि प्रथम महायुद्ध का कोई सीधा प्रभाव भारत पर पड़ा अथवा नहीं। किन्तु प्रथम महायुद्ध के कारण भारत पश्चिम की विचारधाराओं के सम्पर्क में अवश्य आ गया। अंग्रेजी भाषा और साहित्य की जानकारी के कारण योरपीय जीवन और साहित्य को उद्वेलित

करने वाले प्रत्येक आन्दोलन से अब भारतीय अपरिचित न रह सकते थे। अतः अब भारत राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक किसी भी क्षेत्र में संसार के अन्य राष्ट्रों से विलग न रह सकता था। इसके अतिरिक्त १९१४ में रवीन्द्र-नाथ टैगोर को 'नोबेल पुरस्कार' मिलने से भारत और योरप के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भी सरल हो गया। इन सब घटनाओं के कारण हमारी विचारधारा एवं जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। साहित्य सदा देश और काल का प्रतिबिम्ब होता है। अतः यहाँ पर हम दो महायुद्धों के बीच के समय की स्थिति पर विचार करेंगे।

(क) *बाह्य वातावरण* :—विज्ञान की उन्नति के साथ भारत का बाह्य वातावरण पूर्णतया परिवर्तित हो गया। प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने तक मनुष्य प्रकृति पर अपनी विजय पा चुका था और वह समाज का वैज्ञानिक ढंग से पुनर्निर्माण करना चाहता था। श्रम का स्थान अब मशीनें ले रही थीं। इस नवीन यान्त्रिक सभ्यता का प्रभाव न केवल नागरिक जीवन पर ही पड़ा वरन् ग्राम्य-जीवन भी इससे अछूता न बचा।

भारत में इस यान्त्रिक सभ्यता का प्रादुर्भाव योरप की अपेक्षा देर में हुआ। महायुद्ध के पहले विज्ञान की अमोघ शक्ति और साधन ने योरप निवासियों के मस्तिष्क को पूर्णरूप से आच्छादित कर रखा था और वे विज्ञान के एक काल्पनिक जगत् (Utopia) का स्वप्न देखने लगे थे। किन्तु युद्ध ने उनकी ऐसी आशाओं पर पानी फेर दिया। जब तक भारत में इस यान्त्रिक सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ ही था कि योरप में विज्ञान का 'रोमांस' समाप्त हो चला। अतः भारत में इस यान्त्रिक सभ्यता का लेखकों द्वारा अधिक स्वागत न हुआ। उन्होंने विज्ञान को विनाशकारिणी शक्ति के रूप में देखा और उत्पादन के नवीन यन्त्रों को जनसाधारण के शोषण के हथियार के रूप में।

प्रथम महायुद्ध के उपरांत ही भारत में घोर आर्थिक संकट उपस्थित हुआ। सहस्रों व्यक्ति नौकरी से पृथक् कर दिये गये और बेकारी की समस्या जटिल होती गई। उच्चवर्गीय समाज, पूँजीपति और जमींदार द्वारा जनसाधारण का शोषण होने लगा। अतः सामंती व्यवस्था के समाप्त होते ही पूँजीवाद का बोलबाला हो चला और जनता का शोषण और भी वेग से होने लगा।

दो महायुद्धों के बीच के काल में 'प्रेस' का प्रभाव भी बढ़ने लगा। दैनिक पत्र, पत्रिकायें एवं सस्ती पुस्तकें अब पढ़ी लिखी जनता को सरलता से

उपलब्ध होने लगीं। ऐसी स्थिति में हिन्दी पत्रकारिता का भी विकास हुआ। 'इन्दु' (१६०६, पुनः स्थापित १६२७), 'माधुरी' (१६२३) और 'विशाल भारत' (१६२६) का प्रादुर्भाव इसी काल में हुआ।

(ख) *नवीन विचारधारायें* :—विज्ञान के साथ जैसे-जैसे जीवकोपार्जन के साधनस्वरूप यंत्रों और हथियारों का विकास हुआ, त्यों-त्यों मनुष्य की विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ। भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान और जीव-विज्ञान के क्षेत्र में नवीन खोजों का आधुनिक विचारधारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। बौद्धिक जीवन के इन परिवर्तनों का युग के बौद्धिक साहित्य पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। अणु-विज्ञान के स्थान पर परमाणु-विज्ञान (Electronic Theory) की स्थापना हुई। उधर मनोविश्लेषण संबंधी नवीन सिद्धान्तों का प्रभाव भी युग के साहित्य पर पड़ना आरंभ हुआ यद्यपि यह द्वितीय महायुद्ध के परवर्ती काल में अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। जीवविज्ञान में डार्विन के विकास-वाद ने युग की विचारधारा पर प्रभाव डाला। विकासवाद के बाद के अन्य परिवर्तनों, उदाहरणार्थ लॉड मार्गन (Llyod Morgon) का आकस्मिक विकासवाद (Emergent Evolution), बर्गसां की जीवनशक्ति (Elan Vital) तथा शा का सृजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) आदि का भी प्रभाव कुछ लेखकों पर पड़ा है। पर वह अधिक महत्व का नहीं कहा जा सकता।

वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों के फलस्वरूप हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में भी परिवर्तन हुए। हमारे धार्मिक विश्वासों और वैज्ञानिक खोजों में बहुधा वैषम्य रहा तथा हमारी सौन्दर्यानुभूति युग के शुष्क बुद्धिवाद से सहम-सी गई। ईश्वर में आस्था, आत्मा की चिरन्तनता आदि विश्वास विज्ञान की कसौटी पर खरे न उतरे। अतः धर्म और विज्ञान के बीच तथा कलात्मक सौन्दर्य और औद्योगिक जगत की कुरूपता के बीच एक खाई बनने लगी।

युद्धोत्तर काल में जीवन-गति किसी निश्चित दृष्टिकोण को लेकर नहीं चल रही थी। यह स्पष्ट था कि योरपीय सभ्यता में कहीं न कहीं कोई विशेष अभाव अवश्य था। जहाँ बेकारी, बीमारी तथा मृत्यु का नग्न नृत्य हो और जहाँ जन-संहार इतनी मात्रा में हो वह व्यवस्था किसी प्रकार लोकोपयोगी नहीं कही जा सकती। यद्यपि बाह्य रूप से समाज प्रगतिशील प्रतीत होता था, किन्तु उसकी आत्मा रुद्ध होती जा रही थी। वैज्ञानिक विचारों के प्रसार से प्राचीन

मूल्य और मान्यतायें जर्जरित हो गयी थीं, किन्तु अभी नवनिर्माण का कार्य प्रारंभ भी न हुआ था।

युद्ध से पहले इस नवीन यांत्रिक सभ्यता पर सबका दृढ़ विश्वास था, किन्तु युद्ध के भयंकर जन-संहार ने मानव-प्रगति के सामने एक प्रश्न चिह्न लगा दिया था। भारत में भी १९१९ और १९२९ के असफल राष्ट्रीय आन्दोलनों ने एक निराशाजनक स्थिति उत्पन्न कर दी थी। अस्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उद्विग्नता तथा अनिश्चितता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे।

(२) नई कविता

वैज्ञानिक युग की इस नवीन स्थिति से कोई भी साहित्यकार बिना प्रभावित हुये न रह सकता था। हिन्दी लेखकों पर भी इस परिस्थिति की किसी न किसी रूप में प्रतिक्रिया होना स्वभाविक था। हिन्दी कवियों ने जीवन के कठोर तथ्यों का कभी कभी साहस के साथ सामना किया, किन्तु अधिकतर उनकी प्रवृत्ति पलायनवादी रही और वे अहं की सँकरी प्राचीरों में बन्द हो काव्य-रचना करते रहे।[1] बहुधा उनका दृष्टिकोण जीवन-संग्राम में पराजित योद्धा का-सा हो गया जो अपनी असमर्थता के कारण भाग्यवादी बन जाता है। हिन्दी कवियों की इस मनःस्थिति का सुन्दर विश्लेषण करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं :

---

[1] इस पलायनवादी प्रवृत्ति का विश्लेषण ई० एम० फार्सटर (E. M. Forstor) ने 'द लन्दन मर्करी (The London Mercury) के दिसम्बर मास १९३८ के अङ्क में प्रकाशित 'द आइवरी टावर' (The Ivory Tower) नामक निबंध में से निम्न उद्धरण वार्ड (A. C. Ward) ने अपनी 'ट्वन्टीयथ सेन्चुरी लिट्रेचर' (Twentieth Century Literature) में दिया है।

There are two chief reasons for Escapism. We may retire to our towers because we are afraid......But there is another motive for retreat, boredom, disgust, indignation against the herd, the community and the world;the conviction that sometimes comes to the solitary individual that his solitude gives him something finer and greater than he gets when he merges in the multitude.

"नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण करने से पहले, हिन्दी कविता छायावाद के रूप में, ह्रासयुग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर पलायन के रूप में प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर, भीतर बाहर में, सुख–दुख में, आशा–निराशा, और संयोग वियोग के द्वन्द्वों में सामञ्जस्य स्थापित करने लगी। सापेक्ष की पराजय उसमें निरपेक्ष की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी।"[२]

इस कविता का प्रादुर्भाव कैसे भी हुआ हो, किन्तु इसकी सफलताओं को कोई भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता। यद्यपि कुछ कवि अत्यंत अहंवादी हो गये, किन्तु प्रायः उन्होंने कवि-कल्पना को सौन्दर्य और कुतूहल के क्षेत्र में विचरण करने के लिए नवीन सरणियों का निर्माण किया। हिन्दी के इस नये काव्य ने जो छायावाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ रीतिकाव्य तथा द्विवेदी-युगीन काव्य की परम्परा से अपना संबन्ध विच्छेद कर लिया। इस काल के कवियों ने कविता को ब्रजभाषा और उसके साथ की रूढ़ियों से तथा द्विवेदी-युग की उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता से मुक्त कर दिया। यह एक महान कार्य था जिसे हिन्दी कवियों ने पूर्ण करने में यथा शक्ति प्रयत्न किया।

(ब) पश्चिम के साहित्यिक प्रभाव

हम देख चुके हैं कि हिन्दी में नई कविता का प्रादुर्भाव प्रथम महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण हुआ। यहाँ पर हम उन पश्चिमीय विविध साहित्यिक प्रभावों का विवेचन करेंगे जिन्होंने हमारी काव्य-धारा को नवीन मोड़ प्रदान किये। सबसे पहले 'रोमांटिसिज्म' (Romanticism) की ओर हमारा ध्यान जाता है, क्योंकि पाश्चात्य साहित्य की इस प्रवृत्ति ने दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है।

---

२ सुमित्रा नन्दन पन्त, 'आधुनिक कवि', (इलाहाबाद, हिन्दी सा० सम्मेलन, संवत् २००३) पर्यालोचन, पृ० १२

(१) 'रोमांटिसिज़्म' (Romanticism)

आलोचकों ने 'रोमांटिसिज्म' शब्द की विविध व्याख्याएँ की हैं। कोई आलोचक इसे विरोध की प्रवृत्ति, कोई प्रकृति-प्रेम में नवीन अभिरुचि, और कोई इसे अभिव्यक्ति की नवीन प्रणाली मात्र कहते हैं। अतः प्रश्न उठता है कि रोमांटिसिज्म का वास्तविक तत्व क्या है। इस विषय में एबरक्रोम्बी (Abercrombie) का मत उचित प्रतीत होता है। उसके अनुसार रोमांसवाद मन की उस प्रवृत्ति का नाम है जिसके द्वारा वह वाह्य संसार से संबंध विच्छेद कर अपने अन्तस् के तत्वों की ओर उन्मुख होता है।[१] रोमांटिक लेखक बाह्य संसार की वस्तुओं का वर्णन भी इस प्रकार से करता है जैसे वे उसकी आन्तरिक अनुभूति के प्रतीक हों। अतः रोमांसवादी साहित्य मूलतः आत्माभिव्यक्ति प्रधान (Subjective) होता है।

(क) *अंग्रेजी साहित्य का रोमांटिक प्रतिवर्तन* (The English Romantic Revival) *१७९८-१८३०*:—पूर्व के नव-शास्त्रीय युग (Neo Classical Age) के विरोध के परिणामस्वरूप अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक प्रतिवर्तन प्रारंभ हुआ। रोमांटिक प्रतिवर्तन से पूर्व काव्य में घोर नियम-बद्धता का विधान था और उसमें प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य के नियमों का अन्धानुकरण होता था। उस युग के कवि प्रेरणा की अपेक्षा कलात्मकता की ओर अधिक ध्यान देते थे। कवि बहुधा उच्चवर्गीय समाज के आश्रय में रहते थे और इसी सीमिति समाज की भावनाओं और अनुभूतियों को काव्य में अभिव्यक्त करते थे।

अठारहवीं शती के मध्य में अंग्रेजी काव्य-धारा में एक परिवर्तन आरम्भ हुआ यद्यपि वह १९वीं शती के प्रारंभिक काल में ही अधिक स्पष्ट हुआ। ब्लेक (Blake) वर्डसवर्थ (Wordsworth) और कोलरिज (Coleridge) में जिस प्रवृत्ति का विस्फोट हुआ उस का प्रारंभ टॉमसन (Thomson) कालिन्स (Collins), ग्रे (Gray) और कूपर (Cowper) की रचनाओं में पहले ही से हो गया था। टामसन के काव्य में प्रकृति के प्रति उत्कट प्रेम की

---

[१] एबरक्रोम्बी, 'रोमांटिसिज्म' (द्वितीय आवृत्ति) पृ० २२

Romanticism is that attitude of mind in which it withdraws itself from commerce with the outer world, and turns in upon things which it finds within itself.

भावना थी, कौलिन्स के काव्य ने कवि की रुद्ध आत्मा को कल्पना-क्षेत्र में विचरण करने के लिये नवीन मार्ग प्रशस्त किए, ग्रे के काव्य में रोमांटिक अवसाद (Romantic Melancholy) की अभिव्यक्ति हुई, और कूपर ने काव्य में आध्यंतरिकतावाद (Subjectivity) को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड में कतिपय अन्य प्रभाव भी नवीन कविता के सूत्रपात में सहायक हुये। स्काटलैंड के स्थानीय (Local) कवियों की कृत्तियों में उनके स्वयं के आह्लाद और विषाद की अभिव्यक्ति रहती थीं, जिसे वे अपने जातीय काव्य के परम्परागत काव्य-रूपों में व्यक्त करते थे। अंग्रेजी में स्काटलैंड के इस काव्य को वार्टन (Warton) और बर्न्स (Burns) ने प्रस्तुत किया। पर्सी (Percy) के प्राचीन आख्यानक गीतों (Ballads) के संग्रह तथा मेकफर्सन के 'ओशियन' (Macpherson's 'Ossian') के प्रकाशन ने अंग्रेजी कवियों में अतीत के प्रति विशेष मोह उत्पन्न कर दिया।

रोमांटिक प्रतिवर्तन के साथ हम काव्यात्मक अभिव्यक्ति में बुद्धि-पक्ष की अपेक्षा हृदय-पक्ष का महत्व अधिक पाते हैं। इस नवीन आन्दोलन का प्रारम्भ हम सन् १७९८ में वर्डसवर्थ और कोलरिज के काव्य-संग्रह 'लिरीकल बैलेड्स' (Lyrical Ballads) के प्रकाशन से मान सकते हैं। इस काव्य-संग्रह में शास्त्रीय ढंग की काव्य-परंपरा का सर्वथा परित्याग था और वैयक्तिक अनुभवों की अनवरुद्ध अभिव्यक्ति थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के सम्पूर्ण रोमांटिक आन्दोलन पर फ्रांसीसी क्रान्ति का विशेष प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उसमें एक नूतन प्रेरणा का आवेग भर गया।

(ख) अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ:—यहां पर हम अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की कतिपय उन मुख्य प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे जिन्होंने दो महायुद्धों के मध्यवर्ती हिन्दी-काव्य पर अपना प्रभाव डाला है।

सौन्दर्यवाद:—अंग्रेजी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति सौन्दर्यवाद है। रोमांटिक कवि सौन्दर्य की भावना से सदैव प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रकृति अथवा नारी का सौन्दर्य रोमांटिक कवि की कल्पना को उद्वेलित कर देता है और वह अपनी सौन्दर्यानुभूति को बरबस कविता का रूप प्रदान कर देता है। कीट्स ने इस संबंध में एक स्थल पर कहा है कि मैंने प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य

के सिद्धांत की उपासना की है, और यदि मुझे जीवित रहने का अवकाश मिलता तो मैं अपने को अंग्रेजी कविता के इतिहास में स्मरणीय बना लेता।[४]

इसका यह तात्पर्य नहीं कि शास्त्रीयता का पोषक (Classicist) सौन्दर्य प्रेमी नहीं होता। किन्तु बात यह है कि सौन्दर्य की शास्त्रीय भावना और रोमांटिक भावना में अन्तर है। वाल्टर पेटर (Walter Pater) ने इस अन्तर को भली भांति स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि सौन्दर्य की शास्त्रीय भावना में एक क्रम (order) है जबकि उसकी रोमांटिक भावना में सौन्दर्य के साथ कौतूहल के भाव का मिश्रण है।[६] अतः शास्त्रीय सौन्दर्यानुभूति में बाह्य सुडौलता की प्रधानता रहती है और रोमांटिक सौन्र्यानुभूति का रहस्य कवि के आंतरिक अनुभव में ही अन्तर्हित रहता है।

(२) मानवतावादः—रूसो (Rousseau) के मानवतावाद का अंग्रेजी काव्य की रोमांटिक धारा पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है। रूसों की 'सोशल कांट्रेक्ट' (Du Contract soccal) और 'एमली' (Emile) पुस्तकों से योरप भर में विद्युत् की भांति सनसनी फैल गयी। रूसो का सारा दर्शन हमें बीज-रूप से इन दो पुस्तकों के प्रारंभ के वाक्यों में मिल जाता है। उसकी प्रथम पुस्तक का प्रारंभ 'मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होता है, परन्तु वह प्रत्येक स्थान पर दासता की बेड़ियों में जकड़ा है' के वाक्य से होता है। यह यही 'सोशल कांट्रेक्ट' पुस्तक है जिसने फ्रांसीसी क्रांति को 'स्वतन्त्रता, समता और बंधुत्व' (Liberty, Equality, Fraternity) के नारे दिये और अंग्रेजी साहित्य के समस्त रोमांटिक आन्दोलन को झकझोर दिया। रूसो की दूसरी पुस्तक 'एमली' (Emile) का प्रारंभ "ईश्वर ने सब वस्तुओं को अच्छा बनाया है, किन्तु समय ने उन्हें कुरूप और वीभत्स बना दिया है" वाक्य से होता है। इस विचार से रोमांटिसिज्म के एक नवीन पक्ष की पुष्टि हुई। रोमांटिक कवि रूसो के इस सिद्धांत से प्रभावित हो जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण का परित्याग करता है और अनुभूतियों, जन्मजात प्रवृत्तियों और

---

[४] I have loved the principle of Beauty in all things and if, I had had time I would have made myself remembered.

[६] 'मैकमिलन मैगजीन', वाल्यूम ३५, फैल्प्स (Phelps) के 'द बिगिनिंग्स आव इंग्लिश रोमांटिक मूवमेंट' में उद्धृत, पृ० ३

The essential classical element is the quality of order in beauty...It is the addition of strangeness to beauty that constitutes the Romantic temper.

समवेदनाओं के मार्ग को अपनाता है। बालकों और सभ्य समाज से दूर रहने वाले ग्रामीणों में ये भावनायें अपनी प्राकृत अवस्था में विद्यमान रहतीं हैं। अतः रोमांटिक कवि उच्चवर्गीय समाज का जीवन चित्रित करने की अपेक्षा बालकों और ग्रामीणों के जीवन को अपने काव्य का विषय बनाता है।

रूसो के मानवतावाद की सुन्दर अभिव्यक्ति हमें शेली (Shelley) के आदर्शवाद में मिलती है जिसे 'प्लेटोनिज्म' (Platonism) के नाम से पुकारा जाता है। रोमांटिक कवि जो मूलतः व्यक्तिवादी होता है किस प्रकार अहं की प्राचीर को तोड़ कर जन-स्वातंत्र्य का पोषण करता है, एबरक्रोम्बी ने इसकी सुन्दर विवेचना की है। वह कहता है कि रोमांटिक लेखक बाह्य जगत में और अपने प्रेम के आदर्श में निरंतर विरोध पाता है, किन्तु वह अपनी आन्तरिक अनुभूति के आलोक में एक ऐसे जगत का साक्षात्कार करता है जहाँ प्रेम का निरंतर महोत्सव होता रहता है। कवि का यह आंतरिक जगत अन्ततोगत्वा सब पर विजयी सिद्ध होता है।

कवि की कल्पना ऐसे स्वांतस्थ सत्य का संकेत करती है, जिससे कवि बाह्य जगत की अनुभूयमान अपूर्णता को यथावत् छोड़कर पलायनवादी नहीं बनता, अपितु जो प्रतिभासित अपूर्णता का निराकरण कर उसके स्थान पर स्वतः प्रतिष्ठित होता है। उसके स्वकल्पित संसार को अन्त में अन्तस् की प्राचीरों को तोड़ कर बाहर निकलना है और उसे बाह्य जगत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर उसका पुर्नसंगठन करना है।[६]

---

[६] एबरक्राम्बी, 'रोमांटिसिज्म', पृ० १११–११२

As it is, the life of this world is a continual offence against love, and love is what he believes in. But in the vision of his inner experience he can conceive of a world which is a continual celebration of love. This must be the world which must finally triumph! And so his imagination tells us not of an inner reality into which one may withdraw from the imperfection which, nevertheless must still go on existing, but of an inner reality which will at last replace and cancel the imperfection of outer experience. The world he imagines is to march out of its quarters, and annex and reorganise the world he knows.

एवरक्रोम्बी का यह कथन हमें शेली के 'प्लेटोनिज्म' अथवा आदर्शवाद का तत्व बताता है, और जिसे वह व्यक्तिवाद और जनवाद के बीच की एक कड़ी होने का संकेत करता है। प्लेटोनिज्म के अनुसार आत्मा अपनी संकीर्ण कारा को छोड़कर एक ऐसी सीमा पर पहुँच जाती है जहाँ व्यक्ति और सारी मानवता का तादात्म्य हो जाता है। इस प्रकार प्रेम की विश्वव्यापी शक्ति की भावना सारी मानवता को एक सूत्र में बाँध देती है। यही शैली के आदर्शवाद की भाव-भूमि है। सम्भवतः फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों की इससे अधिक अच्छी अभिव्यक्ति और कहीं नहीं हुई है।

(३) रोमांटिक निराशावाद (Romantic Melancholy):— रोमांटिक निराशा अथवा खिन्नता शास्त्रीय निराशा से भिन्न है। शास्त्रीय (classical) कवियों की निराशा का कारण मानव जाति के भाग्य में अन्तर्हित विषाद है, किन्तु रोमांटिक अवसाद का कारण नितान्त वैयक्तिक होता है। रूसो के अनुयायी रोमांटिक कवि की प्रवृत्ति अपनी व्यक्तिगत आशाओं, निराशाओं, भावनाओं और स्वप्नों में ही लीन रहने की होती है। अतः उसकी खिन्नता उसके स्वप्न और कठोर वास्तविकता के वैषम्य से उत्पन्न होती है। अपने में अत्यधिक विलीन रहने के कारण उसे एकाकीपन का अनुभव होने लगता है जिसके कारण वह उदास हो जाता है और उसकी अभिव्यक्ति वेदनामयी हो जाती है।

(४) रहस्यवादः—हम कह चुके हैं कि रोमांटिक कवि अहंवादी होता है। रहस्यवाद के मूल में भी इसी अहं के प्रस्फुटन की भावना है। कज़ामियाँ लिखता है कि १८वीं शती के अन्त में अंग्रेजी में एक नवीन अनुभूति प्रधान साहित्य की रचना होने लगी थी। ब्लेक के काव्य में, जैसा हम आगे चलकर वर्ड्सवर्थ में भी पाते हैं, कवि की पूर्ण निश्छलता, निगूढ़ आत्मत्याग की भावना और उसके अहं की जागरूकता का यथार्थ आत्म-प्रदर्शन इत्यादि ऐसे गुण हैं जो हमारे लिये आध्यात्मवाद के अपूर्व ज्ञान-कोष को प्रस्तुत करते हैं। यह कोष आन्तरिक तथा गुप्त होने पर भी सरल और सुलभ है।[७]

---

[७] लिग्वी एण्ड कज़ामियां, 'हिस्ट्री आव इंग्लिश लिट्रेचर (१९४३) पृ० ९८९

English literature at the close of eighteenth century is pregnant with a new intuition...It is there that with Blake, just as with Wordsworth a short time later, an absolute sincerity, a mystic renunciation, the boldness of a self that offers itself in its nakedness, reveal the treasure of a yet untapped spirituality, which inward and secret as it was, still lay within easy and direct reach.

अतः रहस्यवादी अपनी अनुभूति के द्वारा ईश्वर से सीधा संबंध स्थापित कर लेता है। संक्षेप में अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य की यही मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रवृत्तियों ने भी दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर प्रभाव डाला है। अतीत के गौरव का गान और उसके प्रतिवर्तन की प्रवृत्ति अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की विशेषता है। रोमांटिक कवि जो कि सौंदर्यवादी भी होता है, सुदूर अतीत में सौंदर्य की खोज के लिए अपनी वर्तमान विषम परिस्थितियों से पलायन करता है। जैसा कैम्पबेल (Campbell) ने कहा है 'दूर की वस्तु सदैव आकर्षक लगती है' (Distance lends enchantment to the view)। अन्त में अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की एक अन्य प्रवृत्ति अलौकिकतावाद (Supernaturalism) भी है जिसका प्रभाव इस काल की कविता पर यथेष्ट पड़ा।

(ग) अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का कलात्मक पक्ष:—अंग्रेजी का रोमांटिक आन्दोलन केवल काव्य के विषयों और उपादानों तक ही सीमित न था। वह उसके रूप और शैली में भी क्रांति चाहता था। रोमांटिक आन्दोलन के कवियों ने उस समय की प्रचलित काव्य-परम्परा के प्रति विद्रोह किया और 'हीरोइक कपलेट' (Heroic couplet) के स्थान पर अपनी काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छन्दों का प्रयोग किया। संबोधन-गीत (Ode) और चतुर्दशपदी (Sonnet) आदि गीतकाव्य का प्रचलन होने लगा और अंत्यानुप्रासहीन (Blank verse) रचना द्वारा कवि-कल्पना के उन्मुक्त विकास का अवसर मिल जाने लगा।

इसके अतिरिक्त रोमांटिक कवियों ने अठारहवीं शती की काव्यगत भाषा का परित्याग तथा शब्दों, प्रतीकों और बिम्बों का नया विधान प्रस्तुत किया। उनकी भाषा में व्यंजकता (Suggestiveness), संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का विशेषरूप से समावेश हुआ। शैली द्वारा प्रयुक्त किये गये प्रतीक जिनमें जीव और प्रकृति की शक्तियों का मानवीकरण था, और उसका विश्वास कि यह प्रकृत-जगत् (Phenomenal world) किसी अदृश्य (Noumenal) जगत् का प्रतिबिम्ब मात्र है—अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के प्रतीकवाद के दो मुख्य पक्षों को प्रस्तुत करता है।[८]

---

[८] दे० ए० टी० स्ट्रॉंग, 'स्टडीज इन शैली' (१९२१) पृ० ६७

(घ) अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और हिन्दी छायावाद:—यहाँ पर हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और हिन्दी छायावाद में कहाँ तक साम्य है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि अंग्रेजी का रोमांटिक प्रतिवर्तन और हिन्दी छायावाद दो विभिन्न देशों और संस्कृतियों के आन्दोलन थे और उनका प्रादुर्भाव विभिन्न परिस्थितियों में हुआ था। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन की भूमिका में फ्रांस की सफल क्रांति थी, किन्तु छायावाद की भूमिका में १६२१ और १६२६ के असफल राष्ट्रीय आन्दोलनों की तिक्त स्मृतियाँ थीं।

फिर भी अंग्रेजी और हिन्दी के इन दो आन्दोलनों में बहुत कुछ साम्य है। हिन्दी छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य की प्रवृत्तियों के इतनी अधिक अनुरूप हैं कि वे उनकी छाया मात्र प्रतीत होती हैं। यह कहना किसी सीमा तक ठीक भी है कि दो महायुद्धों के बीच के हिन्दी छायावादी कवियों ने १६वीं शती के अंग्रेजी रोमांटिक कवियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उनमें से कुछ ने सीधे अंग्रेजी कवियों से सीखा और कुछ ने बँगला साहित्य के माध्यम से अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की विशेषताओं को अपनाया। सुमित्रानन्दन पन्त कहते हैं कि "पल्लवकाल में मैं उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौंदर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवनस्वप्न दिया है।"[९] इलाचन्द्र जोशी भी टैगोर की 'गीतांजलि' और शेली, कीट्स, और वर्डसवर्थ का प्रभाव स्वीकार करते हैं।[१०] महादेवी जी इसी विचार की हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य पाश्चात्य साहित्य और बँगला की नई कविता से प्रभावित है।[११] अतः इसमें संदेह नहीं कि छायावादी कवियों पर अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का विशेष प्रभाव है।

हिन्दी छायावादी कवि अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्तन के कवियों से क्यों प्रभावित हुए इसका कारण भी स्पष्ट है। अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य ने

---

[९] सुमित्रानंदन पन्त, 'आधुनिक कवि', २, (हि० सा० स०, प्रयाग, सं० २००३), पृ० १३

[१०] इलाचन्द्र जोशी, 'पथरेखा', 'संगम' (१८ दिसम्बर १६४६) पृ० २०

[११] महादेवी वर्मा, 'आधुनिक कवि', ३, (हि० सा० स०, प्रयाग, सं० २००६) पृ० १०

अपने पूर्व के नव-शास्त्रीय युग (Neo-classical age) की काव्य-परम्परा का, जिसमें नितांत नियमबद्धता थी, विरोध किया था। इसी प्रकार हिन्दी की छायावादी कविता ने भी रीतियुगीन काव्य की काव्य-परंपरा को, जिसमें संस्कृत काव्यशास्त्र का अन्धानुकरण और परंपरागत रूपकों और उपमाओं का प्रयोग था, तोड़ने का प्रयास किया। दोनों आन्दोलनों के प्रवर्तकों ने उच्चवर्गीय समाज के संकीर्ण वातावरण से काव्य की रुद्ध आत्मा को मुक्त करने का प्रयत्न किया और उसके लिये कल्पना और अनुभूति के मार्ग खोल दिये। ये दोनों आन्दोलन व्यक्तित्व-प्रधान साहित्य के रूप थे। यहाँ पर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का विश्लेषण देना असंगत न होगा। वे कहते हैं :

> "उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी के जिन साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वाधीन दृष्टिभंगी विकसित हुई थी वे विद्रोही अवश्य थे, परन्तु वह विद्रोह उनकी नवीन भावधारा का बाहरीन और आवश्यक रूप भर था।···कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग—ये दो निरंतर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं।···
>
> कवि-चित्त जब बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता तब छन्दों की भाषा अत्यन्त प्रभावशाली होकर प्रकट होती है। आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति और बाह्य असुन्दरसी लगने वाली परिस्थिति की टकराहट में जो विक्षोभ पैदा होता है वह सब देशों में काव्य की भाषा को मुखर बना देता है। उसमें सम्मूर्तन का रूप और आवेग का पंख लगा देता है···रोमांटिक साहित्य इसी प्रकार के कवि-चित्त के आन्तरिक सौंदर्य के आदर्श और बाहरी जगत के एकदम भिन्न परिस्थिति के संघर्ष का परिणाम है।···वर्डसवर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियों ने जिस मोहक सौंदर्य जगत का निर्माण किया है वह अपूर्व है। उसने हमारे देश के साहित्य को भी प्रभावित किया है।" [१२]

अस्तु अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और छायावाद की भावधारा बहुत भिन्न न थी, ये दोनों आन्दोलन 'कविचित्त के आन्तरिक सौन्दर्य के

---

[१२] देवराज उपाध्याय, 'रोमांटिक साहित्य शास्त्र' (प्रथम संस्करण, १९५१), भूमिका लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २, ५, ६।

आदर्श और बाहरी जगत् की एकदम भिन्न परिस्थिति' के संघर्ष के परिणाम हैं यही कारण है कि दोनों में, देश और संस्कृति के भिन्न होने पर भी, बहुत कुछ साम्य है।

(२) प्रतीकवाद

पाश्चात्य प्रतीकवाद के कुछ रूपों का भी हिन्दी छायावादी कविता की शैली पर प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य प्रतीकवाद के ये रूप, जिन्होंने दो महायुद्धों के बीच के हिन्दी कवियों को प्रभावित किया है, निम्न प्रकार हैं—मैटरलिंक का प्रतीकवाद, ईसाई मत का प्रतीकवाद और फ्रांसीसी प्रतीकवादी आन्दोलन।

(क) *मैटरलिंक का प्रतीकवाद* (Maeterlinck's Symbolism):—मैटरलिंक के प्रतीकवाद का हिन्दी और बँगला दोनों के काव्यों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। मैटरलिंक ने अधिकतर नाटक लिखे हैं जिसमें उसने परम्परागत विषय का परित्याग कर स्वप्न जगत् की भाव-भूमि अपनायी है। उसके चरित्रों का कोई अपना व्यक्तित्व नहीं है और वे कवि के स्वप्न-जगत के विविध प्रतीक मात्र हैं। उसके नाटकों को पढ़ते समय हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम किसी स्वप्निल संसार में विचरण कर रहे हैं।

भारत में रवीन्द्रनाथ टैगोर मैटरलिंक की नाटकीय कला से प्रभावित हुये थे। हिन्दी में पहली बार मैटरलिंक का प्रभाव रवीन्द्रनाथ के माध्यम से ही आया। जयशंकर प्रसाद का 'कामना' नाटक रवीन्द्रनाथ और मैटरलिंक की की परम्परा में आता है। इसके उपरांत १९३० में डा० रामकुमार वर्मा ने अपना काव्यात्मक रूपक 'बादल की मृत्यु' मैटरलिंक के 'ब्ल्यू बर्ड' (Blue Bird) से प्रभावित होकर लिखा। इसी 'ब्ल्यू बर्ड' नाटक से प्रभावित होकर १९३६ में सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने प्रतीकात्मक नाटक 'ज्योत्सना' की रचना की।

(ख) *ईसाई रहस्यवादियों का प्रतीकवाद*:—पश्चिम के ईसाई रहस्यवादी कवियों के प्रतीकवाद का भी आधुनिक हिन्दी कवियों पर किसी सीमा तक प्रभाव पड़ा है। ईसाई रहस्यवादियों के प्रतीकों का प्रभाव आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यवादी कविताओं के माध्यम से पड़ा है। ईसाई रहस्यवादी कवि अपने प्रतीक अधिकतर बाइबिल से लेते थे और यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ के प्रतीक-चयन पर भी बाइबिल

का प्रभाव स्पष्ट रूप से मिलता है।[१३] आधुनिक हिन्दी की रहस्यवादी कविता में भी बाइबिल में प्रयुक्त किये गये प्रतीकों की बहुधा प्रतिध्वनि मिलती है।

(घ) *फ्रांसीसी रहस्यवादी आंदोलन और डब्लू० बी० येट्स:*— रवीन्द्रनाथ पर और उनके माध्यम से हिन्दी कवियों पर सबसे अधिक प्रभाव फ्रांसीसी प्रतीकवाद का पड़ा। १६वीं शती की बॉडलेयर (Bavdlaire) से पाल वेलरी (Paul Valery) की फ्रांसीसी कविता ने एक नवीन काव्य-परिपाटी प्रस्तुत की। इन फ्रांसीसी प्रतीकवादियों ने युग के वैज्ञानिक यथार्थवाद के विरुद्ध आन्दोलन किया। वे सौन्दर्य के एक आदर्श जगत का निर्माण करना चाहते थे जहाँ मनुष्य की विकल आत्मा को शांति एवं विश्राम प्राप्त हो सके। अतः ये प्रतीकवादी एवं रहस्यवादी ढंग के सौन्दर्यवाद के पोषक थे। फ्रांसीसी प्रतीकवादी कविता इस प्रकार रहस्यवादी कविता थी जिसकी शैली उसके दर्शन के अनुरूप थी और जिसकी लोकप्रियता उसकी संगीतात्मकता और वैयक्तिकता के कारण थी।[१४]

डब्लू० बी० येट्स (W. B. Yeats)

इंगलैंड में प्रतीकवादी आन्दोलन का प्रवर्तक डब्लू० बी० येट्स नामक आयरलैंड का एक कवि था। येट्स ने फ्रांसीसी प्रतीकवादी मैलार्मे (Mallarme) के काव्यसिद्धांत को अपनाकर एक नवीन काव्य-विधान का निर्माण किया। प्रसिद्ध आलोचक बोवरा (Bowra) के अनुसार येट्स द्वारा प्रतिपादित नई कविता की कतिपय विशेषतायें इस प्रकार हैं—स्वप्न

---

[१३] दे० प्रियारंजन सेन, 'वेस्टर्न इन्फ्लूएंस इन बंगाली लिट्रेचर (१६३२) पृ० ३६३

The image of the bridegroom and the parable of talents are some times to be found in Rabindranath's poems.

[१४] सी० एम० बावरा 'द हेरीटेज़ आव सिम्बोलिज्म' (लंदन १६४७) पृ० १२

(Symbolism was) in origin a mystical kind of poetry whose teachnique depended on its metaphysics and whose popularity was due to the importance it gave to the poet's elf and the element of music in his art.

और जाग्रत अवस्था के बीच की स्थिति ऐसी कल्पना, गतिमान संगीतक्रम के स्थान पर अस्थिर ध्यानमग्न एवं सानुपातिक संगीतात्मकता, रचना-शैली की प्रधानता, तथा ऐसी पूर्णता जो विश्लेषण से परे होने पर भी प्रतिदिन एक नये अर्थ को जन्म देगी।[१६]

रवीन्द्रनाथ टैगोर डब्लू० बी० येट्स के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये थे, और फ्रांसीसी प्रतीकवाद से भी यथेष्ट रूप से प्रभावित हुये थे। यही कारण है कि आधुनिक बंगला काव्य की रहस्यवादी धारा पर फ्रांसीसी रहस्यवाद का प्रभाव है। हिन्दी में छायावाद की उत्पत्ति रीतियुगीन काव्य-परम्परा और द्विवेदी-युगीन काव्य की इतिवृत्तात्मकता के विरोध के कारण हुई। छायावाद किसी भी ऐसे काव्यादर्श को ग्रहण करने के लिये उद्यत था जो उसे काव्य के बाह्य आडम्बर से छुटकारा दे सके। अतः बँगला साहित्य के माध्यम से हिन्दी के छायावादी कवि भी फ्रांसीसी प्रतीकवाद और डब्लू० बी० येट्स के रहस्यवाद का अनुकरण करने लगे। कुछ कवियों ने बिना किसी माध्यम के सीधे भी डब्लू० बी० येट्स के काव्य सिद्धान्तों का अध्ययन किया।

(६) कुछ अन्य पाश्चात्य लेखक

आधुनिक हिन्दी काव्य का छायावाद-युग अपनी आत्मा में मुख्यतः रोमांटिक ही था। अतः हिन्दी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक लेखकों का ही विशेष प्रभाव पड़ा। रोमांटिक कवियों के अतिरिक्त यदि कोई हिन्दी लेखक किसी अन्य पाश्चात्य कवि की कृतियाँ पढ़ता था तो उस काव्य का वही रूप उसे प्रिय लगता था जिसमें रोमांटिक कल्पना का आवेग होता था।

अंग्रेजी लेखकों में से शेक्सपियर हिन्दी कवियों को सर्वाधिक प्रिय था। छायावाद-युग के आरंभ में शेक्सपियर के सुखान्त नाटक हिन्दी कवियों को विशेष प्रिय थे। सुमित्रानन्दन पन्त 'मिड समर्स नाइट ड्रीम' और 'टेम्पेस्ट'

---

[१६] वही, पृ० १८७

It will be marked by a return to imagination, to the state between waking and dreaming; it will cast out energetic rhythms and seek 'wavering' meditative, organic, rhythms, it will pay great attention to teachnique and empoly, if they are neceassary, even obscure and ungrammatical forms, but it must have the perfection that escapes analysis, the subtleties that have a new meaning everyday.

में वर्णित परियों के जगत से विशेष आकर्षित हुये। सुखान्त नाटकों में 'ऐज़ यू लाइक इट', 'ट्वेल्थ नाइट' और 'कामेडी आव एरर्स' भी उनके प्रिय नाटक थे। [१६] निराला भी शेक्सपियर के भक्त हैं और उन्हें शेक्सपियर की सॉनेट्स बहुत प्रिय हैं। [१७]

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्त्तन के कवियों ने छायावादी कवियों को विशेष प्रेरणा दी। सुमित्रानन्दन पन्त और इलाचन्द्र जोशी के रोमांटिक कवियों के प्रति प्रेम के विषय में हम पहले कह चुके हैं। निराला को भी रोमांटिक कवियों से प्रेम है। शेली की 'अलास्टर' (Alastor) नामक कविता पुस्तक की निजी प्रति में निराला जी ने प्रत्येक पृष्ठ के हाशिये को अर्थ से रँगा है। [१८] रामकुमार ने अपने कवि-जीवन के प्रारंभिक काल में पालग्रेव की 'गोल्डेन-ट्रेजरी' को आदि से अन्त तक बार-बार पढ़ा था। ब्लेक, वर्ड्सवर्थ शेली, बायरन और कीट्स उनके अंग्रेजी के प्रिय लेखक थे। वे कहते हैं कि 'रूप-राशि' के रचना काल में उन्हें बायरन और कीट्स की कविता बहुत प्रिय लगती थी। इनके काव्य की ऐन्द्रियता (Sensuousness) और भोगवादिता (Voluptuousness) ने उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। किन्तु इन दोनों कवियों में कीट्स उन्हें अधिक प्रिय था और उसकी 'नाइटिंगेल', 'ला बेल डेम सेन्स मर्सी', 'ब्राइट स्टार' आदि अनेक कविताओं ने उनकी छायावादी कविता पर प्रभाव डाला। शेली के काव्य में उन्हें उसकी 'वेस्टविन्ड' कविता अधिक प्रिय लगी। वर्ड्सवर्थ की 'इम्मार्टेलिटी ओड' उन्हें अत्यन्त प्रिय लगने वाली कविताओं में से एक थी। [१९] श्री हरवंशराय 'बच्चन' को भी अंग्रेजी लेखकों में ब्लेक, वर्ड्सवर्थ शेली और स्विनबर्न ही प्रिय लगे। [२०] डन (Donne) और डब्लू० बी० येट्स उनके अन्य प्रिय पाश्चात्य लेखक हैं। [२१]

---

[१६] दे० परिशिष्ट (ङ), सुमित्रानन्दन पन्त के साथ वार्ता, २ मार्च १९५१

[१७] रामविलास शर्मा, निराला (बम्बई, १९४८) पृ० २८

[१८] वही, पृ० २७

[१९] दे० परिशिष्ट (घ), रामकुमार वर्मा से वार्ता, तिथि २ मार्च १९५१

[२०] दे० परिशिष्ट (ग), बच्चन का पत्र, जनवरी १०, १९५२

[२१] वही।

उमर खय्याम की रुबाइयों के फिट्ज़रेल्ड द्वारा अनुवाद ने भी छायावादी कवियों को विशेषकर 'बच्चन' को प्रभावित किया। 'बच्चन' के ऊपर यह प्रभाव उनके कवि-जीवन के आरंभिक काल तक ही सीमित रहा।

वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) के मुक्त छंद (Free verse) ने आधुनिक अंग्रेजी काव्य के बाह्य स्वरूप में क्रांति उपस्थिति कर दी थी। इनका भी हिन्दी के कवियों पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

अंग्रेज़ी के आधुनिक लेखकों में शा (Shaw), वाल्टर डि ला मेयर (Walter de la Mare)' सिटवेल्स (Sitwells) और जार्जियन्स (Georgians) हिन्दी लेखकों को विशेष रुचिकर रहे हैं। सुमित्रानन्दन पन्त को शॉ द्वारा लिखित 'बैक टु मैथ्युसला' नाटक बहुत अच्छा लगा। उन्हें 'सेंट जोन' भी प्रिय लगा है। पन्त को सिटवेल्स भी सुन्दर लगते हैं—विशेषतया ऐडिथ सिटवेल (Edith Sitwell) की कविता उन्हें अधिक प्रिय है। किन्तु इन सब कवियों में वाल्टर डि ला मेयर का उन पर सबसे गहरा प्रभाव पड़ा है।[२३] निराला ने भी शॉ का अध्ययन किया है। उनके 'गेटिंग मेरिड' नामक नाटक की प्रति पर भी 'अलास्टर' की भाँति निराला जी ने निशान लगाये हैं।[२४]

अतः हम देखते हैं कि दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी कविता के विकास में पश्चिम के अनेक साहित्यिक प्रभाव क्रियाशील रहे हैं।

(स) हिन्दी काव्य में रोमांटिक विद्रोह का आरंभिक स्वरूप

हिन्दी काव्य में रोमांटिक विद्रोह जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा १९१० में 'इन्दु' के प्रकाशन के साथ प्रारम्भ होता है। इस पत्रिका के प्रथम अंक में 'प्रसाद' ने लिखा था—"**साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता और उसके लिये कोई विधि या निबन्धन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतंत्र-प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है।**" अतः 'प्रसाद'

---

[२२] वही।

[२३] दे० परिशिष्ट क सुमित्रानन्दन पन्त से वार्ता, २ मार्च १९५१

[२४] राम विलास शर्मा, 'निराला,' पृ० २७

सच्चे साहित्य के सृजन के लिये व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति आवश्यक समझते थे। 'प्रसाद' का यह कथन अंग्रेज़ी काव्य के रोमांटिक आदर्श को प्रतिध्वनित करता हुआ प्रतीत होता है।

प्रसाद ने शीघ्र ही अपने विचार को कार्यान्वित किया। 'झरना' (१९१८, द्वितीय संस्करण १९२७), 'आँसू' (१९३१), 'लहर' (१९३६) और 'कामायनी' (१९३७) उनकी काव्यगत प्रतिभा के विकास की ओर इंगित करती हैं। इन सब कृतियों में हम द्विवेदी-युगीन सुधारवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया पाते हैं। 'प्रसाद' ने देखा कि आर्यसमाज और अन्य सुधारवादी आन्दोलनों की कट्टर धार्मिकता के कारण कवियों की सौन्दर्यानुभूति बहुत कुछ विनष्ट हो चुकी है और मस्तिष्क के शुष्क विचारों ने हृदय की सरस भावनाओं को लुप्त कर दिया है। अतः उन्होंने 'कामायनी' की रचना की जिसमें मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय पक्ष को कहीं अधिक महत्व दिया गया है और जिसे हम 'प्रसाद' की काव्य-प्रतिभा का चरम बिन्दु कह सकते हैं।

काव्य की इस नई दिशा में पहला प्रयास प्रसादजी ने किया, किन्तु हिन्दी छायावाद के मुख्य प्रवर्तक सुमित्रानन्दन पन्त हैं जिन्होंने अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य का गहन अध्ययन किया है। उनके 'पल्लव' की भूमिका को हिन्दी छायावादी काव्य का 'मेनीफेस्टो' कहा जा सकता है। उन्होंने ब्रज भाषा और रीतिकालीन काव्य-परंपरा के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। वे रीतिकालीन काव्य की भाषा और शैली तथा उसके विषयों और उपादानों के विषय में कहते हैं:—

> "भाव और भाषा का ऐसा शुक-प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एक-स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरा-वृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रांत उपल-वृष्टि क्या संसार के किसी और साहित्य में मिल सकती है।······आँख की उपमा? खंजन, मृग, कन्ज, मीन इत्यादि; होठों की? किसलय, प्रवाल, लाल, लाख इत्यादि; और इन धुरंधर साहित्याचार्यों की? शुक दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि।"[२९]

पन्त जी ने आगे चल कर कहा कि "हम ब्रज की जीर्ण-शीर्ण छिद्रों से भरी, पुरानी चोली नहीं चाहते, उसकी संकीर्ण कारा में बन्दी

---

[२९] सुमित्रानंदन पंत, 'पल्लव' (इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९२६) पृ० ८

हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।"[२६] अतः पन्त ने काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली को ब्रज भाषा के स्थान पर अपनाया। उन्होंने खड़ी बोली में 'आधुनिक इच्छाओं के अंकुर', 'भूत की चेतावनी' और 'भविष्य की आशा' का दर्शन किया।[२७] उन्होंने कविता के लिये 'चित्र भाषा' और 'सस्वर' शब्दों की आवश्यकता समझी।[२८] इसके अतिरिक्त वे अलंकारों का प्रयोग भाषा की सजावट के लिये नहीं, वरन् भाव की अभिव्यक्ति के लिये चाहते थे।[२९] वे भाव तथा भाषा का पूर्ण रूप से सामंजस्य चाहते थे और इसी-लिये वे हिन्दी काव्य में मुक्त छंद के प्रयोग के समर्थक थे।[३०] पन्तजी काव्य की रचना में व्यक्तित्व की प्रधानता भी चाहते थे; अतएव हम कह सकते हैं कि उनका काव्य का आदर्श अंग्रेज़ी रोमांटिक प्रतिवर्तन के काव्यादर्श के अनुरूप था।

पन्त ने इस प्रकार हिन्दी कविता में नूतन क्रांति का सूत्रपात किया। द्विवेदी-युग में खड़ी बोली काव्यात्मक अनुभूति और कल्पना की अनवरुद्ध अभिव्यक्ति करने में असमर्थ रही थी। किन्तु पन्त ने खड़ी बोली को भाव की सफल एवं पूर्णाभिव्यक्ति के उपयुक्त सिद्ध कर दिया। उन्होंने शब्दों को, व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करके अपनी रुचि के अनुसार सस्वर और चित्रात्मक बनाने का प्रयत्न किया और इस प्रकार खड़ी बोली में काव्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिये एक सरल माध्यम ढूँढ़ निकाला।

जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, पन्त ने न केवल काव्य--भाषा ही में क्रान्ति उपस्थित की, वरन् काव्य के विषयों और उपादानों में भी महत्वपूर्ण परि-वर्तन किये। उनके पहले तीन काव्य-ग्रंथ—'वीणा', 'पल्लव' और 'गुंजन' इस नवीन काव्य-शैली के सुन्दर आदर्श हैं तथा छायावादी कविता की सर्वोत्तम कृतियों में से हैं।

छायावादी कविता के दूसरे प्रवर्तक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी काव्य की नियमबद्धता के प्रति विद्रोह किया। उन्होंने काव्य को 'बंधनमय

---

[२६] वही, पृ० ११

[२७] वही, पृ० १२

[२८] वही, पृ० १७

[२९] वही, पृ० १८

[३०] वही, पृ० ३२

'छंदों की छोटी राह' छोड़ने के लिये प्रोत्साहन दिया।[३१] साथ ही उन्होंने खड़ी बोली की काव्य-भाषा को संगीतात्मक बनाया तथा 'गीतिका' की भूमिका में अंग्रेजी संगीत के ऋण को स्वीकार किया।[३२] निराला ने भारत पर पश्चिम के प्रभाव का भी विवेचन किया है। उन्होंने कहा कि इस युग में जब प्रत्येक स्थान पर विविध संस्कृतियों का आदान-प्रदान हो रहा है, साहित्य के लिये भी अन्यान्य साहित्य के गुणों का ग्रहण करना आवश्यक है।[३३] वे कहते हैं कि यद्यपि उन्हें किसी पश्चिमीय देश में रहने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु उन्होंने कलकत्ते जैसे स्थान मे, जहाँ कोई भी विश्व के साहित्य अथवा विचारधारा की नवीन प्रवृत्तियों से अपरचित नहीं रह सकता, पर्याप्त समय तक रहकर नवीन प्रभावों को ग्रहण किया है। उनका मत है कि खड़ी बोली का साहित्य विश्व साहित्य की प्रवृत्तियों से प्रभावित हुये बिना उन्नति नहीं कर सकता।[३४]

अतएव निराला ने रीतियुगीन छन्द-विधान का बहिष्कार किया और 'आधुनिक बँगला साहित्य(जो स्वयं अंग्रेजी से प्रभावित था)तथा अंग्रेजी साहित्य की भावधारा और शैली को अपनाया।

महादेवी वर्मा ने भी हिन्दी के रोमांटिक आन्दोलन में महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने काव्य-संबंधी अपने विचार अपनी काव्य-कृतियों की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किये है। उनके अनुसार दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी कविता के लिये रीतियुगीन काव्य के बन्धनों का परित्याग स्वाभाविक और आवश्यक ही था: **"मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वछंद घूमते-घूमते थक कर वह अपने लिये सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में सारी शक्ति लगा देता है।"**[३५] वे कहती हैं कि **"उसके (छायावाद के जन्म से) प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच गये थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा**

---

[३१] प्रिये छोड़ बंधनमय छंदों की छोटी राह
गज गामिनि यह पथ तेरा संकीर्ण कंटकाकीर्ण।

[३२] 'निराला', 'गीतिका', (३ रा सं०, सं० २००५) भूमिका, पृ० ५

[३३] वही

[३४] वही, पृ० ६

[३५] महादेवी वर्मा, 'यामा' (३रा संस्करण, सं० २००८) पृ० ११

जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही लगता है।" [३६]

महादेवीजी ने आधुनिक हिन्दी काव्य की सौंदर्य भावना पर भी प्रकाश डाला है। वे कहती हैं कि "स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृत्तियों से थके और कविता की परम्परागत नियम-शृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं में बँधे स्थूल का न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर हुआ और न उसका रूढ़िगत भाषा-आदर्श। उन्हें नवीन रूप रेखाओं की आवश्यकता थी जो छायावाद में पूर्ण हुई।" [३७] इस प्रकार महादेवी ने स्थूल सौन्दर्य के स्थान पर सूक्ष्म सौंदर्य की स्थापना की और उसी के अनुरूप छायावादी काव्य में नवीन रूप-रेखाओं का विकास हुआ। उन्होंने अपने मत की पुष्टि आगे चल कर इस प्रकार की है: "खड़ी बोली का सौंदर्यहीन इतिवृत्ति दीर्घकाल से हमारे ऊपर वासनोन्मुख स्थूल सौन्दर्य के अधिकार को हिला भी न सकता था। परन्तु छायावाद ने उसे हटाकर अपने संपूर्ण प्राणावेग से प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौंदर्य को असंख्य रंग रूपों में अपनी भावना द्वारा सजीव करके उपस्थित किया। मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को उसके समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकेंगी।" [३८]

महादेवी के अनुसार छायावाद एक प्रकार का सर्वात्मवाद (Pantheism) है। छायावादी कवि प्रकृति के एक-एक परमाणु में एक अलौकिक सत्ता का दर्शन करता है—उसे ससीम और असीम में कोई भेद नहीं दिखलाई पड़ता। [३९]

---

[३६] वही, पृ० ११-१२

[३७] महादेवी वर्मा, 'आधुनिक कवि' १, (चतुर्थ सं०) पृ० १०

[३८] वही, पृ० १४

[३९] महादेवी वर्मा, 'यामा', पृ० ८

"जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया था तब प्रकृति का एक एक अंग एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।"

छायावाद की इस रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण बहुधा उसमें अवसाद की हलकी-सी रेखा आ जाती है। अतएव छायावाद में करुणा की भावना भी निहित रहती है। किसी अलौकिक सत्ता की खोज में आत्मा की विकलता और उद्विग्नता छायावादी काव्य में पीड़ा और दुःख का भाव भर देती है।

अतः महादेवी के अनुसार छायावादी काव्य की विशेषतायें सूत्र रूप में इस प्रकार हैं:

(१) छायावादी साहित्य व्यक्तित्व-प्रधान साहित्य है जिसमें कवि की अनुभूतियों और उसके अतिरिक्त अनुभव की अभिव्यक्ति होती है।

(२) छायावाद सूक्ष्म सौन्दर्य का स्थूल सौन्दर्य के प्रति विद्रोह है।

(३) छायावाद एक प्रकार का सर्वात्मवाद है।

(४) रहस्यवाद के रूप में छायावाद आत्मा की परमात्मा के लिये खोज है जिसके फलस्वरूप छायावाद में करुणा का तत्व भी अन्तर्हित रहता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावाद की ये विशेषतायें अंग्रेजी रोमांटिसिज्म की विशेषताओं से बहुत साम्य रखती हैं।

डा० रामकुमार वर्मा ने भी रोमांटिक आदर्श में अपनी आस्था प्रकट की है। उनके अनुसार "**आत्मा की गूढ़ और छिपी हुई सौंदर्य-राशि का भावना के आलोक से प्रकाशित हो उठना ही कविता है**'।"[४०] वे करुणा को काव्य का एक आवश्यक तत्व मानते हैं। प्रेम और करुणा उनके लिये सहोदर की भाँति हैं।[४१]

अतः छायावाद हिन्दी कविता में एक निश्चित कार्यक्रम लेकर आया था। अपने काव्यादर्श में उसे अंग्रेजी साहित्य के रोमांटिक आन्दोलन से विशेष प्रेरणा मिली यहाँ तक कि छायावाद ने उक्त आन्दोलन की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों को ग्रहण किया।

(द) काव्य के विषयों और उपादानों पर प्रभाव : प्रवृत्तियाँ

दो महायुद्धों के बीच के समय की हिन्दी कविता में एक विशेष बात यह है कि उसमें अनेक वादों के होते हुये भी हमें एकरसता मिलती है। हमने इस विशेष काल की हिन्दी कविता में समान रूप से पाये जाने वाले तत्व को

---

[४०] डा० रामकुमार वर्मा, 'आधुनिक कवि' ३ (द्वितीय संस्करण) पृ० ५

[४१] वही, पृ० १३

'रोमांटिसिज्म' अथवा छायावाद का नाम दिया है। यहाँ पर यह ध्यान रहे कि 'रोमांटिसिज्म' शब्द का प्रयोग एक व्यापक अर्थ में किया गया है, और किसी भी व्यक्तित्व प्रधान साहित्य को हम निःसंकोच रोमांटिक साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ पर हम छायावाद की उन मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन करेंगे जो अंग्रेजी साहित्य अथवा विचारधारा से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुईं थी।

(१) सौन्दर्यवाद (Aestheticism)

हिन्दी छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्ति सौंदर्य-दर्शन रही है। अंग्रेजी काव्य में इस सौन्दर्यवादी प्रवृत्ति का दर्शन हमें कीट्स, शेली, स्विनबर्न आदि के काव्य में होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, जिन पर इन सौन्दर्यवादी कवियों का गहरा प्रभाव पड़ा है, आधुनिक भारतीय साहित्य में एक प्रकार से सौंदर्यवाद के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। छायावादी हिन्दी कविता की सौंदर्यानुभूति पर इन कवियों का कितना प्रभाव पड़ा है, हम यहाँ पर इस विषय का अध्ययन करेंगे।

(क) *प्रकृति-सौन्दर्य*:—हम देख चुके हैं कि आधुनिक काल के हिन्दी कवियों को प्रकृति-प्रेम की प्रेरणा आरम्भ में अंग्रेजी कवियों से ही प्राप्त हुई थी। हिन्दी में प्रकृति-प्रेम पर कवितायें लिखने का सूत्रपात श्रीधर पाठक ने किया था जिन्होंने गोल्डस्मिथ के सर्वोत्तम काव्य-ग्रंथों ('ट्रैवेलर', 'हर्मिट' 'डेज़र्टेड विलेज') के हिन्दी अनुवाद किये। पाठक द्वारा चलाई हुई परम्परा का निर्वाह छायावाद-युग के कवियों ने भी किया। किन्तु इस युग की नई पीढ़ी के कवियों ने अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्तन की कविता का भी अध्ययन किया था जिसके कारण उनके प्रकृति-चित्रण में और भी अधिक सौन्दर्य की वृद्धि हुई।

जैसे पहले कहा जा चुका है, आधुनिक हिन्दी काव्य में सौंदर्यवाद बहुत कुछ रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्य के माध्यम से आया। किन्तु प्रकृति चित्रण के इस विशेष क्षेत्र में हमें रवीन्द्रनाथ की परिपक्व कला का प्रभाव न मिलकर उनकी प्रारंभिक काव्य कृतियों का प्रभाव मिलता है। यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि प्रारंभ में रवीन्द्रनाथ पर अंग्रेजी के उन कवियों का प्रभाव पड़ा जो काव्य-दोषों को मिटा देने में नितांत असमर्थ थे। कीट्स और

शेली सम्भवतः इसके अपवाद थे, परन्तु इस काल में रवीन्द्रनाथ को कीट्स की 'एंडीमियन' (Endymion) प्रिय थी जिसमें बहुत कुछ रवीन्द्रनाथ की प्रारंभिक कला का ही प्रतिबिम्ब मिलता है। शेली की कृतियों में भी उन्हें उसकी उत्कृष्ट रचनायें अभी प्रिय न थीं—'वेस्टविंड' (Westwind) वाले शेली का प्रभाव उन पर बाद में पड़ा।[४२]

रवीन्द्रनाथ की इसी प्रारम्भिक कविता ने पन्त और 'प्रसाद' इत्यादि हिन्दी कवियों के प्रकृति चित्रण पर प्रभाव डाला है।

प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण करने वाले छायावादी कवियों में सबसे पहले जयशंकर 'प्रसाद' का नाम आता है। यह कहना उचित न होगा कि 'प्रसाद' पर अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का सीधा प्रभाव पड़ा। हाँ, उन्होंने उस समय के वातावरण-संबंधी प्रभावों और बँगला की नई रोमांटिक कविता से प्रेरणा अवश्य प्राप्त की। उन्होंने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्र, विशेषकर उन व्यक्तियों के लिए उपस्थित किये हैं जो इस मशीनयुग में प्रकृति के सौन्दर्य के मोहक सुख से वञ्चित रह जाते हैं। अपनी ब्रजभाषा की प्रारम्भिक रचनाओं में भी 'प्रसाद' ने प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य का गान किया है। 'चित्राधार' के चतुर्थ भाग अर्थात् 'पराग' में उन्होंने प्रकृति के अनेक मनोरम दृश्य अंकित किए हैं। तत्पश्चात् 'कानन कुसुम' में प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन मिलता है। उनके काव्य-संग्रह 'झरना' में उनकी कला विकसित हो चुकी थी। वह झरने को 'कठिन गिरि विदारित' करते देख कर आश्चर्य में पड़ जाते हैं।

मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी। झरना, पृ० १५

---

[४२] ई० जे० टामसन; 'टैगोर, पोइट एण्ड ड्रेमेटिस्ट' (आक्सफर्ड यू० प्रेस, १९२६) पृ० २६४

He was influenced chiefly by just these of our (English) poets who could help him least to castigate his own faults. Keats world be an exception to this statement, if it were not that in the Keats of 'Endymion' there is only too much of that is like the weaker Ravindranath. And at first it was the poorer Shelley that ruled him, the Shelley of 'Westwind' was a later influence.

किन्तु प्रकृति के प्रति उत्कट् प्रेम के दर्शन हमें सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में होते हैं। पन्त के लिये प्रकृति सौन्दर्य की वस्तु है। वे प्रकृति के उग्र रूप के उपासक नहीं हैं। वे कहते हैं:—

> साधारणतर, प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है, प्रकृति का उग्ररूप मुझे कम रुचता है। यदि मैं संघर्ष प्रिय अथवा निराशावादी होता तो 'Nature red in tooth and claw' वाला कठोर रूप, जो जीवविज्ञान का सत्य है, मुझे अपनी ओर अधिक खींचता।"[४३]

कवि सुमित्रानंदन पंत मूलतः सौन्दर्यवादी हैं। अपने बाल्यकाल ही में सुदूर क्षितिज तक फैली कूर्माचल की पर्वत श्रेणियों ने उन्हें अपने नीरव संमोहन से विभोर कर दिया था।[४४]

'वीणा'–काल में पन्त को प्रकृति की छोटी-छोटी वस्तुओं के सौन्दर्य ने आकर्षित किया था:

> "मेरी प्रारंभिक रचनायें 'वीणा' नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धर कर चपल मुखुर

---

[४३] 'आधुनिक कवि' २, "पर्यालोचन", पृ० ३

[४४] वही पृ० १–२

> "कविता करने की प्रेरणा मुझे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल, कूर्माचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमालय को धारण की हुई हैं, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं!"

नूपुर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही है। समस्त काव्य-पट प्राकृतिक सुन्दरता के धूपछांह से बुना हुआ है। चिड़ियाँ, भौंरे और झिल्लियाँ, झरने, लहरें इत्यादि जैसे मेरे बाल-कल्पना के छायावन में मिलकर वाद्यतरंग बजाते रहे हैं।"[४९]

पेड़ों की छाया, नर्तन करती हुई लहरें, इन्द्रधनुषी रंग आदि ने कवि-कल्पना पर संमोहन का जादू कर दिया है। उसे इन प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य से भी अधिक प्रिय हैं :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

('आधुनिक कवि', २, पृ० १)

पंत जी की 'प्रथम रश्मि' कविता में उनकी सौन्दर्यवादी प्रवृत्ति की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। ऊषाकाल में सूर्य की प्रथम रश्मि के आते ही एक बाल-विहगिनी अपना गाना गाने लगती है। कवि आश्चर्य चकित है कि इस बाल-विहंगिनी ने प्रथम रश्मि का आना किस प्रकार जान लिया, और उसने अपना मधुर गीत कहाँ से सीखा :

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि कैसे तूने पहिचाना ?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि पाया तूने यह गाना ?

(आधुनिक कवि', २, पृ० ३)

पंत में प्रकृति-सौन्दर्य के लिए एक बालक की-सी उत्सुकता है। 'उच्छ्वास' में जहाँ उन्होंने 'पावस ऋतु' में 'पर्वतप्रदेश' में प्रकृति के 'पल-पल परिवर्तित' होने वाले वेश का वर्णन किया है, वहाँ वे एक सरल बालिका के विषय में कहते हैं जो इस पर्वत को 'बादल-घर' समझ बैठी थी :

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी;

('आधुनिक कवि', २, पृ० १४)

समस्त बाह्य-प्रकृति पन्त के लिए उनके चितेरे हृदय का चित्र बनी थी।

---

[४९] सुमित्रानन्दन पन्त "मैं और मेरी कला", 'संगम' (मई १९५०) पृ० १०

पन्त का यह प्रकृति-प्रेम वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-प्रेम की प्राथमिक दशा के अनुरूप है जब कि समस्त प्रकृति के सौन्दर्य ने उसे आत्म-विभोर कर दिया था :

For nature then......
To me was all in all, I cannot paint
What then I was. The sounding cataract
Haunted me like a passion : the tall rock,
The mountain and the deep and gloomy wood,
Their colours and their forms, were then to me
An appetite. ('Tintern Abbey')

'बादल'[४६] पन्त के प्रकृति-प्रेम की एक सुन्दर कविता है। सम्पूर्ण कविता छन्दों की एक सुन्दर लड़ी है जिसमें अनेक रूपकों और उपमाओं में बादल का वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं पर चित्र अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ बादल परियों के बच्चों की भाँति सीप ऐसे पंख खोले हुए इन्दु के सुकुमार कर पकड़कर ज्योत्स्ना में तैरते दिखाये गये हैं। इस कविता में ऐसे ही अनेक वर्णन हमें प्राप्त होते हैं। जैसा डा० नगेन्द्र ने अपनी 'सुमित्रा-नन्दन पन्त' पुस्तक में कहा है पन्त की इस 'बादल' कविता और शैली की 'द क्लाउड' (The Cloud) कविता में बहुत साम्य है। दोनों ही प्रथम पुरुष में लिखी गई हैं और हिन्दी कविता की बहुत-सी पंक्तियाँ हमें अनायास ही इस अंग्रेजी कविता का स्मरण करा देती हैं।

पन्त की 'एक तारा' और 'नौका विहार' कवितायें भी उनके प्रकृति-प्रेम की द्योतक हैं। 'एक तारा' की प्रारम्भिक पंक्तियों में ग्राम की नीरव संध्या का वर्णन[४७] उनकी सौन्दर्यप्रियता का अच्छा उदाहरण है। किन्तु पन्त स्थिर सौन्दर्य ही के उपासक नहीं हैं; वे चल दृश्यों के भी अत्यंत मनोरम चित्र देते हैं। अस्तु 'नौका विहार'[४८] में नौका मन्थर गति से ज्योत्स्ना में जल-संतरण करती चित्रित की गई है। इन्दु की रश्मियाँ जल चाँदी के साँपों सी 'रलमल' नाचती हुई प्रतीत होती हैं। शशि और तारों के जल पर असंख्य प्रतिबिम्ब लहरों की लतिकाओं में खिले प्रसूनों का भाँति लगते हैं। कविता का संगीत भी नौका की गति के अनुरूप ही है।

---

[४६] 'आधुनिक कवि', २, पृ० २३-२८
[४७] वही, पृ० ५३
[४८] वही, पृ० ५६-५८

'प्रसाद' और पन्त के अतिरिक्त महादेवी, 'निराला' और नरेन्द्र ने भी प्राकृतिक सौन्दर्य का स्वतन्त्र चित्रण किया है। महादेवी की काव्य कृतियाँ 'रश्मि', 'विहार', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', आदि—उनके प्रकृति-प्रेम की परिचायिका हैं। पंत की भाँति प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने उन्हें अधिक लुभाया है। उनकी 'रश्मि' कविता में सूर्य की प्रथम किरण के छूटते ही सृष्टि के कण-कण से मधुर गान फूट पड़ते हैं।

चुभते ही तेरा अरुण बान!
बहते कण-कण से फूट-फूट
मधु के निर्झर से मधुर गान!! ('यामा', पृ० ६६)

महादेवी, जो स्वयं भी चित्रकला प्रवीण हैं, अपने प्रकृति-चित्रण में एक सजीव कोमलता भर देती हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनकी 'बसन्तागमन' कविता में सारी प्रकृति में बसन्त के आने पर हर्ष के छा जाने का वर्णन है। लतायें प्रसूनों से भर जाती हैं, मलयानिल मन्द-मन्द गति से बहने लगता है, भौंरे अपने गुन-गुन गान में तल्लीन हैं और पृथ्वी पर स्वर्ण शस्य का आँचल लहराने लगता है:

सखि बसन्त आया
भरा हर्ष बन के मन
नवोत्कर्ष छाया...
स्वर्ण शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया। ('गीतिका', पृ० ५)

नरेन्द्र ने अपने काव्य-संग्रह 'पलाशबन' में प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक मनोरम चित्र दिये हैं। उनकी 'कूर्मांचल', 'कौसानी', 'रानीखेत की रात', 'चाँदनी' आदि कवितायें प्रकृति-चित्रण से भरी पड़ी हैं। 'कौसानी' में वे तुरंत वर्षा के उपरान्त पर्वत प्रदेश के सौंदर्य का वर्णन करते हैं। इन्द्रधनुष के हिम पर प्रतिबिम्ब पड़ने का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। वे 'कौसानी' की छवि देख कर अपनी सारी 'सीमायें' भूल जाते हैं।

मैं भूल गया निज सीमायें जिससे
वह छवि मिल गई मुझे। ('पलाशबन', पृ० ३७)

वर्ड्सवर्थ का हृदय भी इसी भाँति आकाश में इन्द्रधनुष देखकर आह्लाद से भर गया था!

प्रकृति के इन स्वतन्त्र वर्णनों के अतिरिक्त हम प्राकृतिक वस्तुओं के मानवीकरण की भी प्रवृत्ति पाते हैं। वस्तुतः इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण छाया-वाद की विशेषता रही है। विश्वम्भरनाथ 'मानव' हिन्दी छायावाद का प्रकृतिवाद से तादाम्य स्थापित करते हैं। वे छायावाद के विषय में निम्न-लिखित परिणामों पर पहुँचे हैं:—

(१) छायावाद का संबन्ध प्रकृति के जीवन से है।

(२) इसमें प्रकृति को एक चेतन और स्वतन्त्र सत्ता के रूप में देखा गया है।

(३) मानव जीवन की समस्त भावनाओं और अनुभूतियों की प्रकृति में अभिव्यक्ति होती है।[४९]

जैसा पीछे कहा जा चुका है रोमांटिक कवि, जो कि स्वभावतः सौन्दर्यवादी होता है, प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं का मानवीकरण करता है और उनमें अपनी ही अभिव्यक्ति पाता है। प्रकृति का इस प्रकार का चित्रण अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्तन के काव्य की मुख्य विशेषता है। अतः हिन्दी में इस प्रकार के प्रकृतिचित्रण की प्रेरणा किसी न किसी रूप में अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य से अवश्य आई।

जयशंकर 'प्रसाद' की 'झरना' कविता-पुस्तक छायावाद की नवीन शैली में लिखी हुई पहिली पुस्तक मानी जाती है। इस संग्रह की पहिली कविता 'परिचय' ही में 'प्रसाद' ने प्रकृति के जड़ पदार्थों को सचेतन रूप में देखा है। वे वर्ड्सवर्थ की भाँति इस सचेतन प्रकृति में प्रेम के आदान-प्रदान का दर्शन करते हैं। समस्त प्रकृति उन्हें प्रेम के पाश में बँधी हुई प्रतीत होती है:

उषा का प्राची में आभास
सरोरुह का सर बीच विकास
कौन परिचय था? क्या संबंध?…
राग से अरुण, घुला मकरंद
मिला परिमल से जो सानंद
वही परिचय था, वह सबंध
"प्रेम का मेरा तेरा छंद।" ('झरना' पृ० ११)

---

[४९]शचीरानी गुर्टू (सम्पादिका) 'सुमित्रानन्दन पन्त', "छायावाद और रहस्यवाद" लेखक, विश्वम्भरनाथ 'मानव', पृ० १८४

अपनी दूसरी कविता 'किरण' में 'प्रसाद' किरण को एक प्रेयसी के रूप में देखते हैं जो कि अपने प्रियतम के अनुराग में रँगी हुई है :

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज
रँगी हो तुम किसके अनुराग ! ('झरना', पृ० २८)

'प्रसाद' के प्राकृतिक पदार्थों के मानवीकरण के अनेक सुन्दर उदाहरण हमें उनके कविता-संग्रह 'लहर' में मिलेंगे। उषा उन्हें एक रूपसी की भाँति दिखाई पड़ती है जो अम्बर के पनघट पर तारों के घट को डुबो रही है :

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी। ('लहर', पृ० १६)

किन्तु सचेतन प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हमें पन्त, 'निराला' और महादेवी में मिलते हैं। पंत ने प्रकृति को मानव से स्वतंत्र सचेतन सत्ता के रूप में देखा है :

"प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है :

'उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही माँ
वह अपनी वय बाली में'—

पंक्तियाँ मेरी इस धारणा की द्योतक हैं।"[६०]

वड्सवर्थ की भाँति पंत भी प्रकृति में हर्ष के भाव का अनुभव करते हैं। वड्सवर्थ के चारों ओर विहग फुदक रहे थे, किन्तु वह उनके विचार जानने में असमर्थ था। तथापि उनके हाव-भाव से उनके आनंद का सहज उद्रेक स्पष्ट भासित हो रहा था।

For the least motion that they made
It seemed a thrill of pleasure.

यहाँ पर वड्सवर्थ के अनुसार विहगों का हर्ष स्वयं उनका ही हर्ष था, कवि का नहीं। इसी प्रकार पंत भी लहरों को अपने ही सुख में 'चिर चंचल' पाते हैं :

---

[६०] 'आधुनिक कवि', २, पर्यालोचन, पृ० ३

अपने ही सुख में चिर चंचल
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल ! (पल्लविनी, पृ० १११)

पंत को विहगों, तितलियों और भौरों से विशेष प्रेम है और वे उन पर मानवीय भावनाओं का आरोप करते हैं। वे विजन बन में विहग बाला का गान सुन कर सोचते हैं कि उसने कवि का खोया गान कहीं से पा लिया है, और वे उससे इसे लौटा देने के लिए प्रार्थना करते हैं :

विजन बन में तुमने सुकुमारि
कहाँ पाया यह मेरा गान ?...
मुझे लौटा दो विहग कुमारि
सजल मेरा सोने सा गान ! (पल्लविनी पृ० ८७-८८)

पंत के प्रकृति-काव्य में शेली का प्रभाव भी है। शेली ने 'स्काईलार्क' से अपनी प्रसन्नता सिखाने के लिये प्रार्थना की थी जिससे वह भी मधुर गीतों की रचना कर सके :

Teach me half the gladness
That thy brain must know,
Such harmonious madness
From my lips would flow.

इसी प्रकार पंत भी कहते हैं :

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपना मधुमय गान !

शेली ने 'ओड टू वेस्टविंड' में पश्चिमी प्रभंजन से अपनी भावनायें समस्त विश्व में बिखेर देने के लिए प्रार्थना की थी।

Drive my dead thoughts over the universe
Like withered leaves to quicken a new birth.

पंत भी विहग से कवि के मनोहर गीत घर-घर और बन-बन में फैलाने के लिए कहते हैं :

कल कंठनि ! निज कलरव में भर
अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ बन बन घर घर
नाचें तृण तरु पात। (पल्लविनी, पृ० ८६)

पंत पर सम्भवतः वर्ड्सवर्थ का भी प्रभाव पड़ा है और वे उसकी ही भाँति प्रकृति में प्रेम के आदान-प्रदान का व्यापार भी देखते हैं। उदाहरणार्थ वे लहर और झकोर दोनों को प्रेम के स्वर्गीय पाश में बँधा देखते हैं :

लहर—हम जल अप्सरि
झकोर—हम वर नभ चर
दोनों—है प्रेम पाश स्वर्गीय अमर ! (पल्लविनी पृ० ११३)

पंत की प्रकृति के मानवीकरण की दो सर्वोत्तम कवितायें उनकी 'चाँदनी'[६१] और 'संध्या'[६२] हैं। संध्या को कवि ने एक अप्सरा के रूप में देखा है जो व्योम से मंथर गति से चुपचाप अपने सुनहले केशों को फैलाये हुये उतर रही है। अनिल से पुलकित संध्या का लोल स्वर्णांचल, खग-कुल 'रोल' के रूप में उनकी नूपुर ध्वनि, जलदों के सीप के समान खुले उसके पंख आदि का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है। 'चाँदनी में पन्त ने ज्योत्स्ना के विविध रूपों का वर्णन किया है। कभी वह सरिता के कूल पर सोई हुई नारी के रूप में है—स्तब्ध समीरण उसकी साँसें और लघु-लघु लहरों की गति उसका उर-स्पंदन है। कभी वह अपने ही सौन्दर्य में छिपी हुई शिखर पर खड़ी है और उसकी सुन्दर छवि सागर की लहर-लहर पर नाच रही है।

निराला ने भी प्रकृति के मानवीकरण के अच्छे उदाहरण दिये हैं। 'जूही की कली'[६३] में उन्होंने जूही को नायिका के रूप में देखा है जिसका प्रेमी मलयानिल उससे मिलने आता है। 'संध्या सुन्दरी' में निराला ने संध्या को परी के रूप में देखा है जो दिवसावसान के समय मेघमय आकाश से धीरे-धीरे उतर रही है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे, धीरे, धीरे। (परिमल, पृ० १३५)

---

[६१]सुमित्रानंदन पन्त, 'पल्लविनी' (द्वितीय संस्करण, सं० २००१) पृ० ६५

[६२]वही, पृ० ६८–६६

[६३]'निराला', 'परिमल' (चतुर्थ सं०, संवत् २००५) पृ० १६१–१६२

महादेवी ने भी प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में देखा है। उन्होंने इस चेतन प्रकृति के कहीं-कहीं पर विराट् चित्र उपस्थित किये हैं। वे 'बसंत रजनी' को क्षितिज पर से उतरने के लिए कहती हैं—उसकी वेणी तारकमयी है, शीशफूल शशि का है और श्वेत घनों का अवगुंठन है :

तारकमय नव वेणी बंधन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन⋯⋯

धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ बसंत रजनी। (यामा पृ० १३०)

एक अन्य कविता में उन्होंने प्रकृति को अप्सरा के रूप में देखा है जो अनन्तकाल से अमर लय-गीत और पद-ताल से नर्तन करती रही है :

लयगीत अमर, पद ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर। ('यामा', पृ० १६५)

कभी-कभी महादेवी अपने और प्रकृति के सुन्दर रूपों के बीच तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं। यथा :

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन। ('यामा', पृ० २०३)

अथवा

मैं बनी मधुमास आली। ('यामा', पृ० १५८)

रामकुमार वर्मा की सौंदर्यवादिता भी प्रकृति के मानवीकरण में कहीं-कहीं अभिव्यक्त होती है। वे ज्योत्स्ना को नभ की बरसी हुई उमंग के रूप में देखते हैं :

वह ज्योत्स्ना तो देखो नभ की बरसी हुई उमंग।
('आधुनिक कवि', ३, पृ० ३३)

वे पर्वत को नभ के स्पर्श से धरा का पुलकित हुआ गात मामते हैं।

नभ को छूके पर्वत स्वरूप
है उठा धरा का पुलक गात। ('आधुनिक कवि', ३,पृ० ३७)

इस प्रकार हमने देखा है कि दो युद्धों के मध्यवर्तीकाल के हिन्दी कवियों को प्रकृति के सुन्दर रूप ने अधिक आकर्षित किया है, प्रकृति के इस सुन्दर रूप के चित्रण में अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य का हिन्दी काव्य पर विशेष प्रभाव पड़ा है तथा अंग्रेजी रोमांटिक कवियों के प्रभाव केप रिणाम-

स्वरूप छायावादी कवि ने अपनी सौन्दर्यवादी चित्तवृत्ति के अनुरूप ही प्रकृति को अनेक रूपों में मूर्तिमान पाया है। उसने प्रकृति में एक सचेतन और जीवित सत्ता देखी है और उसमें आनन्द एवं प्रेम के आदान-प्रदान का व्यापार देखा है।

(ख) **नारी-सौंदर्य**–रोमांटिक कवि नारी-सौंदर्य में विशेष आसक्ति रखता है। उसे नारी के स्थूल रूप का यथार्थ चित्रण रुचिकर नहीं होता, वह नारी रूप की सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को अभिव्यक्त करता है। रोमांटिक अर्थात छायावादी कवि की यह प्रवृत्ति उनके नारीरूप के वर्णन में एक अस्पष्टता का भाव उत्पन्न कर देती है। यह प्रवृत्ति जो बहुधा शेली के काव्य में मिलती है, हिन्दी की छायावादी कविता में अनेक स्थलों पर उद्‌भासित हुई है।

नारी-रूप की इस भावना की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। कुछ कवि तो प्रकृति के विभिन्न रूपों में नारी-सौंदर्य का दर्शन करते हैं और कुछ नारी रूप का चित्रण ऐसी कोमल और सरस रूपरेखाओं में करते हैं कि वह इस संसार की प्राणी प्रतीत न होकर परम दिव्यरूपा (Ethereal) प्रतीत होने लगती है। जयशंकर 'प्रसाद' के कतिपय नारी-रूपों का चित्रण इसी प्रकार का है। उनका प्रिय अपने 'शशि मुख पर घूँघट डाले, आँचल में दीप छिपाये' कौतूहल की भाँति आता है।[९४] यद्यपि सारा चित्र नारी का ही है, पर वे अपने प्रिय व्यक्ति को नारी न कह कर पुरुष की तरह संबोधित करते हैं। इसी कारण 'प्रसाद' के इस चित्रण में अस्पष्टता का और भी अधिक भाव आ जाता है। 'प्रसाद' की कुछ रहस्यवादी कही जाने वाली कविताओं में भी नारी के ही अस्पष्ट सौंदर्य की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणार्थ—

तुम कनक किरन के अन्तराल में लुकछिप कर चलते हो क्यों?...
हे लाज भरे सौन्दर्य! बतादो मौन बने रहते हो क्यों? ('चन्द्रगुप्त')

सुमित्रानन्दन पन्त तो नारी-रूप से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी कवितायें 'नन्दिनी' नाम से प्रकाशित करवाईं। उन्हें नारी के सौंदर्य ने इस सीमा तक संमोहित कर दिया था कि वे उससे अपना तादात्म्य तक स्थापित करने लगे। नरेन्द्र ने इस भावना का अत्यंत सुन्दर विश्लेषण किया है:

---

[९४] जयशंकर 'प्रसाद', 'आँसू'

शशि मुख पर घूँघट डाले आँचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।

"नारी स्वर के प्रति पन्त जी का यह आकर्षण धीरे-धीरे नारी-रूप के प्रति भी बढ़ता गया। बहुधा हम उस वस्तु के सदृश बन जाना चाहते हैं, जिस वस्तु के प्रति हमें अनुराग हो। सम्भव है इस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नवयुवक पन्त ने भी नारीत्व के प्रति अपना मनोगत आकर्षण प्रकट किया हो।"[६६]

वास्तव में पन्त का आत्मप्रेम (Narcissism) उनकी इसी भावना के कारण है। वे स्वयं अपने रूप पर इसलिये आसक्त हैं क्योंकि वे अपने में नारी का ही सौन्दर्य देखते हैं:

घने लहरे रेशम से बाल
धरा है सिर पर मैंने देवि!
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार
स्वर्ण का सुरभित भार! ('पल्लविनी', पृ० ५७)

नारी के प्रति पंत की यह भावना उनकी 'वीणा', 'ग्रंथि' और 'पल्लव' के रचना काल की भावधारा में स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है।

उनके नारी-सौंदर्य के चित्रण में शेली और कीट्स का विशेष प्रभाव पड़ता है। शचीरानी गुर्टू को उनकी 'ग्रंथि' नामक कविता जिसमें नारी-सौन्दर्य के अनेक चित्र हैं; शेली की 'एपिपसाइकिडियन' (Epipsychidion) के बहुत अनुरूप प्रतीत होती हैं।[६६]

पन्त की 'उच्छ्वास' कविता, जिसका उनके अपने जीवन से भी कुछ संबंध है,[६७] एक युवक और युवती की प्रेम-कथा है। संदेह के कारण इन दोनों के प्रेम का शीघ्र ही अंत हो जाता है। कवि की यह प्रेयसी पूर्ण युवती न होकर एक बालिका अथवा किशोरी है। पन्त ने उसके सरलपन, निरालेपन, उसके नेत्रों और रूप की प्रशंसा की है:—

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन। ('आधुनिक कवि', २, पृ० ८)

---

[६६] नरेन्द्र, "श्री सुमित्रानन्दन पन्त", 'आलोचना' (अक्टूबर १९५१) में प्रकाशित लेख।

[६६]शचीरानी गुर्टू, 'साहित्य दर्शन' (दिल्ली, १९५०) पृ० १६१-१६६

[६७]सुमित्रानन्दन पंत से लेखक की वार्ता, परिशिष्ट (ङ)

शेली का 'प्लेटोनिज्म' अथवा आदर्शवाद हमें पन्त की 'आँसू' कविता में मिलता है। नारी इस कविता में इस संसार की वस्तु नहीं रह जाती, वह एक अत्यन्त पवित्र देवी-स्वरूपा हो जाती है। उसके स्पर्श में जीवन, संग में पतित-पाविनी गंगा का स्नान है। वह धरा पर पुनीत स्वर्ग के समान है। नारी के प्रति यह दृष्टिकोण सर्वथा नवीन था।

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान,……

धरा में थीं तुम स्वर्ग पुनीत ! ('आधुनिक कवि', २, पृ० १०-११)

पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता छन्दों की एक लम्बी लड़ी है जिसमें उन्होंने अपनी भावी पत्नी के काल्पनिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। इस कविता की रचना में पन्त पर सम्भवतः कीट्स और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव पड़ा है। इनमें प्रकृति-सौंदर्य और नारी-सौन्दर्य दोनों का कहीं-कहीं पूर्ण संयोग है। कवि कभी वर्ड्सवर्थ की भाँति (दे० 'थ्री ईयर्स शी ग्र्यू') प्रकृति-सौन्दर्य का अपनी पत्नी के सौन्दर्य में प्रतिबिम्ब देखता है।

अरुण अधरों की पल्लव प्रात

मोतियों सा हिलता हिम हास। ('पल्लविनी', पृ० १६१)

और कभी वह प्रकृति को स्वयं अपनी भावी पत्नी से सौन्दर्य लेते हुये देखता है। अनिल उसके केशों से सौरभ लेता है, और विहंगवृन्द उससे अपना 'कलरव केलि विनोद' सीखते हैं।

खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उठ खग बाल
तुम्हीं से कलरव केलि विनोद। (पल्लविनी पृ० १६१)

पन्त का नारी-रूप के प्रति प्रेम उनकी अन्य कविताओं 'मधुस्मिति', 'मन विहग', 'प्रथम मिलन' आदि में भी मिलता है। उनके कुछ चित्रों में ऐन्द्रियता भी है, उदाहरणार्थ 'प्रथम मिलन' में :

तुम मुग्धा थीं अति भाव-प्रवण
तुकसे थे अँबियों से उरोज।...इत्यादि

('पल्लविनी' पृ० १७०)

इस प्रकार के ऐन्द्रिक चित्रों में पन्त पर कीट्स का प्रभाव प्रतीत होता है। कीट्स अपनी 'टु द ब्राइट स्टार' सॉनेट में लिखता है :

No--yet steadfast, still unchangeable,
Pillow'd upon my fair love's ripening breast,
To feel for ever its soft fall and swell,

रोमांटिक साहित्य में अलौकिकतावाद की प्रवृत्ति का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। रोमांटिक कवि बहुधा परियों और अप्सराओं के जगत में विचरण करता है। एबरक्रोम्बी के अनुसार रोमांटिसिज़्म एक प्रकार से वास्तविकता से पलायन है। रोमांटिक कवि की प्रवृत्ति अन्तमुंखी होती है और वह अपने आन्तरिक अनुभव को परियों के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है।[९८] अतः परियाँ रोमांटिक कवि का प्रिय विषय हैं। सौन्दर्यवादी पन्त ने भी परियों और अप्सराओं पर कवितायें लिखी हैं। 'अप्सरा' उनकी एक सुन्दर कविता है। इस कविता की शैली और भाव दोनों पर रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' का प्रभाव पड़ा है जो स्वयं स्विनबर्न की प्रसिद्ध कविता 'एटलेण्टा इन केलीडोन' (Atlanta in Calydon) से प्रभावित है। रवीन्द्रनाथ की उर्वशी इन्द्र की अप्सरा न होकर स्वयं उनके मस्तिष्क की उपज है। वह कामना की देवी 'एफ्रोडाइट' (Aphrodite) का भारतीय संस्करण है। टैगोर ने सौन्दर्य के ऐसे आदर्श की कल्पना की है जिसमें इच्छा और वेदना दोनों का संयोग है। योरप में भी 'एफ्रोडाइट' 'प्रेम की जननी' ('mother of love') और 'संघर्ष की जननी' ('mother of strife') मानी जाती है। अतएव इस देवी पर लिखी हुई कविताओं में आनंद और वेदना दोनों की भावना प्राप्त होती है।

किन्तु पन्त की 'अप्सरा' में उनके सौन्दर्य के आदर्श की विशुद्ध अभिव्यक्ति हुई है, और इसी कारण उसमें वेदना का भाव नहीं है जो हमें रवीन्द्रनाथ और स्विनबर्न दोनों की कविताओं में मिलता है। पन्त विशुद्ध सौन्दर्य के कवि हैं, उन्हें संघर्ष एवं दुख प्रिय नहीं है। इस भावना में पन्त अंग्रेज़ी के समस्त कवियों में कीट्स के अधिक निकट पहुँचते हैं। कीट्स की 'ला बेल डेम सेन्स मर्सी' की ही भाँति उनकी 'अप्सरा' भी मोहिनी और छलनामयी है:

---

[९८] एबरक्रोम्बी, 'रोमांटिसिज़म', पृ० ६८

If then romanticism......seems merely to retreat from insistant actuality, in order to longe in some untroubled lassitude of feeling, it may also appear in the symbolism of the fairies, as a keen hostility to actual things, concentrating itself on the fortress of the interior.

मोहिनि, कुहकिनि छल विभ्रममयि
चित्र विचित्र अपार ! ('पल्लविनी' पृ० १२०)

पन्त की अप्सरा अनेक मोहक और सुन्दर रूप धारण करती है। वह अमर और सतत् काम्य है।

रवीन्द्रनाथ और स्विनबर्न[९९] की भाँति पन्त ने अप्सरा के रूप का वर्णन व्यापक रूप से किया है :

खिलीं प्रथम सौन्दर्य पद्म सी
तुम जग में नवजात
भृंगों से अगणित रवि, शशि, ग्रह
गूँज उठे अज्ञात
जगज्जलधि हिल्लोल विलोड़ित
गंध अंध दिश वात। ('पल्लविनी' पृ० १२५)

कविता की अन्तिम पंक्तियों में कीट्स के दो प्रमुख 'ओड्स'—'नाइटिंगेल' और 'ग्रीशन अर्न' की भावनाओं का सम्मिश्रण प्रतीत होता है। कीट्स की 'नाइटिंगेल' की भाँति 'अप्सरा' भी अमर है। वह जग के सुख-दुःख, पाप, ताप, तृष्णा और ज्वाला को नहीं जानती :

जग के सुख-दुःख, पाप-ताप,
तृष्णा ज्वाला से हीन;
जरा-जन्म-भय-मरण रस्य
यौवनमयि नित्य नवीन। ('पल्लविनी', पृ० १२६)

कीट्स की 'नाइटिंगेल' भी इन सब सांसारिक यातनाओं से अपरिचित है :

Fade far away, dissolve, and quite forget
What thou among the leaves hast never known
The weariness, the fever and the fret, etc.

---

[९९] उदाहरणार्थ स्विनबर्न द्वारा एटलांटा के सौन्दर्य का वर्णन :

In the utmost ends of the sea
The light of thine eyelids and hair

अथवा रवीन्द्रनाथ का यह वर्णन :

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धु माँझे तरङ्गेर दल

इसके अतिरिक्त कीट्स की 'ग्रीशन अर्न' पर चित्रित युवती की भाँति अप्सरा भी नित्य नवीन यौवनमयी है।

पन्त की 'अनंग' कविता पढ़ते समय हमें कीट्स की 'ओड टु साइके' (Ode to Psyche) का स्मरण हो आता है। कीट्स ने अपनी कविता में प्रेम के देवता 'क्यूपिड' (Cupid) और मानवात्मा 'साइके' (Psyche) के प्रेम का वर्णन किया है। पन्त की कविता में भी हम प्रेम के देवता अनंग अथवा कामदेव का वर्णन पाते हैं। पन्त अनंग का अस्तित्व सृष्टि के प्रत्येक कण में पाते हैं। वे इस अत्यंत सुन्दर निराकार देवता को अपने प्राणों में साकार बनाना चाहते हैं :

ऐ असीम सौन्दर्य सिन्धु की
विपुल वीचियों का शृङ्गार !
मेरे मानस की तरंग में
पुनः अनंग बनो साकार ! ('पल्लविनी' पृ० ५१)

इस संबोधन गीति में पन्त की अनंग से प्रार्थना यही है कि वह उसे विश्व-कामिनी की सुन्दर छवि का दर्शन करा दे :

विश्व कामिनी की पावन छवि
मुझे दिखाओ करुणावान ! ('पल्लविनी' पृ० ५६)

'निराला' के काव्य में भी हम कवि की नारी-रूप के प्रति आसक्ति का दर्शन करते हैं। उनको अंग्रेज़ी और बँगला साहित्य के अध्ययन से इस सौन्दर्यानुभूति की विशेष प्रेरणा मिली। शेली के 'अलास्टर' और शेक्सपियर की 'सॉनेट्स' के प्रति निराला की अभिरुचि का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं। शेली के 'अलास्टर' ने जिसमें कवि की सौन्दर्य की खोज का वर्णन है निराला के मस्तिष्क पर अवश्य अपना प्रभाव डाला होगा। शेली के अतिरिक्त निराला की नारी-रूप संबंधिनी कविताओं पर 'कीट्स' और रवीन्द्रनाथ का भी प्रभाव पड़ा है।

'निराला' मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनके काव्य-संग्रह 'परिमल' में सुप्त सौन्दर्य को जाग्रत करने का भाव अनेक स्थलों पर आया है। यथा :

प्रिय मुद्रित दृग खोलो ! ('परिमल' पृ० ३८)

'जागो फिर एक बार' में वे सिद्ध करते हैं कि काव्य का जन्म सौन्दर्य ही में होता है। 'जागृति में सुप्त थी' में वे एक ऐसी नारी का चित्रण

करते हैं जिसके अधर अभी भी मदिरा से अरुण हैं। उषा की लालिमा आकाश में फैल रही है। कवि रात्रि के स्वप्न भूल चुका है और वह उषा के रंगों से नये स्वप्नों का निर्माण कर रहा है। यहाँ पर कवि ने एक रूपक प्रस्तुत किया है—वह जीवन में एक नई उषा का प्रारंभ देख रहा है।

निराला के काव्य में नारी-सौन्दर्य के कुछ ऐन्द्रिक चित्रण भी हैं—यह प्रवृत्ति हमें कीट्स के काव्य का स्मरण करा देती है। उनकी 'शूर्पनखा' कविता में ऐसे ही ऐन्द्रिक चित्रण हैं। उदाहरणार्थ :

देख यह कपोत कंठ...
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का
देवी भोगियों की बात तो निराली है। ('परिमल', पृ० २४८)

इलाचन्द्र जोशी भी, जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन किया है, नारी सौंदर्य के उपासक हैं। 'विजनवती' काव्य-संग्रह की उनकी अनेक कविताओं में उनका सौंदर्यवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। विजनवती नारी कवि की सौंदर्य भावना का प्रतीक है। जोशी जी ने स्वयं इस प्रतीकवाद को स्वीकार किया है। वे विजनवती को 'अपने मानस की मूर्तिमती जीवित प्रतिमा का प्रतिरूप' कहते हैं। सौंदर्य की यह खोज और उपासना हमें शेली की अनेक कविताओं में उपलब्ध होती है। विशेषकर शेली की 'हिम टु इन्टेलेक्चुयल ब्यूटी' (Hymn to intellectual beauty) में तो कवि की सौन्दर्य की खोज ही वर्णित है। जोशी की सौन्दर्य की खोज भी इसी प्रकार की है। कीट्स के 'ला बेल डेम सेन्तमर्सी' का प्रभाव भी इस कविता पर पड़ा है। कवि निजनवती के खो जाने पर कीट्स के 'नाइट' (Knight) की तरह शोक प्रकट करता है :

कहाँ गई वह कल-कलोलिनी
मुझको बतलायेगा कौन ?

रामकुमार ने भी नारी-सौंदर्य के अनेक चित्र अंकित किए हैं। विशेषकर उनकी 'रूपराशि' की कविताओं में नारी-रूप का चित्रण अधिक है। जैसा पीछे कहा जा चुका है 'रूपराशि' के रचनाकाल में रामकुमार पर कीट्स और बायरन का प्रभाव पड़ा था। अतः रामकुमार इन अंग्रेजी कवियों की भाँति ही नारी के रूप का चित्रण करते हैं। उन्हें नारी के रूप ने लुभाया है, और वे इसी का गान करते हैं:

मैं तुमसे मिल गया प्रिये
यह है जीवन का अन्त
इसी मिलन का गीत कोकिले
गा जीवन पर्यंत ! ('आधुनिक कवि', ३, पृ० ५७)

अथवा

मेरे सुख की किरण अमर...आदि (वही, पृ० ६१)

अतः दो महायुद्धों के बीच के समय की हिन्दी कविता में सौंदर्यवाद की धारा अक्षुण रूप से प्रवाहित होती रही है। छायावाद के कवि ने प्रकृति और जीवन दोनों में एक नये सौंदर्य-लोक को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। अपनी सौंदर्य की इस उपासना में छायावादी कवि अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों और रवीन्द्रनाथ से बहुत प्रभावित हुए हैं।

(२) विद्रोहात्मक आदर्शवाद
(Revolutionary Idealism)

अंग्रेज़ी के रोमांटिक प्रतिवर्तन के साहित्य पर फ्रांसीसी क्रान्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था। फ्रांसीसी क्रांति समस्त विश्व को कँपा देने वाला आन्दोलन था, और इसी कारण इसका अंग्रेज़ी विचार-धारा पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इसका प्रारंभ ज्वालामुखी के विस्फोट की भाँति था। यह तूफ़ान दीर्घकाल से घिर रहा था और अन्त में १७८६ में बेस्टील (Bastille) के पतन के साथ वेग से आ गया। परन्तु फ्रांसीसी क्रान्ति को उद्वेलित करने वाले विचार अंग्रेज़ी मस्तिष्क के लिये सर्वथा नये नहीं थे, यद्यपि काव्य में उनकी पूर्णाभिव्यक्ति इससे पहले न हो सकी थी। इंग्लैंड के राजनीतिक क्षेत्र में इस फ्रांसीसी क्रान्ति द्वारा ऐसा कोई परिवर्तन न हुआ, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में जनवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति अवश्य हुई। फ्रांसीसी क्रांति से पहले ही टामसन (Thomson) ने सामन्ती व्यवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट किया था ? स्टफ़र्डब्रुक के कथनानुसार हम टामसन में फ्रांसीसी क्रान्ति से पहले ही जनवादी आदर्शों की अभिव्यक्ति पाते हैं। उसके काव्य का विषय नगर के सभ्य समाज का जीवन न होकर निम्न वर्ग का ग्रामीण जीवन है। बर्फ में काम करने वाला चरवाहा, खेत में श्रम करने वाला कृषक, शीत में काँपती हुई अपनी कुटी के द्वार पर बैठी निर्धन लड़की और ग्रीष्म ऋतु में नदी में

नहाती ग्रामयुवती टामसन के काव्य के प्रिय विषय हैं।[६०] पीड़ित और शोषित मानवता के प्रति इसी समवेदना के दर्शन हमें अंग्रेज़ी के रोमांटिक प्रतिवर्तन के पूर्ववर्ती कवियों (Pre.Romantics) में मिलते हैं। ग्रे, कूपर, क्रेब आदि ने अपनी कृतियों में इसी जनवादी आदर्श की अभिव्यक्ति की है।

वर्ड्सवर्थ वेस्टील के पतन का समाचार पाकर इतना प्रसन्न हुआ था कि उसने अपनी प्रसिद्ध कविता 'प्रिल्यूड' (Prelude) में फ्रांसीसी क्रान्ति के विषय में कहा कि उसके विस्फोट के शुभ समय में किसी व्यक्ति का जीवित रहना स्वर्गीय सुख है, किन्तु साथ में उसका किशोरावस्था में होना स्वर्ग ही है।

Bliss was it in that dawn to be alive
But to be young was very heaven.

परन्तु वर्ड्सवर्थ बहुत समय तक फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रशंसक बना न रह सका। फ्रांसीसी जनता द्वारा किये गये अत्याचारों ने जिन्हें 'नृशंसता के राज्य' (Reign of Terror) से संबोधित किया जाता है, शीघ्र ही वर्ड्सवर्थ की सद्भावनाओं का अन्त कर दिया और वह पूर्णरूप से प्रतिक्रियावादी बन गया।

जैसा काम्प्टन रिकैट[६१] ने कहा है वर्ड्सवर्थ, शेली और बायरन में फ्रांसीसी क्रान्ति के क्रमशः राजनीतिक (Political), सैद्धान्तिक (Doctrinire) और सामरिक (Military) पक्षों की अभिव्यक्ति होती है। वर्ड्सवर्थ के लिए फ्रांसीसी क्रांति एक घटना मात्र थी, अतः वह उसके राजनीतिक पक्ष के आगे कुछ और न देख सका। बायरन के विद्रोहात्मक व्यक्तित्व को फ्रांसीसी क्रान्ति के सामरिक पक्ष ने अधिक लुभाया और नेपोलियन का व्यक्तित्व उसका आदर्श बना। अतः केवल शेली ही उस क्रान्ति के सैद्धांतिक पक्ष को देख सका, और यही कारण है कि वह फ्रांसीसी

---

६० स्टफ़र्ड ए० ब्रुक, 'नेचुरलिज्म इन इंगलिश पोइट्री' पृ० ८२

(in Thomson) we meet the spirit of revolution before the Revolution......It is not the learned folk Thomson whom cares for, but the shepherd in the snow, the ploughman in the fields, the poor girl crouching in the door way on a bitter night, and the country maiden bathing in the summer stream.

६१ आर्थर काम्पटन रिकैट, 'ए हिस्ट्री आव इङ्गलिश लिट्रेचर' (१९४९) पृ० २८९

क्रान्ति की घटनाओं अथवा उसके दुष्परिणामों से तनिक भी विचलित न हुआ। उसकी आस्था क्रान्ति को जन्म देने वाले आदर्शों में थी, न कि उस घटना में। अतः अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों में केवल शेली ही में हमें क्रान्ति की भावना का वास्तविक स्वरूप मिलता है।

फ्रांसीसी क्रान्ति के आदर्शों को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं: हम कल्पना करें कि जैसे सारी मानवता एक ही मनुष्य का स्वरूप है। अतः जन्म, सम्पत्ति, पद आदि से उत्पन्न समस्त भेद-भाव मिट जावेंगे और समाज के सब व्यक्ति स्वतंत्र होकर और समान अवसर प्राप्त कर बन्धुत्व के एक सूत्र में बँधे रहेंगे। अतः ऐसी व्यवस्था में जाति-पाँति, वर्ण, देश आदि द्वारा उत्पन्न भेद न रहेंगे और मानवता का केवल एक ही देश और एक ही राष्ट्र रह जावेगा।[६२]

यह स्वाभाविक ही था कि इस विचारधारा का प्रभाव दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर पड़ता। दीर्घकाल से विदेशी शासन द्वारा शोषित एवं पीड़ित भारतवासियों ने अपनी ही आकांक्षाओं को फ्रांसीसी क्रान्ति की विचारधारा में प्रतिबिम्बित होते देखा। इस अत्याचार के प्रति विद्रोह की यह प्रवृत्ति 'निराला' की कृतियों में हमें विशेष रूप से मिलती है। निराला का 'बादल राग' और शेली के 'ओड टु वेस्ट विन्ड' में बहुत साम्य है। शैली की विद्रोही आत्मा को अपनी अभिव्यक्ति के लिए पश्चिमी प्रभंजन का प्रतीक मिला था और 'निराला' को बादल का। शेली का पश्चिमी प्रभंजन स्वतंत्रता का द्योतक है। उसके अस्तित्व मात्र से ही पत-झड़ के तरु-पात टूट कर उड़जाते हैं, और बीज पृथ्वी के गर्भ में पहुँच जाते हैं।

---

[६२] स्टफ़र्ड ए० ब्रुक, 'नेचुरलिज्म इन इंगलिश पोइट्री' पृ० ८०-८१

That there was only one Man, if we style it, in all Humanity, that, therefore all divisions, classes, outside differences such as are made by birth, by rank, by wealth, by person or by separate nationalities were to be wholly put aside as non-existent, that there was a universal Mankind, every member of which ought to be free with equal opportunities, and bound to each other as brothers are bound. Hence, finally all divisions made by caste, by colour, by climate, by aggressive patriotism, by all that we call nationality were also dissolved. There was only one country, the country of Mankind, only one nation the nation of Mankind.

किन्तु बसन्त के आने पर वे ही नये वर्ण और सौरभ लेकर फूट पड़ते हैं। कवि ऐसे ही पश्चिमी प्रभंजन को संबोधित करता है:

Wild spirit, which art moving every where
Destroyer and preserver; hear, oh, hear!

पश्चिमी प्रभंजन इस प्रकार शिव और विष्णु दोनों का ही प्रतीक है: वह विध्वंस के साथ-साथ नवनिर्माण भी करता है।

'निराला' ने भी इसी भाँति बादलों को जो अकाश में चारों ओर विचरण कर रहे हैं, संबोधित किया है। वे झूम-झूम कर अंबर में अपना गर्जन भर देते हैं, नव-निर्माण के कार्य में अपना योग देते हैं और धरा को वर्षा देकर उसे नव-जीवन का हर्ष प्रदान करते हैं। वे 'वर्ष के हर्ष' हैं:

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर
राग अमर ! अंबर में भर निज रोर !...
अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू बरस बरस रसधार ! ('परिमल', पृ० १७५)

'निराला' ने अपने बादल को प्रभंजन से उपमा भी दी है:

बहता अंध प्रभंजन ज्यों।... (इत्यादि)

शेली ने प्रभंजन के विध्वंसात्मक पक्ष का भी दिग्दर्शन कराया है। उसका प्रभंजन क्षितिज की रेखा पर बादलों को छितरा देता है जहाँ वे आने वाले तूफान की सूचना-सी देते हुए प्रतीत होते हैं। अन्ततः वर्षा, विद्युत उल्कापात आदि से सारी धरा विकम्पित हो उठती है:

Thou dirge
Of the dying year, to which this closing night
Will be the dome of a vast sepulchre
Vaulted with all they congregated might
Of vaponss, from whose solid atmosphere
Black rain, and fire, and hail will burst: oh, hear!

'निराला' के बादल भी विप्लव की जलधार बरसाते और पत्र-पुष्प, पादप, बन-उपवन आदि छिन्नभिन्न करते और आतंक जमाते हैं:

ऐ अटूट टूट पर छूट पड़ने वाले उन्माद !

... ...

छिन्न भिन्न कर पत्र-पुष्प, पादप बन-उपवन
वज्र घोष से ऐ प्रचंड
आतंक जमाने वाले...
बरसो विप्लव के जलधर !

शेली ने पश्चिमी प्रभंजन को, 'उच्छृंखल पश्चिम प्रभंजन' (wild west wind) 'उच्छृंखल आत्मा' (wild spirit) अनियंत्रणशील (uncontrollable), 'भयंकर आत्मा' (spiret fierce), 'उद्दाम' (impetuous) आदि नामों से संबोधित किया था। 'निराला' ने भी बादल को इसी प्रकार के अनेक नाम दिये हैं :

ऐ निर्बंध !—
अंध तम-अगम-अनर्गल बादल
ऐ स्वच्छंद !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !—
अपार कामनाओं के प्राण
बाधा रहित विराट् ('परिमल', पृ० १७७)

शेली कहता है कि उसकी आत्मा भी किसी समय प्रभंजन की आत्मा की भाँति उद्दाम, वेगवती और अभिमानिनी ('tameless, swift and proud) थी। अपनी 'एडोनिस' (Adonais) कविता में भी वह अपने को एक सिंह की आत्मा की भाँति सुन्दर और वेगमय ('A part—like spirit beautiful and swift') बताता है। अतः शेली प्रभंजन से उसका सहचर बनने की तीव्र इच्छा प्रकट करता है :

If even
I were as in my boyhood, and could be
The comrade of they wandering over Heaven!

'निराला' भी इसी भाँति बादल से कहते हैं :

पार ले चल मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव संसार ! ('परिमल', पृ० १७५-१७६)

अतः शेली और 'निराला' की आत्माओं में अत्यधिक साम्य है। निराला ही में केवल हमें शेली की उद्दाम, वेगवती और अभिमानिनी आत्मा के दर्शन होते हैं।

'निराला' ने भारतीयों पर विदेशी शासकों द्वारा किये गये अत्याचारों का तीव्र अनुभव किया था। उन्होंने इस अन्याय और अत्याचार के प्रति विद्रोह व्यक्त किया। वे अपने 'बादल-राग' में कहते हैं :

तुझे बुलाता कृषक अधीर···
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मांस ही है आधार ! ('परिमल', पृ० १८८)

अतः 'निराला' क्रान्ति के बादल से बरसने के लिए प्रार्थना करते हैं जिससे धरा अत्याचार और शोषण से मुक्त हो सके।

'निराला' के काव्य में शोषितवर्ग के प्रति गहरी समवेदना पाते हैं। वे अपनी 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'इलाहाबाद के पथ पर' कविताओं में शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह प्रकट करते हैं।[६३]

शेली और 'निराला' दोनों क्रांति के अग्रदूत हैं। शेली ने अपनी 'मास्क आव एनार्की' में लिखा था:

Rise like lions from your slumber
In unvanquishable number,
Shake to earth your chains like dew
Which in sleep had fallen on you,
Ye are many they are few.

---

[६३] क्रान्तिवादी और मानववादी 'निराला' एवं रहस्यवादी 'निराला' में हमें कभी-कभी वैषम्य दिखाई पड़ता है। 'निराला' को बहुधा अद्वैतवादी कहा जा सकता है। किंतु अद्वैतवाद के अनुसार यह समस्त संसार माया है। किन्तु यह मानववादी 'निराला' के जीवन-दर्शन से सर्वथा-विभिन्न है। यह वैषम्य 'परिमल' की अनेक कविताओं में उद्भासित होता है। उदाहरणार्थ 'अधिवास' में इस मानसिक द्वंद्व का चित्रण है। कवि सन्यासी से पूछता है कि उसका 'अधिवास' अथवा मुक्ति-पथ कहाँ है। सन्यासी के दृष्टिकोण से मुक्ति सांसारिक बन्धनों के छूटने ही से प्राप्त हो सकती है। किन्तु सहसा एक व्यक्ति दुखी को देखकर कवि का हृदय वेदना से भर जाता है और वह उसकी सहायतार्थ उसे अपने आलिंगन में ले लेता है। वह जानता है कि ऐसे व्यवहार से वह ममता और मोह के सांसारिक बन्धनों में ही फँसा रहेगा और उसे मुक्ति न मिल सकेगी। किन्तु उसे इसका शोक नहीं है:

छूटता है यद्यपि अधिवास
किंतु फिर भी न मुझे त्रास ! ('परिमल', पृ० १२५)

अतः 'निराला' यहाँ अद्वैतवादी दर्शन को चुनौती-सी देते हुए प्रतीत होते हैं। वे 'सेवारंभ' कविता में भी जन-सेवा के आदर्श की पुष्टि करते हैं।

'निराला' के काव्य में क्रांति की इस भावना की पूर्णाभिव्यक्ति हुई है। 'निराला' को विवेकानन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी जो स्वयं शेली के विद्रोहात्मक आदर्शवाद से प्रभावित हुये थे उनकी 'नाचे उस पर श्यामा' कविता विवेकानन्द की एक कविता का अनुवाद है। इस कविता में देवी श्यामा क्रान्ति की प्रतीक है।

एक अन्य कविता 'देवी तुम्हें मैं क्या दूँ' में कवि श्यामा को कोई उपहार की वस्तु देने के लिये इच्छुक है। वह दूसरों द्वारा प्रदत्त हार-रत्न आदि उपहारों की ओर देखता है। किंतु उसके पास ऐसा कोई भी उपहार नहीं है। उसके पास केवल गीत हैं जिनमें उसने अपनी क्रांति की भावना को व्यक्त किया है और वह उन्हीं गीतों को उपहार के रूप में भेंट करता है।

अतः 'निराला' के क्रांतिवादी दृष्टिकोण और शेली के विद्रोहात्मक आदर्शवाद में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है।

प्लेटो का आदर्शवाद (Platonism)

शेली के 'प्लेटोनिज़्म' अथवा आदर्शवाद का भी दोयुद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर प्रभाव पड़ा है। शेली ने अत्याचार और शोषण के प्रति 'क्वीनमेब' (Queen Mab), 'द रिवोल्ट आव इस्लाम' (The Revolt of Islam) और 'प्रोमेथियस अनबाउंड' (Prometheus Unbound) कृतियों में विद्रोह ही अभिव्यक्त किया था। उसने प्रेम के आदर्श को, विश्व को नवजीवन प्रदान करने वाली शक्ति के रूप में देखा था, और निखिल मानवता के प्रेम के अंचल में सुखी और सम्पन्न होने की कल्पना की थी। उसने 'क्वीन मेब' में ऐसे देश और काल की कल्पना की थी जिसमें नारकीय यातना के अंत के साथ-साथ प्रेम और स्वतन्त्रता का राज्य होगा।

> Hope was seen beaming through the mists of fear:
> Earth was no longer Hell;
> Love, freedom, health had given
> Their ripeness to the manhood of its purne,
> And all its pulses beat
> Symphonious to be the planetary spheres.

शेली ने इस संसार में प्रेम के आदर्श पर निरन्तर प्रहार देखे थे। उसने प्रेम के आदर्श की इस विश्व में पूर्ति के लिये, अवगुंठन (Veil) के हटने के प्रतीक का, अपने काव्य में अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। यह

अवगुंठन शेली के अनुसार पूरे विश्व पर आच्छादित है और उसके उत्कर्ष विधान में बाधक है। कहीं-कहीं शेली ने अनन्तता (Eternity) अथवा वास्तविकता (Reality) को समय (Time) द्वारा अवगुंठित होने की कल्पना की है। जैसे ही यह अवगुंठन उठता है वसुधा पर प्रेम और स्नेह का साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

प्लेटो के दर्शन से प्रभावित शेली की इस विचारधारा का दर्शन हमें विशेषरूप से उसके 'प्रोमेथियस अनबाउण्ड' काव्य में मिलता है। वह उसमें एक ऐसे समय की कल्पना करता है जब मनुष्य के ऊपर शासन करने वाली सत्ता के रूप में केवल प्रेम की शक्ति होगी और जब अत्याचार, अन्याय और शोषण का सर्वदा के लिए अन्त हो जायेगा। इस काव्यात्मक नाटक के चतुर्थ अंक में हम मानवता का प्रेम, शान्ति और हर्ष के राज्य में पुनर्जीवित होना पाते हैं। सारी वसुधा, कवि की कल्पना में, हर्षातिरेक से पुलकित होउठती है और समाज के सब व्यक्ति उस स्वर्णयुग में समान रूप से स्वतन्त्र हो जाते हैं।

शेली का यह 'प्लेटोनिज़्म' अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों के लिये प्रेरणा की वस्तु थी। हिन्दी कविता में भी इसी भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हमें सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में मिलती है।

पन्त के इस आदर्शवाद की अभिव्यक्ति 'ज्योत्सना' और 'गुञ्जन' में विशेषरूप से है। इन दोनों कृतियों में पन्त ने आदर्श जगत् की कल्पना की है जहाँ प्रेम, सौन्दर्य और हर्ष का राज्य है। पन्त ने स्वयं कहा है कि "'गुञ्जन' और 'ज्योत्सना' में मेरी सौन्दर्य कल्पना क्रमशः आत्मकल्याण और विश्व-मंगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिये उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।"[६४] उन्होंने यह भी कहा है कि "मैं 'पल्लव'से 'गुञ्जन' में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुये पाता हूँ।"[६५]

मानवता के पुनर्जीवन के लिए पन्त ज्योतिर्मय जीवन से वसुधा पर बरसने के लिये कहते हैं :

> जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन
> बरसो लघु–लघु तृण तरु पर हे चिर अव्यय चिर नूतन !
>
> ('पल्लविनी', पृ० १)

---

[६४]सुमित्रानन्दन पन्त, 'आधुनिक कवि' २, पर्यालोचन, पृ० ८

[६५]वही, पृ० ६

पन्त में एक स्वप्न द्रष्टा की आत्मा है। वे सुन्दर विश्वासों की आधार-शिला पर सुन्दर जीवन बनाने की कल्पना करते हैं :

सुन्दर विश्वासों ही से
बनता सुन्दरमय जीवन ! ('गुञ्जन', पृ० २८)

वे संस्कृति और उच्च आदर्शों के प्रेमी हैं और मानव की अपूर्णता देख कर उन्मन हो जाते हैं :

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का...
लगता अपूर्ण मानव जीवन
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन ! ('गुञ्जन', पृ० २६)

वे जीवन से प्रेम करते हैं और उनके हृदय में नई आशायें और आकांक्षाएँ हैं। उन्हें ईश्वर में विश्वास है। वे सोचते हैं कि इस संसार को नव जीवन चाहिये।

पन्त जी का 'गुञ्जन' का स्वप्न 'ज्योत्सना' में पूरा होता है। पन्त स्वयं कहते हैं कि **"पल्लव-कालीन जिज्ञासा तथा अवसाद की कुहा से निखर कर 'ज्योत्सना' का जगत जीवन के प्रति एक नया विश्वास, आशा और उल्लास लेकर प्रकट होता है।"**[६६] यहाँ पर पन्त मानवता की शोषण और अत्याचार से मुक्ति की कल्पना करते हैं। भ्रातृ-प्रेम, स्नेह, स्वतन्त्रता, समानता, नैतिक आदर्शों की स्थापना पन्त जी के वे आदर्श हैं जिनकी पूर्णाभिव्यक्ति उनकी 'ज्योत्सना' में हुई है। ऐसा देश और काल धरा पर एक पुनीत स्वर्ग होगा। जाति, धर्म और वर्ण के भेदों का इस व्यवस्था में कोई स्थान नहीं।

शेली ने एक स्थल पर लिखा था :

Oh cease ! must hate and death return
Cease ! must men kill and die ?
Cease ! drain not to its dregs the wine
Of bitter prophecy.

पन्त भी आज मनुष्य की वासना और पशुशक्ति देखकर दुखी हो उठते हैं। 'ज्योत्सना' का झींगुर आज के मनुष्य का प्रतीक है। पन्त मूल प्रवृत्तियों का उन्नयन अथवा विकास सभ्यता के लिये आवश्यक मानते हैं।

---

[६६] सुमित्रानन्दन पन्त, "मैं और मेरी कला", 'संगम' (मई १९५०) पृ० १२

इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रांसीसी क्रान्ति के आदर्शों का दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य और विशेषकर शैली के काव्य के माध्यम से आया है। सच तो यह है कि हम भारतवासियों ने अपने स्वतंत्रता के युद्ध में फ्रांसीसी क्रान्ति के मूलभूत आदर्शों से निरंतर प्रेरणा ली है। हमारे राष्ट्रीय कवियों, उदाहरणार्थ माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान आदि पर भी किसी न किसी रूप में फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव पड़ा है।

(३) निराशावाद (Pessimism)

हम पीछे देख चुके हैं कि निराशावाद रोमांटिक काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इस रोमांटिक निराशा अथवा अवसाद का कारण स्वप्न और वास्तविकता का पारस्परिक संघर्ष है। रोमांटिक कवि स्वभाव से स्वप्नद्रष्टा होता है किन्तु वह बहुधा संसार के कटु सत्यों का सामना करने में अपने को असमर्थ पाता है। इसी कारण रोमांटिक कवि निराशावादी हो जाता है।

इस अवसाद की व्याप्ति हमें अंग्रेज़ी के रोमांटिक प्रतिवर्तन के सभी कवियों में मिलती है। शैली के लिये संसार के सब व्यक्ति तो सुखी हैं, केवल उसका जीवन ही विषाक्त है :

Smiling they live and call life pleasure
To me this cup has been dealt with another measure.
('Stanzas written in Dejection')

अथवा वह दुख और विषाद से भरे गीतों को ही मधुरतम मानता है :

Our sweetest songs are those that tell of saddest thought
('To Skylark')

कीट्स को तो ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे उसकी प्रकृति ही में कहीं विषाद का अंकुर था जिससे वह इच्छा करने पर भी छुटकारा नहीं पा सकता था। अपनी 'ओड टु मैलनकली' (Ode to Melancholy) में वह संसार की समस्त सुन्दर वस्तुओं पर विशाद की एक गहरी छाया पाता है :

Ay-in the very temple of Delight
Veil'd Melancholy has her sovran shrine.

यह निराशावाद आधुनिक हिन्दी रोमांटिक काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। छायावाद के प्रायः समस्त प्रमुख कवियों की कृतियों में हमें निराशावादी

दृष्टिकोण उपलब्ध होता है। उनकी वीणा के तार टूट गये हैं, उनका संसार पीड़ा, अवसाद और आँसुओं से पूर्ण है और उनकी आशायें, आकांक्षायें और इच्छायें सदा के लिये भग्न हो चुकी हैं।

इस निराशावाद का कारण स्पष्ट है। दो महायुद्धों के बीच का काल घोर निराशा का समय था। ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों से पीड़ित भारत अब अपनी स्वतंत्रता के लिये युद्ध कर रहा था। किन्तु १९१९ और १९३० के असफल आन्दोलनों के कारण भारत की राष्ट्रीय भावना कुंठित-सी होने लगी थी। भारतवासियों के आर्थिक शोषण से निराशावाद का यह अंधकार और भी घनीभूत हो गया था। अंग्रेज़ स्वामियों के शोषण से भारत की आर्थिक स्थिति जर्जर हो गयी थी। उसके अतिरिक्त युद्धोत्तर (१९१८-)काल में बेकारी की समस्या और अधिक जटिल हो गयी थी जिसके फलस्वरूप निराशा का वातावरण उत्तरोत्तर वृद्धि पाता जा रहा था।

महायुद्ध के बाद की अंग्रेज़ी कविता में भी हमें निराशा और अवसाद, के दर्शन होते हैं। टी० यस० इलियट (T. S. Eliot) की 'द वेस्ट लैण्ड' (The Waste Land) कविता तो मानों गहरी पीड़ा की एक लम्बी चीत्कार है। सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार छायावाद और उत्तरकालीन अंग्रेज़ी कविता भिन्न-भिन्न रूप से इस संक्रांति-युग के विक्षोभ की प्रतिध्वनियाँ है :

> **"महायुद्ध के बाद की अंग्रेजी कविता भी अतिवैयक्तिकता, बौद्धिकता, दुरूहता, संघर्ष, अवसाद, निराशा आदि से भरी हुई हैं। वह भी १९वीं शताब्दी के कवियों के भाव और सौन्दर्य के वातावरण से कटकर अलग हो गई है।...१३वीं सदी का उत्तरार्ध इंग्लैंड में मध्यवर्गीय संस्कृति का चरमोन्नत युग रहा है। महायुद्ध के बाद उसमें विश्लेषण के चिह्न प्रकट होने लगे। छायावाद और उत्तर युद्ध कालीन अंग्रेज़ी कविता, दोनों भिन्न-भिन्न रूप से, इस संक्रांति युग के स्नायविक विक्षोभ की प्रतिध्वनियाँ हैं।"**[६७]

हिन्दी कविता में सुमित्रानन्दन पन्त की 'परिवर्तन' कविता निराशावाद की प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। 'पल्लविनी' में प्रकाशित यह कविता ३१ छोटी कविताओं की लड़ी है। प्रत्येक छोटी कविता में कवि की निराशा अभिव्यक्त हुई है। कवि उस स्वर्णिम समय के लिये, जो पुनः नहीं आ सकता, अत्यन्त दुखी है। कवि कहता है कि अब वह पूर्ण पुरातन काल कहाँ

---

[६७] सुमित्रानन्दन पन्त, 'आधुनिक कवि' २, पर्यालोचन, पृ० १२-१३

है ?[६८] वह इस संसार के अस्थिर सौन्दर्य और ह्रास को देखकर दुखी है। यहाँ शीघ्र ही बसन्त के बाद पतझड़, यौवन के बाद जरा;[६९] मिलन के बाद वियोग;[७०] और जीवन के बाद मृत्यु[७१] आती है।

कीट्स की 'ओड टु मैलनकली' में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति है। उसकी पीड़ा इस संसार के अस्थिर सौंदर्य और उसके क्षणिक सुख की सहचरी है :

> She dwells with Beauty—Beauty that must die;
> And Joy, whose hand is ever at his lips,
> Bidding adieu; and aching pleasure nigh
> Turning to Poison while the bee-mouth sips

कीट्स ने 'ओड टु नाइटिंगेल' (Ode to Nightingale) में इस संसार के रोग, शोक, ताप, पीड़ा इत्यादि के विषय में लिखा था :

> The weariness, the fever, and the fret
> Here, where men sit and hear each other groan
> Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs;
> Where youth grows pale and spectre-thin, and dies;
> Where but to think is to be full of sorrow...

इसी भाँति पन्त भी कहते हैं:

> **लालची गीधों से दिन रात**
> **नोचते रोग, शोक, निज गात।** ('पल्लविनी', पृ० ७२)

पन्त प्रकृति में प्रत्येक स्थान पर पीड़ा और दुख का साम्राज्य देखते हैं। उन्हें 'रुधिर से जगती के प्रात', और 'चितानल से सायंकाल' प्रतीत होते हैं। आकाश रोदन और सिसकियों से तथा सिन्धु आँसुओं से भरा प्रतीत होता है।[७२]

टोमस हार्डी (Thomas Hardy) ने विश्व को संचालित करने वालीशक्ति को भाग्य के एक अंधे पहिये अथवा 'इमानेंट विल' (Immanent

---

[६८] सुमित्रानन्दन पन्त, 'पल्लविनी' (दूसरा संस्करण, संवत् २००१) 'परिवर्तन', कविता १, पृ० ६३

[६९] वही, कविता २, पृ० ७३—७४

[७०] वही, कविता ३, पृ० ६५

[७१] वही, कविता ४, पृ० ६६

[७२] वही, कविता १७ पृ० ७३

Will) नामक शक्ति, जो मनुष्य मात्र के कल्याण के प्रति सर्वथा निष्ठुर है, के में रूप देखा था। पन्त ने इसी प्रकार निष्ठुर परिवर्तन का दर्शन प्रस्तुत किया है। निष्ठुर परिवर्तन विश्व पर मरण और विध्वंस लाता है और उसके आगमन से ही समस्त धरा भय से विकम्पित होने लगती है। पन्त कहते हैं :

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !···इत्यादि ('पल्लविनी' पृ० ६६)

'परिवर्तन' की अन्तिम कविता में पन्त ने अपने इस निष्ठुर परिवर्तन को एक महासागर के रूप में देखा है जो अनन्त काल से घोर गर्जना करता हुआ उमड़ रहा है और जिसके महाउदर में विश्व की प्रत्येक वस्तु समाती चली जा रही है।[७३] डा० नगेन्द्र के अनुसार (दे० उनकी 'सुमित्रा नन्दन पंत' पुस्तक) पन्त को इस कविता की प्रेरणा बायरन के समुद्र के वर्णन से मिली है।[७४]

जैसा पीछे कहा जा चुका है १९३० के असफल आन्दोलन से भारत में निराशा का अंधकार और भी गहरा हो गया था। इसके कारण कुछ ऐसे हिन्दी कवियों का उदय हुआ जिन्हें हम पराजयवादी अथवा पलायनवादी कह सकते हैं। उन्होंने स्थिति से संघर्ष करने की अपेक्षा उनके सन्मुख आत्म-समर्पण करना अधिक उचित समझा। अतः उनकी वाणी निराशा और अवसाद से भरी है।

दो युद्धों के बीच के काल की एक विशेषता यह है कि हिन्दी कवियों को फिट्ज़जेरल्ड द्वारा किया गया उमर ख़य्याम की रुबाइयों का अनुवाद अधिक रुचिकर लगा। चेस्टरटन ने कहा है कि उमर का दर्शन सुखी व्यक्तियों का दर्शन न होकर दुखी मानव-समाज का दर्शन है। अतः हिन्दी कवियों की उमर ख़य्याम की रुबाइयों में रुचि स्वाभाविक थी। फलतः कुछ ही समय में उमर ख़य्याम की रुबाइयों के अनेक अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हुए।[७५]

---

[७३] वही कविता ३१, पृ० ८०

[७४] Unfathomable sea! whose waves are years
Ocean of time whose waters of deep woe...... etc.

[७५] मैथिलीशरण द्वारा अनुवाद (प्रकाश–पुस्तकालय, कानपुर) १९३१; केशवप्रसाद पाठक का अनुवाद (इन्डियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर) १९३२; बल्देवप्रसाद मिश्र का अनुवाद (नवरत्न—सरस्वती भवन, झलरापाटन) १९३२;

बचन ने 'खय्याम की मधुशाला' के तीसरे संस्करण में लिखा था कि **"इन रुबाइयात के अन्दर एक उद्विग्न और आर्तआत्मा की पुकारहै। एक विषण्ण और विपन्न मन का रोदन है, एक दलित और भग्न हृदय का क्रंदन है।"** ७६

फिट्ज़जेरेल्ड द्वारा किये गये उमर ख़य्याम की रुबाइयों के अनुवाद में हमें इसी विक्षिप्त मन का रोदन मिलता है। फिट्ज़जेरेल्ड के समय का वातावरण निराशावादी काव्य की रचना के सर्वथा अनुकूल था। अतः ए० एच० क्लफ़ (A. H. Clough), मैथ्यू आर्नल्ड (Matthew Arnold), जेम्स टॉमसन (James Thomson), टामस हार्डी (Thomas Hardy) आदि फिट्ज़जेरेल्ड के समकालीन कवियों की कृतियों में यह निराशावादी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस निराशावाद का कारण यह है कि १९वीं शती में स्पेंसर, डार्विन, हक्सले इत्यादि की वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप इंग्लैण्ड के निवासियों की प्राचीन मान्यतायें और मूल्य ढहने लगे थे। अतः विक्टोरियन युग में क्रमशः एक प्रश्नात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि जन समाज में भोगवाद (Hedonism) अथवा भाग्यवाद (Fatalism) की प्रवृत्ति का पोषण आरंभ हो गया। जनता ने भाग्य की निष्ठुरता के सामने अपने को सर्वथा असहाय पाया और उसमें भाग्य के सामने आत्म समर्पण की भावना के साथ क्षणिक सुखों में लिप्त रहने की मानसिक प्रवृत्ति आ गयी। फिट्ज़जेरेल्ड के काव्य में इन दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। यद्यपि उसका स्पष्ट भाग्यवाद जनप्रिय न हो सका, किन्तु उसके भोगवाद का दर्शन (epicurean philosophy) बहुतों को प्रिय लगा।

हिन्दी कविता में फिट्ज़जेरेल्ड के आदर्श को 'बच्चन' ने अपनाया। अतः उनकी कविता आधुनिक निराशावादी काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उन्होंने फिट्ज़जेरेल्ड द्वारा किये उमर खय्याम की रुबाइयों के अंग्रेज़ी अनुवाद का हिन्दी में सफल अनुवाद किया। 'बच्चन' की 'मधुशाला', 'मधुबाला' इत्यादि काव्य कृतियों से हिन्दी काव्य में हालावाद नाम की एक नई प्रवृत्ति चल पड़ी।

गया प्रसाद गुप्ता का किसी बंगला संस्करण से अनुवाद (मेहता पब्लिशिंग हाउस, काशी) १९३३; 'बच्चन' द्वारा अनुवाद, १९३५ इत्यादि।

७६ **'खैय्याम की मधुशाला' (तृतीय संस्करण) भूमिका, पृ० ७**

'बच्चन' की कविता में निराशा की भावना अधिक है। उनके 'आकुल अंतर', 'निशा निमंत्रण', 'एकान्त संगीत' आदि काव्य-संग्रह निराशा और अवसाद से भरे पड़े हैं। कवि एक एकाकी व्यक्ति है जो जीवन के 'संघर्ष में टूट चुका' है :

कितना अकेला आज मैं !
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग से लूटा हुआ !...इत्यादि
('एकान्त संगीत', गीत १००)

उसका तन, मन और जीवन इस निष्ठुर भाग्य की चक्की पर चक्कर काटते-काटते टूट चुका है। उसकी ईश्वर से केवल यही प्रार्थना है कि वह अब इसे इस संसार से मुक्ति दे :

उस चक्की पर खाते चक्कर,
मेरा तन मन जीवन जर्जर,
हे कुम्भकार ! मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो !
('एकांत संगीत', गीत १)

कवि की वेदना तीव्रतम हो उठती है जब उसे अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के अंतिम खंडहर भी टूटते दिखाई पड़ते हैं। उसके सारे विश्वास टूट रहे हैं :

अब खंडहर भी टूट रहा है
महामरण में ही जीवन है
था विश्वास कभी मेरा भी, किन्तु आज वो टूट रहा है।
('एकांत संगीत', गीत ६१)

वह झुलसा और जला हुआ अग्नि देश से आया है :

अग्नि देश से आता हूँ मैं ! ('एकांत संगीत', गीत ७६)

परिस्थितियों का एक गुरु भार उसके ऊपर रखा हुआ है; उसकी स्थिति एक बैल की तरह है जो जुए के नीचे गर्दन डाले हुए है और जो स्वयं कुछ भी कहने में असमर्थ है :

यह गुरु भार उठाना होगा

... ...

तेरी ख़ुशी नाख़ुशी का है
नहीं किसी को ख्याल !
जुए के नीचे गर्दन डाल।
('एकांत संगीत', गीत ६५)

'जुए के नीचे गर्दन डाल' इस कथन में 'बच्चन' के सारे जीवन-दर्शन का सारांश मिलता है। कवि एक पराजयवादी है जो परिस्थिति से संघर्ष करना व्यर्थ समझता है।

'बच्चन' के काव्य में फिट्ज़जेरेल्ड की ही भाँति भोगवाद की भी प्रवृत्ति है। यह भोगवाद जीवन के प्रति संदेहात्मक प्रवृत्ति का ही अन्तिम परिणाम है। 'बच्चन' के लिए यह तन मिट्टी का है; उन्हें आत्मा की अमरता में सम्भवतः विश्वास नहीं। वे इस क्षण भर के जीवन को मस्ती के साथ बिताना चाहते हैं :

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन मेरा परिचय ! ('मधुबाला', पृ० ३८)

'बच्चन' को स्वर्ग अथवा अमरता में विश्वास नहीं है—वे केवल इस संसार में ही विश्वास रखते हैं और इस छोटे से जीवन को सुख से व्यतीत करने के लिए वे प्रबल आकांक्षा रखते हैं :

अमरों ने अमृत दिखलाया
दिखलाया अपना अमरलोक
ठुकराया मैंने दोनों को ! ('मधुबाला', पृ० ३८)

आत्मा की अमरता में अविश्वास की यह भावना हमें भगवती चरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि अन्य छायावादी कवियों में भी मिलती है। मनुष्य परिस्थितियों का दास है और वह उनके ऊपर विजय पाने में सर्वथा असमर्थ है—इस दर्शन का प्रतिपादन भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास में मिलता है। वे अपने इस जीवन दर्शन को अपनी कविताओं में भी व्यक्त करते हैं। वे 'प्रेम संगीत' की भूमिका में लिखते है :

> **"मैं समझता हूँ जीवन एक गति है, और इसीलिए संसार में कोई चीज़ स्थायी नहीं है ! यहाँ कुछ भी निरपेक्ष अथवा** Absolute **नहीं है। प्रत्येक भावना—प्रेम, घृणा आदि—बनती बिगड़ती है।"**

भगवती चरण वर्मा, 'बच्चन', 'नवीन' आदि छायावाद के उत्तर काल के कवि सबसे पहले अहंवादी हैं। वे रूढ़ि और परम्परा के उपासक नहीं हैं। अस्तु 'बच्चन' 'कवि की निराशा', 'कवि की वासना' आदि कविताओं में परंपरागत मान्यताओं का विरोध करते हैं। भगवती चरण वर्मा और 'नवीन' भी अहं के उपासक हैं।

(४) रहस्यवाद

हम देख चुके हैं कि रोमांटिक साहित्य एक विशेष मनोवृत्ति का परिणाम है। यह रोमांटिक प्रवृत्ति वह मनोवृत्ति है जिसके कारण मन वाह्य जगत से पलायन कर अपने अन्तर के तत्वों पर एकाग्र होता है। हिन्दी का छायावादी आन्दोलन भी अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्तन की भाँति इसी विशेष मनोवृत्ति का परिणाम है जिससे कठोर वास्तविकता से पलायन कर मन एक सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता की ओर उन्मुख हुआ।

आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यात्मक प्रवृत्ति छायावाद से परे कोई वस्तु नहीं। वह वस्तुतः उसी मूल मनोवृत्ति का परिणाम है जो छायावादी आन्दोलन के विस्फोट के लिए उत्तरदायी थी और ऐसा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि रहस्यवाद रोमांटिक प्रवृत्ति के विपरीत न होकर उसके अनुकूल ही है। रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए डाक्टर सरकार कहते हैं कि वह सत्य के प्रति बौद्धिक अथवा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण न होकर अनुभूति का दर्शन है। यदि दर्शन (फिलोसफ़ी) अथवा विज्ञान सत्य को तथ्यों के विश्लेषण और उनके अनुभव द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तो रहस्यवाद उसे आत्मा की आन्तरिक उड़ान द्वारा।[७७] इस प्रकार रोमांटिसिज़्म और रहस्यवाद की आधार भूमि एक ही है—घनीभूत मानसिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन। यही कारण है कि अंग्रेज़ी रोमांटिक प्रतिवर्तन के प्रमुख कवि—ब्लेक, वर्ड्सवर्थ और शेली—रोमांटिक होने के साथ रहस्यवादी कवि भी हैं। इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में 'प्रसाद', 'पन्त', 'निराला', महादेवी और रामकुमार छायावाद (जो रोमांटिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है) के कवि होने के साथ रहस्यवादी कवि भी हैं।

रहस्यवाद के मूल में असीम के प्रति वह चेतना है जो मानव स्वभाव में जन्म से ही अन्तर्हित होती है। अतः रहस्यवाद की अनुभूति किसी देश अथवा काल की थाती न होकर समस्त मानवता की वस्तु है। संसार के समस्त व्यक्ति

---

[७७] महेन्द्रनाथ सरकार, 'हिन्दू मिस्टिसिज़्म' (लन्दन १९३४), पृ० २२
Mysticism is an intuitive approach to truth rather than rational and discursive...If philosophy and science seek truth through an analysis of experience and facts, mysticism seeks it through the inward flight of the soul.

किसी न किसी समय एक अलौकिक सत्ता के अस्तित्व का अनुभव करते हैं और उनकी आत्मा उससे अपना संबंध स्थापित करने के लिये प्रेरित होती है।

अतः रहस्यवाद आत्मा की उस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा वह असीम से अपना संबंध स्थापित करना चाहती है। आत्मा की इस प्रवृत्ति का प्रकाशन न केवल रहस्यवाद के वरन् समस्त धर्म तथा दर्शन के मूल में है। केवल इसी के द्वारा मानव एक आध्यात्मिक जगत् की, जो इंद्रियों की पहुँच से सर्वथा परे हैं, अनुभूति प्राप्त कर सकने में समर्थ होता है। रहस्यवादी कवि आत्मा की परमात्मा के लिये खोज तथा अंत में अपने आध्यात्मिक मिलन के अनुभव की अभिव्यक्ति अपने काव्य में करता है।

अतएव रहस्यवाद अनुभूति (intuition) पर आधारित एक व्यक्तिगत अनुभव है। किन्तु धर्म के क्षेत्र में आकर उसकी मूल प्रकृति में बहुधा परिवर्तन आ जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति की स्वयं चेतना प्रामाणिक नहीं रहती और किसी मत अथवा धार्मिक संगठन की शरण असीम की प्राप्ति के लिए अनिवार्य कर दी जाती है। अस्तु डब्लू० आर० इंज के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने आप ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता[७८]—उसके लिये किसी 'चर्च' अथवा धार्मिक संगठन का माध्यम आवश्यक है। अतः रहस्यवाद एक व्यक्तिगत अनुभव की वस्तु न रह कर किसी संस्था (institution) अथवा मत (sect) की वस्तु बन कर गुरुडमवादी (Dogmatic) हो जाता है। इसके विश्वव्यापी स्वरूप का अन्त हो जाता है और विविध मत-मतान्तरों के अन्तर्गत इसके कितने ही स्वरूप निकल आते हैं।

किन्तु इन विविध मत-मतान्तरों के अन्तर्गत रहस्यवाद के अनेक स्वरूपों को हम समस्त मानवता द्वारा अनुभूति-गम्य रहस्यवाद के स्वरूप से सर्वथा पृथक् नहीं कर सकते। सब संस्थाओं अथवा मतों के पीछे यह तथ्य अंतर्हित है कि समस्त मानवता का अनुभव एक ही है। अतः रहस्यवादी अपने काव्य में संस्थागत और वास्तविक रहस्यवाद के दोनों स्वरूपों को इस प्रकार सम्मिलन कर सकता है कि वे एक दूसरे से पृथक् न किये जा सकें।

---

[७८] डब्लू० आर० इंज, 'क्रिश्चियन मिस्टीसिज़्म' (लन्दन १९३३) पृ० ६८
The individual cannot reach his real personality as an isolated unit, he cannot as an isolated unit, attain to full communion with Christ.

अंग्रेजी में ब्लेक और हिन्दी में कबीर इस प्रकार के दो उदाहरण हैं। यद्यपि इन दोनों कवियों का रहस्यवाद अधिकांशतः साम्प्रदायिक (Sectarian) है, किन्तु उसमें रहस्यवाद का वास्तविक स्वरूप भी मिलता है। यही कारण है कि दो विभिन्न देश और काल के रहस्यवादी कवियों में कभी-कभी इतनी समानता मिलती है कि वे एक दूसरे से प्रभावित प्रतीत होते हैं। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि विविध प्रभावों के आदान-प्रदान का कारण भी मानव-अनुभव की समानता ही है। दो विभिन्न विचारधाराओं अथवा मतों का विरोध बहुधा केवल वाह्यरूप ही में होता है। उनके वास्तविक रूप में नहीं। यही कारण है कि दो विभिन्न रहस्यवादी कवियों की वाणी में बहुत कुछ समानता रहती है।

यहाँ पर यह कहना कठिन है कि आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्य-वादी धारा पर किस सीमा तक पाश्चात्य प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य प्रभाव से पूर्व ही भारत को रहस्यवाद को एक समृद्ध परम्परा प्राप्त थी। उपनिषदों और गीता दोनों का ही इतना समृद्ध साहित्य है कि केवल वे ही आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति को पर्याप्त सामग्री दे सकते थे। रोयस के अनुसार तो उपनिषदों में रहस्यवाद की समस्त कथा मिल जाती है।[७९] अतः आधु-निक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति को हम पाश्चात्य प्रभाव का ही परि-णाम नहीं कह सकते। यहाँ पर आधुनिक बँगला काव्य की रहस्यवादी धारा पर पाश्चात्य प्रभाव के विषय में प्रियारंजन सेन का कथन उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है। वे कहते हैं कि यह कहना कि नये साहित्य की रहस्यवादी धारा का उद्‍गम और विकास पाश्चात्य प्रभाव से ही हुआ युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पाश्चात्य प्रभाव से पूर्व बँगला साहित्य में रहस्यवाद की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी। उपनिषद्, वैष्णव सम्प्रदाय, सहजिया, सूफ़ीमत आदि ने काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति को सदा से आवश्यक सामग्री प्रदान की है। अतः अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से हमारे साहित्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति को और भी समृद्ध होने

---

७९ रोयस, 'वर्ल्ड एण्ड द इन्डिविजुअल' पृ० १५६

The Upanishads contain already essentially the whole story of the mystic path.

का अवसर मिल सका ।[८०] बंगाल के नये साहित्य के विषय में यह कथन आधुनिक हिन्दी साहित्य के लिए भी उपयुक्त जान पड़ता है। पाश्चात्य प्रभाव के विषय में हम केवल यह कह सकते हैं कि उससे हिन्दी साहित्य की नवीन रहस्यवादी कविता में कुछ विशेषतायें अवश्य आईं जो कदाचित पहले सम्भव नहीं थीं। किन्तु यहां भी हमारे सामने एक कठिनाई उपस्थित होती है। कबीर के रहस्यवाद में जिसका आधुनिक हिन्दी काव्य पर विशेष प्रभाव पड़ा है, अनेक ऐसी विशेषतायें हैं जो पाश्चात्य रहस्यवाद से साम्य रखती हैं। ईवलिन अन्डरहिल लिखती हैं कि कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर और रामानन्द, दोनों ईसाई विचार-धारा से प्रभावित थे, किन्तु इस विषय में विद्वानों के बीच बहुत मतभेद हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि उनके सिद्धांतों में विभिन्न धार्मिक संस्कृतियों की दो अथवा तीन विरोधी विचारधाराओं का वैसा ही सम्मिलन है जैसा प्रारम्भिक काल के ईसाई धर्म में यहूदा और यूनानी विचारधाराओं का था। यह कबीर की प्रतिभा का परिणाम है कि वे अपनी कविताओं में इन विरोधी तत्वों का सुन्दर समन्वय उपस्थित कर सके।[८१]

---

[८०] प्रियारंजन सेन, 'वेस्टर्न इन्फ्लूयेन्स इन बँगाली लिट्रेचर' पृ० ३६२-३६३

It is not tenable, no doubt, to hold that all mysticism that we find in the new literature is Western in origin; there has been a strong current of mysticism in Bengali literature prior to its contact with the West; the Upanishads, Vaishnavism, Sahajiya, Sufism, all these have fed the mystic tendency in the literature and all that may be said in this connection is that an acquaintance with the literature of the West in its turn added its quota.

[८१] 'हन्ड्रेड पोइम्स आव कबीर' रवीन्द्रनाथ द्वारा अनुवादित, भूमिका लेखक ईवलिन अन्डरहिल, पृ० ७-८

Some have regarded both (Kabir and Ramanand) these religious teachers as influenced by Christian thought and life, but as this is a point upon which competent authorities hold divergent views, its discussion is not attempted here. We may safely assert, however, that in their teachings two, perhaps three—apparently antagonistic streams of intense spiritual culture met, as Jewish and Hellenistic thought met in the early Christian church : and it is one of the outstanding

अतः, यहाँ पर हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा में आध्यात्मिक विवाह की भावना, जो कबीर के रहस्यवाद और ईसाई रहस्यवाद दोनों में मिलती है, का विकास कबीर, रवीन्द्रनाथ टैगोर और पाश्चात्य रहस्यवादी कवियों के प्रभाव त्रय द्वारा हुआ।

हिन्दी काव्य की आधुनिक रहस्यवादी धारा की एक मुख्य विशेषता यह है कि वह मध्ययुगीन साम्प्रदायिक रहस्यवाद की परम्परा से पृथक् जा पड़ती है। मध्ययुग के सन्त कवियों का रहस्यवाद साम्प्रदायिक था और उनकी रचनाओं से विभिन्न मत-मतान्तरों के सिद्धांन्तों का प्रतिपादन होता था। नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय के रहस्यवादी कवि, जायसी, कुतबन आदि कवियों की वाणी सदैव साम्प्रदायिकता ही लिए होतीथी। कबीर का काव्य भी, जो अधिकांशतः उनकी स्वयं की प्रतिभा का परिणाम है, अनहद नाद, षट्चक्र, इड़ा-पिंगला, कुंडलिनी इत्यादि के प्रसंगों से युक्त होने के कारण साम्प्रदायिक ही है। यही कारण है कि कबीर के काव्य में गीतात्मकता का अभाव है। महादेवी कहती हैं कि "**कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर उनके विचार ध्वनित होते हैं, भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है।......... कबीर का रहस्यवाद यौगिक क्रियाओं से युक्त होने के कारण योग है।**"[८२] आज का रहस्यवादी कवि इस प्रकार का काव्य नहीं लिखता। यहां पर भी आधुनिक हिन्दी की रहस्यवादी प्रवृत्ति पर अंग्रेजी के शेली, वर्ड्सवर्थ आदि असाम्प्रदायिक कवियों का प्रभाव है। अतः हम देखते है कि हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी कवियों का काव्य अनुभूति-प्रधान है और उनकी अभिव्यक्ति का ढंग गीतात्मक है।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति असाम्प्रदायिक है और यदि वह कभी किसी मत अथवा विचारधारा से सामग्री लेती भी है तो उसके रूप में इस प्रकार परिवर्तन कर देती है कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय की वस्तु न रहकर समस्त मानवता की वस्तु बन जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत अब हम आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति की उन विशेषताओं पर, जिनका प्रादुर्भाव अथवा विकास पाश्चात्य

---

characteristics of Kabir's genius that he was able in his poems to fuse them into one.

[८२] महादेवी वर्मा, 'यामा' (तृतीय संस्करण), भूमिका पृ० ७

प्रभाव द्वारा हुआ है, प्रकाश डाल सकते हैं। अतः यहाँ पर हम हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता के प्रधान विषयों और उपादानों पर विचार करेंगे।

(क) बालक:—आधुनिक रहस्यवादी हिन्दी काव्य में बालक की नवीन भावना का विकास अंग्रेज़ी रोमांटिक कवि, ब्लेक और वर्ड्सवर्थ, के प्रभाव के द्वारा हुआ। ब्लेक के 'सौंग्स आव इन्नोसेंस' और वर्ड्सवर्थ की 'ओड टु द इन्टीमेशन्स आव इममोर्टेलटी' में बाल्यावस्था को अत्यधिक महत्व दिया है। शिशुओं की तोतली बोली के द्वारा ब्लेक ने इस संसार के सौंदर्य के विषय में अपने कौतूहल को व्यक्त किया है। कवि और शिशु का यह तादात्म्य इतना अधिक है कि ब्लेक बालक के विषय में कहते-कहते स्वयं एक बालक बन जाता है।

वर्ड्सवर्थ के काव्य में भी बालक को उच्च स्थान दिया गया है। वर्ड्सवर्थ फ्रांसीसी क्रान्ति के उपरांत ही मानवता का कवि बना था। फ्रांसीसी क्रांति में किए गये अमानुषिक अत्याचारों से वर्ड्सवर्थ का मानवता के प्रति विश्वास उठ-सा गया था। किन्तु अपनी बहिन डोरथी और कवि कोलरिज के प्रभाव से वह पुनः मानवता के प्रति उन्मुख हुआ। परन्तु इस बार उसकी मानवता राजनीतिज्ञों और अमीरों की मानवता न थी। नागरिक जीवन से अछूते ग्रामीण व्यक्ति और बालक, जिनकी भावनाएँ संसार की निर्दयता और वीभत्सता से दूषित न हुई थी, अब उसके काव्य के प्रिय विषय बने।

अपनी 'इममोर्टेलटी ओड' में वर्ड्सवर्थ ने बाल्यावस्था को अत्यंत ऊँचा स्थान दिया है। वह बालक को 'महान् दार्शनिक', 'गम्भीर तत्ववेत्ता', 'मानवता का पिता' आदि नामों से संबोधित करता है। उसका बालक विश्व के रहस्य को जानता है और वह वयस्क मनुष्यों की अपेक्षा स्वर्ग के अधिक निकट है। अतः वर्ड्सवर्थ बालक में एक गम्भीर रहस्य को पाता है।

हिन्दी में सुमित्रानन्दन पन्त पर ब्लेक और वर्ड्सवर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है। हिन्दी कवियों में केवल उन्होंने बाल्यावस्था में एक गम्भीर रहस्य पाया है। वर्ड्सवर्थ के बालक को अपनी स्वर्गिक उत्पत्ति के विषय में ज्ञान है, और वह जन्म से पहले की सुखद स्मृतियों में मग्न है :

> The soul that rises with us,our life's star,
> Hath had elsewhere its setting,
> And cometh from afar.
> Not in entire forgetfulness
> And not in utter nakedness
> But trailing clouds of glory do we come
> From God...('Immortality Ode')

इसी प्रकार पन्त के बालक के अधरों पर भी किसी अतीत की स्मृति का मृदु हास अंकित है :

> **बालक के कम्पित अधरों पर**
> **किस अतीत स्मृति का मृदु हास,**
> **जग की इस अवरत निद्रा का**
> **करता नित रह रह उपहास ?...**इत्यादि ('पल्लविनी' पृ० ३)

वड्‌सवर्थ की ही भाँति पन्त भी बालक को 'गूढ़', 'गहन', 'अज्ञात' और 'निरुपम' के नामों मे संबोधित करते हैं :

> **कौन तुम गूढ़, गहन, अज्ञात**
> **अहे निरुपम नवजात ।** ('पल्लविनी', पृ० ४४)

वड्‌सवर्थ ने बालक को वयस्कों की अपेक्षा स्वर्ग के अधिक समीप पाया था । पन्त भी बाल्यावस्था के दिवसों की स्मृति कर व्याकुल हो उठते हैं और वे उन्हें पुनः लौटा लाना चाहते हैं :

> **चित्रकार क्या करुणा कर फिर**
> **मेरा भोला बालापन**
> **मेरे यौवन के अंचल में**
> **चित्रित कर दोगे पावन ।** ('पल्लविनी', पृ० ४०)

वे सोचते हैं कि उनकी बाल्यावस्था का सुन्दर गान यौवन के मादक हाथों द्वारा छीन कर छिन्नभिन्न कर डाला गया है :

> **यौवन के मादक हाथों ने**
> **इस कलिका को खोल अजान**
> **छीन लिया हा, उसे बिन्दु सा**
> **मेरा मधुमय तुतला गान ।** ('पल्लविनी', पृ० ४०)

पन्त ने ब्लेक की ही भाँति अपनी हर्ष, प्रेम और दया की भावनाओं को बाल्यावस्था के वर्णन में व्यक्त किया है । ब्लेक की भाँति पंत की कविता में बच्चों की तुतली वाणी सुनने को मिलती है । 'काला बादल', 'कृष्णा', 'आशंका' आदि कविताओं में बालक स्वयं अपनी भावनाएँ व्यक्त करता हुआ मिलता है । ये सब कवितायें स्वयं पन्त की कोमल, सुन्दर और स्नेहासिक्त भावनाओं की प्रतीक हैं और उनके मानव स्वभाव की अच्छाई में विश्वास की परिचायिका हैं । उनका बालक संसार की कलुषता से अछूता है; उसका हृदय उस नभ की भाँति उज्ज्वल है जिस पर ज्योत्सना का प्रकाश छिटका हुआ है :

कुमुदकला है जहाँ किलकवी
वह नभ जैसा निर्मल है,
मैं वैसी ही उज्ज्वल हूँ मां
काला तो यह बादल है। ('पल्लविनी', पृ० ३३)

अतः अंग्रेज़ी काव्य के प्रभाव के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति में हम बालक के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का विकास देखते हैं।

(ख) प्रकृति:—सच्चे रहस्यवादी के लिए प्रकृति अपना स्वयं का अस्तित्व रखने के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की भी प्रतीक है। डब्लू० आर० इंज लिखते हैं कि रहस्यवादी के लिए समस्त प्रकृति एक वाणी स्वरूप है जिसके द्वारा ईश्वर अपनी भावनाओं को प्रकट करता है। अतः प्रकृति एक प्रकार का झीना आवरण है जो परमात्मा को आधा छिपाये और आधा व्यक्त किए है; और यही कारण है कि हम प्रकृति को परमात्मा का प्रतीक कह सकते है।[२३] प्रकृति के प्रति यह भावना हमें विशेषकर अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों में प्राप्त होती है। वर्ड्सवर्थ के अनुसार प्रकृति एक मृत पदार्थ न रह कर एक रहस्यमयी सत्ता बन जाती है जो समस्त विश्व का संचालन करती है:

A motion and a spirit that impels
All thinking things, all objects of all thought
And rolls through all things.

यह सर्वचेतनवाद (Pantheism) है जिसका अनुभव वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति के प्रति अपने प्रेम की तीसरी अवस्था में किया था। वर्ड्सवर्थ के लिए प्रकृति एक क्रियाशील सिद्धांत है जो समस्त सृष्टि का संचालन करता है:

It circulates the soul of the world.

अतः वर्ड्सवर्थ के काव्य में हमें एक ऐसी सृष्टि के दर्शन होते हैं जो आत्मा से ओतप्रोत है। ईश्वर और प्रकृति वर्ड्सवर्थ के लिए एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

---

[२३] डब्लू० आर० इन्ज, 'क्रिश्चियन मिस्टिसिज़्म', पृ० २५०

All Nature is the language in which God expresses His thoughts. Nature half-conceals and half-reveals the Deity; and it is in this sense that it may be called a symbol of Him.

शैली ने भी प्रकृति को इस सृष्टि की आत्मा कहा है और उसे जीवन शक्ति के रूप में देखा है। वह अपने काव्य में ईश्वर शब्द का बहिष्कार करता है और उसके स्थान पर प्रकृति को प्रतिष्ठित करता है। अतः उसका अनीश्वरवाद उसका सर्वचेतनवाद ही है। उस एक सत्ता का अनुभव उसे प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में होता है। उसके लिए केवल वही एक चिरन्तन सत्य है और शेष सब अस्थायी और परिवर्तनशील ('The one remains, the many change and pass'—Adonais) हैं। वही एक प्रकाश समस्त विश्व पर स्मित बिखेरता ('Light whose smile kindles the universe'—Adonais) और वही एक सौन्दर्य समस्त पदार्थों को गति प्रदान करता ('Beauty in which all things work and move'—Adonais) है।

अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों के इस सर्वचेतनवाद का आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति पर भी प्रभाव पड़ा है। महादेवी का यह कथन—**"जब प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम और दूसरा ससीम हृदय में समाया था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा"**[८४]—आधुनिक हिन्दी काव्य के सर्वचेतनवादी दृष्टिकोण का प्रमाण है। जयशंकर 'प्रसाद', पन्त, महादेवी, 'निराला' आदि रहस्यवादी कवि सर्वचेतनवादी हैं। 'प्रसाद' की 'कामायनी' के अंश इस सर्वचेतनवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। वह प्रकृति के पदार्थों में किसी विराट् विश्व के स्वामी की सत्ता का आभास पाते हैं :

हे विराट्, हे विश्वदेव तुम कुछ हो ऐसा होता भान !

('कामायनी', पृ० २६)

उस अनन्त रमणीय दैविक सत्ता के रूप का विचार कवि को उद्विग्न कर देता है; वह कैसा है, क्या है आदि 'प्रश्नों का भार कवि का विचार सह सकने में असमर्थ हो गया' है :

हे अनन्त रमणीय कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो, क्या है, इसका तो भार विचार न सह सकता।

('कामायनी', पृ० २६)

---

[८४] महादेवी वर्मा, 'यामा' (तृतीय संस्करण) पृ० ८

प्रकृति और पुरुष का संबंध पन्त की 'मौन निमंत्रण' कविता में भी मिलता है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु कवि को आमंत्रित करती-सी प्रतीत होती हैं—निशा के तिमिर में नक्षत्र उसे आमंत्रित करते, आकाश में विद्युत् उसे बुलाता, कलियों का सौरभ उसे संदेश भेजता, सागर की लहरें उसे मानों हाथ उठाकर निमंत्रित करतीं, और खद्योत उसे मार्ग दिखाते हैं।[८९]

महादेवी भी उस अलौकिक सत्ता का दर्शन विद्युत् तथा शशि किरणों में करती हैं :

मेघों में विद्युत् की छबि
उनकी बनकर मिट जाती
... ...
वे आभा बन खो जाते
शशि किरणों की उलझन में।

किन्तु कभी-कभी प्रकृति उनके असीम की खोज के मार्ग में बाधा बन कर आ जाती है—वे क्षितिज कारा को तोड़कर उसके पार देखने की इच्छुक हैं :

तोड़ दो यह क्षितिज कारा, झाँक लूँ उस पार क्या है ?

महादेवी की ही भाँति 'निराला' भी इस तम के पार बसने वाले सत्य को जानना चाहते हैं :

कौन तम के पार ? रे कह !

('गीतिका', पृ० १४)

'रूखी डाल' कविता में 'निराला' रूखी डाल को पार्वती का प्रतीक बनाकर उसे शिव के लिए तपस्या में रत दिखाते हैं।[९६]

रामकुमार वर्मा ने भी प्रकृति के प्रतीक का प्रयोग किया है। वह फटे हुये आकाश के बादलों में उस अलौकिक सत्ता का हास देखते हैं :

यह तुम्हारा हास आया !
इन फटे से बादलों में
कौन सा मधुमास आया ?

('आधुनिक कवि' ३, पृ० ३४)

उस असीम का सौन्दर्य उन्हें ओस बिन्दुओं में, और उसका संगीत उसे विहंगों के कण्ठों में मिलता है :

---

[८९]सुमित्रानंदन पन्त, 'आधुनिक कवि' (तीसरा संस्करण) पृ० ३०-३२

[९६]'निराला', 'गीतिका', (तीसरा संस्करण, सं० २००५) पृ० १६

ओसों का हँसता बाल रूप यह
किसका है छविमय विलास ?
विग विहंगों के कण्ठों में समोद यह
कौन भर रहा है मिठास ?

('आधुनिक कवि', ३, पृ० ३७)

वातायन से आने वाला एक खद्योत उन्हें उस असीम का 'उज्ज्वल' संकेत लाते हुए प्रतीत होता है :

उसी समय खद्योत एक आता वातायन द्वारा
मैं क्या समझूँ मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा !

('आधुनिक कवि', ३, पृ० ४२)

अतः हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता में प्रकृति एक अलौकिक सत्ता के प्रतीक रूप में चित्रित की गयी है।

(ग) आध्यात्मिक प्रेम और विवाह—ईवलिन अन्डरहिल के अनुसार आत्मा की प्रमुख प्रवृत्तियां ये हैं— प्रथम, आत्मा की वह प्रवृत्ति जिसके द्वारा वह अपने खोये हुये घर ('lost house') की खोज करने के लिए प्रेरित होती है, और जो व्यक्ति को एक तीर्थयात्री बना देती है; द्वितीय, आत्मा की वह प्रवृत्ति जिससे वह अपने एक साथी की कल्पना करती है और जो उसे एक प्रेमी बना देती है; और तृतीय, आत्मा की वह प्रवृत्ति जिससे वह अपनी आन्तरिक शुद्धि के लिये प्रेरित होती है और जो व्यक्ति को एक सन्यासी बना देती है।[८७] किन्तु यह आवश्यक नहीं कि आत्मा की ये तीन प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से पृथक् ही रहें; वे बहुधा एक दूसरे में गुँथी भी रहती हैं। अस्तु, आत्मा के उस चित्र में जिसमें वह सब सांसारिक इच्छाओं और आकाँक्षाओं से मुक्त हो अपने साथी की खोज में यात्रा करती हुई दिखाई जाती है, इन प्रवृत्तियों का सम्मिलन मिलता है। ध्यान देने पर ज्ञात होगा कि इन तीनों प्रवृत्तियों के मूल में प्रेम की भावना है। आत्मा की इस अन्तर्हित प्रवृत्ति के प्रकाशन के द्वारा ही वह परमात्मा को प्राप्त करने के लिये उन्मुख होती है। एक रहस्यवादी का कहना है कि रहस्यवाद अज्ञात को बिना किसी तर्क के ज्ञात करने का दावा रखता है; उसका विश्वास है प्रेम और इच्छा-शक्ति द्वारा वह एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है

---

८७ ई० अन्डरहिल, 'मिस्टीसिज़्म' (११ वाँ संस्करण), पृ० १५१

जहाँ पर अकेला विचार जाने में सर्वथा असमर्थ है; क्योंकि जिस प्रकार पैर इस शरीर को ले चलते है उसी प्रकार प्रेम आत्मा को।८८

अतः रहस्यवाद में प्रेम को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसका एक सुन्दर उदाहरण सूफीमत में मिलता है जिसमें परमात्मा को स्त्री का रूप दिया गया है और आत्मा को पुरुष का। आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिये यात्रा करती दिखाई गयी है। इस यात्रा की चार अवस्थायें हैं जिन्हें पार करने पर ईश्वर की प्राप्ति सम्भव हो पाती है। अन्तिम अवस्था में आत्मा प्रेम से ओत प्रोत हो जाती है और तब उसका परमात्मा से मिलन होता है। प्रेमी आत्मा और प्रेमिका परमात्मा का यह मिलन समाधि (trance) की अवस्था में होता है जिसमें रहस्यवादी की इन्द्रियां अपना-अपना कार्य भी भूल जाती हैं।

भारतीय रहस्यवाद में प्रेम के तत्व की प्रधानता केवल माधुर्य भक्ति में है। किन्तु इसमें आत्मा को स्त्री का रूप और परमात्मा को पुरुष का रूप दिया गया है। मीराबाई का काव्य इस माधुर्य भक्ति का अच्छा उदाहरण है। यहाँ पर ध्यान रहे कि इस भक्ति में परमात्मा का स्वरूप निर्गुण न होकर सगुण है।

आत्मा का वधू के रूप में अपने वर निर्गुण ब्रह्म के लिए व्याकुल होने का चित्र ईसाई रहस्यवाद का अंग रहा है। यह भावना बराबर ईसाई रहस्यवादी सन्तों की कृतियों में मिलती है। अस्तु, जार्ज हर्बट (George Herbert) लिखता है कि तुम मेरे हो जाओ, और फिर भी मुझे अपना बना लो, अथवा तेरा और मेरा का विचार ही न रहने दो।

O, be mine still, still make me thine
Or rather make no thine or mine.

अतः इस आध्यात्मिक विवाह में आत्मा और परमात्मा का भेद ही समाप्त हो जाता है।

---

८८ रेसेजक (Recejac) का कथन, ई० अन्डरहिल की उपर्युक्त पुस्तक में उद्धृत, पृ० १०३

Mysticism claims to be able to know the unknowable without any help from Dialectics; and believes that by the way of love and will, it reaches a point to which thought alone is unable to attain......'for the feet carry the body as affection carries the soul.'

सम्भवतः कबीर हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने इस आध्यात्मिक विवाह के ईसाई धर्म में प्रचलित प्रतीक का प्रयोग किया। यह बहुत सम्भव है कि कबीर ने सूफीमत और माधुर्य भक्ति का सम्मिलन कर इस विशेष प्रतीक को निकाला हो। किन्तु इसी कारण अनेक विद्वानों ने कबीर को ईसाई मत से प्रभावित कहा है। रवीन्द्रनाथ द्वारा अनुवादित कबीर की कविताओं के संग्रह की ईवलिन अन्डरहिल द्वारा लिखी भूमिका से इस संबंध में एक उद्धरण हम पीछे दे चुके हैं। इस सम्बन्ध में किसी निश्चित मत तक पहुँचना हमारे लिये कठिन है, अतएव हम इस चर्चा को यहीं समाप्त करेंगे।

आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव बहुत कुछ रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जलि' के प्रभाव के कारण हुआ। रवीन्द्रनाथ न केवल भारतीय रहस्यवादी कवियों से, विशेषतया कबीर से, प्रभावित थे, वरन् वे योरोप की समस्त रहस्यवादी काव्यधारा से परिचित थे। उन्होंने योरपीय रहस्यवादियों विशेषकर शेली, फ्रांसीसी प्रतीकवादियों और बाइबिल से पर्याप्त प्रेरणा ली। जैसा प्रियारंजन सेन कहते हैं उनके काव्य में ईसाई-रहस्यवाद के अनेक बिम्ब और प्रतीक मिलते हैं।[८९] अस्तु, हम निःसंकोच कह सकते है कि हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता में आध्यात्मिक प्रेम और विवाह की मूल प्रेरणा रवीन्द्रनाथ के माध्यम द्वारा ईसाई रहस्यवाद और अंग्रेजी रहस्यवादी कवियों से आई हैं।

अन्डरहिल ने रहस्यवाद के पाँच पक्षों का वर्णन किया है।[९०] प्रथम पक्ष है जाग्रति (awakening) जिसमें आत्मा परमात्मा के विषय में चेतन हो जाती है और चरम आनन्द का अनुभव करती है; दूसरा पक्ष है स्वय-ज्ञान अथवा शुद्धि (purgation) का जिसमें आत्मा अपनी ससीमता और अपूर्णता को पहचानती है और अपने पर नियंत्रण करती है; तीसरा पक्ष है बोध (illumination) का जिसमें आत्मा एक विचारावस्था में होती है और परमात्मा का दर्शन करती है, और इस प्रकार हर्षातिरेक की स्थिति का अनुभव करती है। उसके उपरान्त आत्मा की अन्धकारमय रात्रि (Dark night of the soul) अथवा रहस्यवादी वेदना (mystic pain) आती है जिसमें वह परमात्मा की अनुपस्थिति का अनुभव करती है। अन्त में दैवी दृश्य (vision) की स्थिति है जिसमें आत्मा और परमात्मा का पूर्णतया मिलन हो जाता है।

---

[८९] प्रियारंजन सेन, 'वेस्टर्न इनफ्लूयेन्स इन बंगाली लिट्रेचर' पृ० ३६३

[९०] ई० अन्डरहिल, 'मिस्टिसिज़्म' पृ० २०५

अतः हम देखते हैं कि आत्मा की परमात्मा तक की यात्रा में हर्ष और वेदना की एक दूसरे के बाद स्थितियाँ आती हैं।

हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी कवियों ने इन हर्ष और वेदना दोनों की स्थितियों का वर्णन किया है। 'प्रसाद', पन्त, महादेवी, 'निराला' और रामकुमार ने इस आध्यात्मिक विरह और मिलन के गीत गाये हैं। 'प्रसाद' ने 'आँसू' में इसी विरह की रात अथवा रहस्यवादी वेदना को अंकित किया है :—

बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र लोक है फैला जैसे इस नील निलय में,
ये सब स्फुलिंग हैं मेरी इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल मेरे इस महा मिलन के !

'प्रसाद' की यह 'आँसू' कविता एक प्रेम-काव्य है, किन्तु उसमें रहस्यवाद की धारा प्रारम्भ से अन्त तक बढ़ती हुई प्रतीत होती है। 'महा-मिलन' शब्द का प्रयोग आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है।

किन्तु आध्यात्मिक प्रेम की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हमें सम्भवतः महादेवी की कविताओं में मिलती है। स० ही० वात्सायन महादेवी के काव्य के विषय में कहते हैं कि रहस्यवादी असीम की खोज में एक अनन्त यात्रा के लिये चल पड़ता है, वह अपने असीम प्रेमी के मिलन की आकांक्षा में आतुर हो अपने सांसारिक बन्धनों को तोड़ देता है और स्वयं असीम बन जाता है जिसकी उसे खोज होती है। अतः वह रहस्यवादी काव्य सत्य होता है जिसमें व्यक्ति की चेतना परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर असीम को स्पर्श करती हुई दिखाई पड़ती है। महादेवी का काव्य इस कसौटी पर खरा उतरता जान पड़ता है और उसमें सच्चे रहस्यवादी की भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है।[९१] महादेवी

---

[९१] वात्सायन, "मोडर्न हिन्दी पोइट्री", 'विश्व भारती क्वार्टर्ली' अगस्त १६३७ और नवम्बर १६३८

The mystic is a man of God. He has an endless quest—the quest of the Infinite—yet the quest is endlessly providing its own satisfaction. In the very intensity of his desire for communion with the Infinite lover, the mystic's being disrupts its earthly shackles and becomes the Infinite that

की अनुभूति की यह तीव्रता हमें कभी-कभी अंग्रेज़ी के कवि ब्लेक का स्मरण करा देती है। ब्लेक के विषय में डब्लू० जे० कोर्टहोप लिखते हैं कि उसका काव्य रहस्यात्मक अनुभूति को स्पष्ट प्रतीकों और बिम्बों द्वारा ऐसी रूपरेखाओं में व्यक्त करता है जो चित्रकला के ही अनुरूप है।[९२] ब्लेक और महादेवी एक दूसरे से चित्रकार होने के नाते और भी अधिक समीप हैं। महादेवी ब्लेक की ही भाँति अपनी भावनाओं को शब्द और रंग दोनों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। किन्तु ब्लेक और महादेवी के काव्य का साम्य जितना बाह्य रूप में है उतना आन्तरिक रूप में नहीं। ब्लेक के काव्य के पीछे एक सच्चे रहस्यवादी का हृदय है जिसने अपना समस्त जीवन असीम की खोज में अर्पित कर दिया था। महादेवी की रहस्यानुभूति में उनके जीवन के कुछ क्षणों का अनुभव भले ही हो, किन्तु समस्त जीवन की साधना नहीं। हम उन मनोविश्लेषणवादी आलोचकों का समर्थन नहीं करते जो महादेवी के काव्य को उनके व्यक्तिगत जीवन की कुंठाओं का परिणाम मानते हैं। महादेवी की रहस्यानुभूति झूठी नहीं, किन्तु इसे मीरा, कबीर, ब्लेक आदि संत कवियों की अनुभूति के समकक्ष बताना भी युक्तिसंगत नहीं।

महादेवी के काव्य में एक अज्ञात प्रियतम की अनवरत आराधना है। जैसा विनय मोहन शर्मा कहते हैं[९३] महादेवी के समस्त काव्य की प्रेरणा

---

it seeks. Mystic poetry, therefore, is true if it communicates to us the awareness of the Infinite emerging from the shackles of circumstance, false if it does not. Mahadevi Verma's poetry is likely to Lead the casual reader to the conclusion that, judged on the criterion at any rate, she is a true mystic, one can find her seeking to express the whole gamut of emotions to which we expect the mystic to be subject.

[९२]डब्लू० जे० कोर्टहोप, 'ए हिस्ट्री आव इंग्लिश पोइट्री', वालूम vi (१९१३) पृ० ५२

His poetry embodies an attempt to express abstract mystical sentiment in metrical language characterised, as far as possible, by the clear imagery and outline proper to the art of painting.

[९३] शचीरानी गुर्टू (सम्पादिका) 'महादेवी वर्मा' (१९५१) पृ० ६४

(impulse) इन दो पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है :—

मैं कण कण में ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।

('दीपशिखा', पृ० ३३)

महादेवी का काव्य विरह का एक लम्बा गीत है। उनके कवि की आत्मा सदैव एकाकिनी विरहणी है जो अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में पाँवड़े बिछाये एक टक बैठी रहती है। वह आज शृंगार कर अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में बैठी हुई है। उसके अंग-अंग में मधुमास खिल उठा है, उसके सजल रोम प्रियतम के मार्ग में पाँवड़े-से बिछे हैं। उसके जीवन का प्रत्येक निमिष उनके प्रियतम के लिए संदेश ले जाने में निरत है। वह प्रश्न करती है कि क्या उसे अब भी प्रियतम की मधु राग वाली मुरलिका सुनने को न मिलेगी:—

मैं बनी मधुमास आली...
सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधु स्नात से
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधुराग वाली ? ('यामा', पृ० २०३)

प्रियतम के आने पर उसका आह्लाद अत्यधिक हो उठता है। इस आह्लाद की अभिव्यक्ति महादेवी की अनेक कविताओं में मिलती है। नभ को मुस्काता देख कर प्रेमिका को अपने प्रियतम के आने का आभास होता है। उसका रोम-रोम प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में पुलकित हो उठा है :—

मुस्काता संकेत भरा नभ क्या प्रिय आने वाले ही हैं ? ..इत्यादि

('यामा', पृ० १७६)

किन्तु अधिकतर महादेवी ने विरह की वेदना को ही व्यक्त किया है। उनकी विरहणी यह नहीं जानती कि प्रियतम को किस प्रकार वह पा सकने में समर्थ हो सकती है :—

अलि कैसे उनको पाऊँ ? ('यामा', पृ० १०६)

वह प्रियतम के वियोग में अपने तन और मन दोनों गला चुकी है :

मोम सा तन घुल चुका, अब दीप सा मन घुल चुका है।

('दीप शिखा', पृ० २३)

उसे विरह के पन्थ का आदि और अन्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है :

अलि विरह के पन्थ पर तो इति न अथ मैं जानती रे !

('दीप शिखा', पृ० १६)

बहुधा महादेवी के काव्य में असीम और ससीम का अन्तर भी मिट जाता है। वह कहती हैं कि मैं तुम्हारी बीन हूँ और रागिनी भी हूँ[१४] अथवा हे प्रियतम ! तुम मुझमें हो तो फिर परिचय की क्या आवश्यकता; तुम चित्र हो मैं रेखाक्रम, तुम असीम हो और मैं सीमा का भ्रम, तो फिर प्रेयसी और प्रियतम का अभिनय करने की आवश्यकता ही क्या।[१६]

महादेवी जन्म को विरह की रात मानती है—इसी जन्म ने उन्हें उनके प्रियतम से प्रथक् कराया था :

जन्म ही से उसे विरह की रात
सुनावे क्या वह मिलन प्रभात ? ('यामा', पृ० ९३)

वड्‌सवर्थ ने भी इसी प्रकार जन्म को उसे उसके स्वर्गीय गृह से पृथक् करने का कारण माना था। उसकी आत्मा का निवास इस संसार में नहीं है किन्तु वह किसी सुदूर देश से आई है।

Our birth is but a sleep and a forgetting,
The soul that rises with us, our life's star
Hath had elsewhere its setting
And cometh from afar. ('Immortality Ode')

'निराला' पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है। उनकी 'अनामिका' (दूसरा संस्करण) में रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताओं के अनुवाद हैं। अपने वर की प्रतीक्षा में निमग्न वधू के चित्र का प्रतीक बहुधा उनके काव्य में आता है। प्रेयसी अपने प्रिय के पथ पर चलती है, किन्तु जग उसका उपहास करता है। उसने अपने प्रिय की पग-ध्वनि सुन ली है और अब उसका पीछे लौट जाना असम्भव है। उसका अंग-अंग आह्लाद से पुलकित हो उठा है :

मौन रही हार
प्रिय पथ पर चलती
सब कहते शृंगार...इत्यादि ('गीतिका', पृ० ८)

'तुम जावगे चले' कविता में वड्‌सवर्थ के विचारों की प्रतिध्वनि मिलती है। समस्त कविता प्रतीकात्मक शैली में लिखी गयी है। प्रात (जन्म) होने

---

[१४] महादेवी वर्मा, 'यामा' (३रा संस्करण, सं० २००८) पृ० ९३
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ...इत्यादि
[१६] वही, पृ० १४३
तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या ?...इत्यादि

पर प्रियतम (ईश्वर) का प्रेयसि (आत्मा) से वियोग हो जाता है। रात्रि (जन्म से पहले) में वे दोनों एक दूसरे के समीप थे। किन्तु आलोक (माया) के फूटते हीं उन दोनों पर भेद छा गया और वे विलग हो गये :

हुआ प्रात प्रियतम तुम जावगे चले ?
कैसी थी रात, बन्धु, थे गले गले
फूटा आलोक,
परिचय परिचय पर जग गया भेद, शोक !

('गीतिका', पृ० ६६)

एक दूसरी कविता में प्रेयसी अपने प्राण-धन का स्मरण करके नयनों से अश्रु बहा रही है।

प्राण धन को स्मरण करते
नयन झरते, नयन झरते ! ('गीतिका', पृ० ५२)

आध्यात्मिक प्रेम और विवाह की भावना पन्त जी की 'छाया' कविता में भी मिलती है। जिस प्रकार छाया तरु की दासी है, उसी प्रकार पन्त की प्रियतमा (आत्मा) अपने प्रिय (ब्रह्म) की अनुगामिनी है :

तुम इस तरुवर की छाया हो
मैं उनके पद की छाया ! ('पल्लविनी', पृ० २५)

रामकुमार के काव्य में भी हमें उनकी रहस्यानुभूति के दर्शन होते हैं। वे यहाँ पर प्रियतम से मिलने पर प्रेयसी के आह्लाद का चित्रण करते हैं :

जब तुम आये हो एक बार !
तब मैंने जाना है, जीवन बन
गया मिलन का एक द्वार !

('आधुनिक कवि', ३, पृ० १२)

किन्तु वे आध्यात्मिक विरह की वेदना को भी जानते हैं। प्रेम मिलन की बात तो जैसे अब एक स्वप्न मात्र रह गयी है :

देव मैं अब भी हूँ अज्ञात
एक स्वप्न बन गई हमारे प्रेम मिलन की बात !

('आधुनिक कवि', ३, पृ० ३३)

अतः हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनके प्रादुर्भाव और विकास का श्रेय अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव को है। बालक के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का विकास,

प्रकृति का एक अलौकिक सत्ता के प्रतीक रूप में प्रयोग और आध्यात्मिक प्रेम एवं विवाह की भावना का विकास आदि विशेषतायें हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता में पाश्चात्य रहस्यवादी कवियों के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव से आई हैं।

विज्ञान का प्रभाव

भारतीय विचारधारा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का श्रेय अंग्रेज़ी प्रभाव को ही है। भारत की नवीन संस्कृति वस्तुतः विज्ञान की ही संस्कृति थी और हमारे साहित्य पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।

भारत में यह वैज्ञानिक संस्कृति लेखकों और कवियों को अधिक आकर्षित न कर सकी। बहुतों ने इस कल और यन्त्रों की संस्कृति का विरोध किया और उसे एक ऐसी शक्ति के रूप में देखा जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास को रुद्ध करने में संलग्न थी। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि योरप में भी अनेक रोमांटिक और रहस्यवादी कवियों ने विज्ञान की प्रगति को संदेहात्मक दृष्टि से देखा था। ब्लेक के अनुसार तो विज्ञान एक दैत्य शक्ति थी। ब्लेक का धर्म व्यक्तिगत ढंग का था और वह केवल उसी को प्रमाणिक मानता था। तर्क और विश्लेषण पर आधारित विज्ञान को वह मानव की एकता का विध्वंसक मानता था और उसका विश्वास था कि इस एकता का पुनः स्थापन केवल कल्पना शक्ति द्वारा ही हो सकता है। वह बेकन, लॉक (Locke) और न्यूटन आदि वैज्ञानिकों को अनीश्वरवादी समझता था।[९६] वर्ड्सवर्थ ने भी युग के बढ़ते हुए यंत्रवाद और भौतिकवाद के विरोध में स्वर ऊँचा किया था और अपनी सानेट 'द वर्ल्ड इज़ टू मच विद अस' में जन समाज के भौतिकवादी दृष्टिकोण का विरोध किया था।

आधुनिक काल में रवीन्द्रनाथ ने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये थे। उन्हें जापान और अमरीका की यात्रा से पाश्चात्य सभ्यता को समीप से देखने का अवसर मिला था। उन्होंने अनुभव किया कि विज्ञान की प्रगति ने

---

[९६] दे० लिग्वा, 'शोर्ट हिस्ट्री आव इंगलिश लिट्रेचर' (१९४५) पृ० १९३

(Blake) postulates as a principle that science is evil. He tolerates only religion, but his religion is even more heterodox than Milton's and intensely personal. Science, founded on analysis is an ill-omened power which goes on its way splitting and defacing the primitive unity which imagination alone can discover and restore. Bacon, Locke and Milton are the three great teachers of atheism or Satan's doctrine.

न केवल योरप को आध्यात्मिक रूप से एक ऊजड़ प्रदेश ('वेस्टलैंड') बना दिया था अपितु उसके निवासियों को निर्मम और लोलुप भी कर दिया था। उन्होंने इस यंत्रवादी भौतिकवाद का अपनी 'मुक्तधारा' में विरोध किया। टैगोर के अतिरिक्त आधुनिक काल के कुछ योरोपीय लेखकों ने भी इस वैज्ञानिक सभ्यता को मानव व्यक्तित्व के विकास में अवरोध स्वरूप देखा है।

अतः इन यांत्रिक संस्कृति के विरोध में हिन्दी लेखकों का स्वर ऊँचा करना स्वाभाविक ही है। 'प्रसाद' ने बँगला का अच्छा अध्ययन किया था और उन पर सम्भवतः रवीन्द्रनाथ का प्रभाव भी पड़ा था। अपने महाकाव्य 'कामायनी' में 'प्रसाद' ने उस युग की भौतिकवादी संस्कृति पर प्रहार किया है। उनकी इड़ा इस वैज्ञानिक संस्कृति की प्रतीक है। वे इड़ा का चित्र इस प्रकार उपस्थित करते हैं :

बिखरीं अलकें ज्यों तर्क जाल...
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।
('कामायनी', पृ० १६८)

जयशंकर 'प्रसाद' 'कामायनी' की भूमिका में लिखते हैं : "**फिर बुद्धि-वाद के विकास में, अधिक सुख की खोज में, दुख मिलना कितना स्वाभाविक है।**" वह बुद्धिवाद जीवन में साक्षात् अभिशाप बनकर छा जाता है और जीवन को संघर्षमय बना देता है :

मूर्तिमती अभिशाप बनी-सी सम्मुख आई
तुमने ही संघर्ष-भूमिका मुझे दिखाई। ('कामायनी', पृ० १९६)

मशीन-युग का व्यक्ति शक्ति का खेल खेलने में आतुर है और वह प्रकृति के संग निरंतर संघर्ष करने में निरत रहता है :

आज शक्ति का खेलने में आतुर नर
प्रकृति-संग संघर्ष निरंतर, फिर कैसा डर। ('कामायनी', पृ० १९६)

विज्ञान के विकास के साथ कृत्रिम वर्षा, धूप और बसन्त तक सम्भव हो सकता है। किन्तु विज्ञान द्वारा आविष्कृत यंत्र मनुष्य की प्रकृत शक्ति का अप-हरण कर उसके जीवन को निर्बल बना देते हैं :

प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी!
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी! ('कामायनी', पृ० १९९)

इस प्रकार जयशंकर 'प्रसाद' यांत्रिक संस्कृति को मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यत हानिकारक मानते हैं। अपने 'कामना' नाटक में भी उन्होंने मशीन-युग के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है।

सुमित्रानन्दन पन्त की कृतियों में भी इस वैज्ञानिक संस्कृति का विरोध मिलता है। उनके 'ज्योत्सना' रूपक में पन्त की ज्योत्सना जो चेतना का प्रतीक है, कहती है कि **"ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है विकास नहीं हो सकता।"** उनकी ज्योत्सना का ध्येय बुद्धिवाद, भौतिकतावाद, उपयोगितावाद आदि की भूल-भुलैयों में खोई हुई मानवता का परित्राण करना है। पन्त जी अनीश्वरवाद और संदेहवाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को मानवता के लिए कल्याणकारी नहीं मानते।

'प्रसाद' और पन्त दोनों डार्विन के विकासवाद 'इवोल्यूशन' के सिद्धांत से प्रभावित हुये थे। 'प्रसाद' की 'कामायनी' में श्रद्धा डार्विन के 'समर्थ व्यक्ति के लिए ही जीना सम्भव है' ('Survival of the fittest') के सिद्धांत को ही दुहराती प्रतीत होती है :

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
'शक्तिशाली हो विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा यह गान ! ('कामायनी', पृ० ५७)

उनकी इड़ा भी यही कहती है कि स्पर्धा में उत्तम ठहरने वाले ही जीवित रह सकते हैं, अन्य नहीं :

स्पर्धा में उत्तम ठहरें वे रह जावें
संसृति का कल्याण करें शुभ मार्ग दिखावें !
('कामायनी', पृ० १६२)

पन्त के 'ज्योत्सना' रूपक में झींगुर आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है। उसकी पाशविक शक्ति की लिप्सा उसके द्वारा गाये हुए गीत में अभिव्यक्त हुई है :

जो है समर्थ जो शक्तिवान जीने का है अधिकार उसे
उसकी लाठी का बैल विश्व पूजता सभ्य संसार उसे।...इत्यादि

झींगुर का यह गीत डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है। केवल समर्थ और शक्तिवान ही को यहाँ जीने का अधिकार है, वही सभ्य संसार द्वारा पूजा जाता है; दुर्बल इस धरा पर भार स्वरूप है और ईश्वर उसका स्वयं विध्वंस करता है; मनुष्य परिस्थितियों का दास है आदि भावनायें पन्त ने झींगुर के द्वारा व्यक्त कराई हैं।

'प्रसाद' की कामायनी में हमें परिमाणुवाद के नवीन सिद्धांत ('एलीक्ट्रोनिक थ्योरी') का भी प्रभाव प्रतीत होता है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक अणु ('एटम') में अनेक परमाणु होते हैं। इसका केन्द्र अनेक घनात्मक परमाणुओं ('प्रोटोन') का होता है जिसके चारों ओर अनेक ऋणात्मक परमाणु ('एलेक्ट्रोन') परिक्रमा करते रहते हैं। 'प्रसाद' कहते हैं कि जब तक इन परमाणुओं में विकर्षण और आकर्षण संयत दशा में रहता है इस सृष्टि का कार्य ठीक प्रकार से चलता है, किन्तु ऐसा न रहने पर सृष्टि में विध्वंस का कार्य प्रारम्भ हो जाता है :

तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे। ('कामायनी', पृ० २००)

'प्रसाद' विद्युत् कणों को अथवा परमाणुओं को ग्रहों और नक्षत्रों की भाँति परिक्रमा करते हुए पाते हैं :

महानील इस परम व्योम में, अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते से संधान
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुये।
('कामायनी', पृ० २६)

जयशंकर 'प्रसाद' कहते हैं कि यदि बिखरे हुए विद्युत्कणों का मानवता समन्वय करे तो वे फिर उसके शक्ति का स्रोत बन सकते हैं :

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।
('कामायनी', पृ० ५८)

वे पदार्थों के एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होने के सिद्धांत ('थ्योरी आव द कन्वरटेबिल्टी आव मैटर') से भी परिचित जान पड़ते हैं।

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन! ('कामायनी', पृ० ३)

दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर मनोविज्ञान का भी प्रभाव पड़ा है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में हमें कवि का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है। समस्त काव्य एक मनोवैज्ञानिक ढंग का रूपक है जिसमें मानव

के बुद्धि पक्ष और हृदय पक्ष का चित्रण है। प्रसाद इन दोनों पक्षों को क्रमशः इड़ा और श्रद्धा के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करते हैं। उसके अतिरिक्त 'कामायनी' के सर्गों के नाम—आशा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या आदि—भी अधिकतर प्रसाद के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को सिद्ध करते हैं।

अतः छायावाद-युग की हिन्दी कविता में हमें पहली बार वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है इस युग के कवियों ने वैज्ञानिक खोजों से प्रभावित होकर काव्य रचना तो की है किन्तु उन्होंने ज्ञान-विज्ञान की प्रगति को मनुष्य के कल्याण के लिए सदा संदेहात्मक दृष्टि से देखा है।

(ह) काव्य के रूप और शैली पर प्रभाव

अनेक आलोचकों ने छायावाद के आन्दोलन को मुख्यतः शैली का आन्दोलन माना है। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—प्रथम तो वह काव्य जिसमें कवि की रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति हो, अर्थात्, रहस्यवाद; द्वितीय वह जो प्रतीकवादी शैली पर लिखा काव्य हो अर्थात् छायावाद।[१७] शुक्ल जी का यह कथन अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता। छायावाद का संबंध काव्य के विषय और उपादान से इतना ही है जितना उसके बाह्य रूप अथवा शैली से। वास्तव में सत्य तो यह है कि छायावादी काव्य की शैली भी उसके विषय और उपादान के अनुरूप ही होती है। अधिक से अधिक हम जयशंकर 'प्रसाद' के इस कथन से सहमत हो सकते हैं कि **"ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार बक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद के लक्षण हैं।"**[१८]

(१) शैली और भाषा

छायावाद की शैली पर अंग्रेज़ी रोमांटिक कवियों, विशेषकर शेली के प्रतीकवाद का प्रभाव पड़ा है। सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में अमूर्त (abstraction) का प्रयोग एक विशेषता रही है। उनका जगत् स्वप्न, छाया, अप्सरा आदि अमूर्त वस्तुओं से भरा पड़ा रहता है। शेली की भाँति पंत को मूर्त (concrete) की अपेक्षा अमूर्त से अधिक प्रेम है। उनके लिए नारी

[१७]रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संवत २००५), पृ० ६६८-६६९

[१८]जयशंकर प्रसाद, 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' (तृतीय संस्करण), पृ० १२८

का शारीरिक रूप उतना वास्तविक नहीं जितना अशारीरिक। अस्तु वे 'ग्रन्थि' में लिखते हैं :—

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने किस तरह ?) पीयूष सा
एक कोमल सम व्यथित निःश्वास सा
पुनर्जीवन सा मुझे तब दे रहा।

('पल्लविनी', पृ० १४४)

नारी का यह वर्णन हमें 'मैटाफ़िज़िकल' कवि डन (Donne) का स्मरण दिला देता है जिसने नारी को 'आत्मा से प्रस्फुटित निःश्वास' (an exhalation breathed out of soul) कहा था।

पन्त को अमूर्त-विधान इतना प्रिय है कि वे पेड़ की छाया की तुलना भी कल्पना, विस्मय, भय, लोभ आदि अमूर्त भावनाओं से करते हैं :

गूढ़ कल्पना सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय सी...आदि

पन्त के काव्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

अमूर्त के प्रति प्रेम हमें जयशंकर प्रसाद के काव्य में भी मिलता है। किन्तु वे बहुधा अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देते हैं। अस्तु अपने 'आँसू' काव्य में उन्होंने सुख, उमंग, साँस, करुणा को मूर्त रूप दिया है।

सुख आहत, शांत उमंगें
बेगार सांस ढोने में,
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।

यहीं पर छायावाद की शैली में मानवीकरण (Personification) के प्रयोग का प्रसंग भी आ जाता है। यहाँ पर भी अंग्रेज़ी कवि शैली का प्रकृति और जीवन की विविध शक्तियों का मानवीकरण-विधान छायावादी काव्य पर एक प्रमुख प्रभाव रहा है। इस दिशा में एक अन्य प्रभाव मैटरलिंक का प्रतीकवाद है। रवीन्द्रनाथ के 'साइकिल आव स्प्रिंग' (Cycle of Spring) में जहाँ हमें विहगों, फूलों, बाँसों आदि के गीत मिलते हैं, मैटरलिंक के नाटकों का प्रभाव है। मैटरलिंक के 'ब्ल्यू बर्ड' (Blue Bird) नाटक का बीसवीं शती के तीसरे दशक के अन्त में लगभग हिन्दी लेखकों पर प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था। रामकुमार के 'बादल की मृत्यु' नामक काव्यात्मक नाटक के

चरित्र (Dramatis Personae) हैं—संध्या, बादल, पवन और रात्रि। प्रेमी बादल अपनी प्रेमिका संध्या से कुछ और देर ठहरने के लिए प्रार्थना करता है। किन्तु इसी बीच में पवन आता है और संध्या को अभी तक ठहरे देख कर आश्चर्य करने लगता है। बादल संध्या को ठहराना चाहते हैं, किन्तु पवन के प्रहार से बादल पीड़ित हो उठता है और वह गहरी वेदना से काला पड़ते-पड़ते मृत्यु को प्राप्त होता है। इसके उपरांत सुमित्रानन्दन पन्त के 'ज्योत्सना' रूपक के भी चरित्र, ज्योत्सना, सौरभ, कल्पना, उषा, शशि, पवन, भौरें, फूल, लहर, तितलियाँ आदि हैं। पन्त ने इन सबके अपने-अपने मुख से सुन्दर गीत गवाये हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य शैली पर १६वीं शती के अंग्रेजी कवियों का विशेष प्रभाव पड़ा है। वे कहते हैं कि **"शेली, कीट्स और टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों से मैंने बहुत सीखा। मेरे मन में शब्द चयन और ध्वनि सौंदर्य का बोध हुआ।"**[९९]

टेनीसन के 'द ब्रुक' (The Brook) कविता का प्रभाव पन्त की 'निर्झर' कविता में मिलता है। टेनीसन की निर्झरणी की भाँति पन्त का निर्झर भी ध्वनि करता बहता है :

यह कैसा जीवन का गान, अलि टलमल टलमल टलमल
अरी शैल बाले नादान। ('पल्लविनी,' पृ० ११८)

ध्वनि-व्यंजनात्मक शब्दों का प्रयोग पन्त की 'कलरव' कविता में भी लक्षित हुआ है।[१००] चिड़ियाँ कुँजों के नीचे सध्याकाल में 'टी० वी० टुट्टुट्' शब्दों को बोलती हैं। ये शब्द किसी भी अंग्रेजी कवि का स्मरण दिला देते हैं। ध्वनि-व्यंजना (Onomatopoeia) के अन्य उदाहरण पन्त की 'पवन गीत'[१०१] और 'झञ्झा में नीम'[१०२] कवितायें हैं। उनकी 'नौका विहार'[१०३] कविता में भी शब्दों के नाद से ही पानी की गति की व्यंजना हो जाती है।

---

[९९] सुमित्रानन्दन पन्त, "मेरा रचना काल", शचीरानी गुर्टू द्वारा सम्पादित 'सुमित्रानन्दन पन्त' में उद्धृत, पृ० ७०

[१००] सुमित्रानन्दन पन्त, 'आधुनिक कवि' ३, पृ० ६७

[१०१] वही, पृ० ८०

[१०२] सुमित्रानन्दन पन्त, 'पल्लविनी', पृ० ११६

[१०३] वही, पृ० १०४–१०६

पन्त अंग्रेजी के स्पेंसर (Spenser), कीट्स और टैनीसन कवियों की भाँति शब्द-चित्र उपस्थित करने में निपुण हैं। वे ध्वनि, वर्ण और गंध को शब्दों के माध्यम द्वारा चित्रित कर देते हैं। उनकी 'गुञ्जन' की कविताओं में वर्ण-व्यंजना के अनेक उदाहरण हैं। वसन्त ऋतु में रुपहले और सुनहले आम्र बौरों का और स्थान-स्थान पर गंध से अंधे हुए नीले, पीले और ताम्र भौरों का वर्णन रुचिकर बन पड़ा है :

रुपहले सुनहले आम्र बौर
नीले पीले और ताम्र भौंर
रे गंध अंध हो ठौर ठौर...इत्यादि ('पल्लविनी', पृ० १६३)

यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि पन्त का काव्य अपनी सौंदर्य-वादी प्रकृति का ही द्योतक है। यही कारण है कि पंत अपनी सौन्दर्यवादी प्रकृति के अनुसार शब्दों को मरोड़ते, और व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ते हैं। नरेन्द्र के अनुसार, "**पन्त जी का सौंदर्यवाद ही, उनके प्रारंभिक रचना काल में, उन्हें व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ने के लिए बाध्य करता रहा है। शब्दों के लिंग भेद का ज्ञान भी वे इसी कारण भुलाते रहे हैं—प्रभात को पुलिंग से स्त्रीलिंग बना देना उनके लिए स्वाभाविक क्रिया रही है।**"[१०४]

पन्त की भाषा व्यंजनात्मक है। चिड़ियों का कलरव, पानी का मर्मर् और इस प्रकार की अन्य ध्वनियाँ उनके काव्य में स्थान-स्थान पर मिलती हैं।

रामकुमार भी कलात्मक कवि हैं। यहाँ वे नौका की गति को शब्दों के माध्यम द्वारा चित्रित करते हैं :

निस्पन्द तरी अति मन्द तरी
चल अवचल जल कल कल पर
गुञ्जित कर गति की लघु लहरी।

('आधुनिक कवि', ३, पृ० ४३)

उनके काव्य में भी टैनीसन की भाँति व्यंजना-शक्ति और कलात्मकता मिलती है।

दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता में विशेषणों के प्रयोग का भी प्रचार रहा है। जैसा श्रीकृष्णलाल कहते हैं विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) ऐसे नये काव्यालंकार भी हिन्दी कविता में आ गये

---

[१०४] नरेन्द्र, "श्री सुमित्रानन्दन पन्त" 'आलोचना' १, पृ० ३५

हैं।[१०९] विशेषण–विपर्यय का प्रयोग भी काव्य की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाने के लिए हुआ है। अस्तु निम्नलिखित विशेषण-विपर्यय के उदाहरण में 'उज्ज्वल' विशेषण 'स्मृति' की विशेषता का बोध न कराकर प्रेयसी के मुख की विशेषता बताता है :

मधुर प्रेम की उज्ज्वल स्मृति
देती मन को बोर ! ('पल्लविनी', पृ० १७३)

अतः हम देखते हैं कि दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता में भाषा और शैली की व्यंजना-शक्ति की वृद्धि करने का अत्यधिक प्रयास रहा है।

(२) काव्य के रूप

काव्य के रूपों पर भी अंग्रेज़ी का प्रभाव अत्यंत शक्तिशाली रहा है। महाकाव्य में अंग्रेज़ी प्रभाव के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जयशंकर प्रसाद का कामायनी महाकाव्य हिन्दी भाषा में सर्वथा नई वस्तु थी। जैसा पीछे कहा गया है[१०६] इसमें जयशंकर प्रसाद का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक रहा है। समस्त काव्य एक मनोवैज्ञानिक ढंग का रूपक है जिसमें बुद्धि और हृदय का द्वन्द्व चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य के सर्गों के नाम भी 'प्रसाद' के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

किन्तु हिन्दी काव्य के रूपों पर सर्वाधिक प्रभाव अंग्रेज़ी गीति काव्य (Lyric poetry) का पड़ा है। गीति काव्य विशुद्ध अभ्यांतरिक (Subjective) काव्य होता है। अपने आरम्भ काल में गीति काव्य वाद्य (harp) पर गाया जाने वाला काव्य था किन्तु बाद में कोई भी गाया जा सकने योग्य काव्य गीति काव्य के नाम मे संबोधित होने लगा। अतः अब तक गीति काव्य में संगीतमकता एक अनिवार्य गुण समझा जाता है। किन्तु अंग्रेज़ी गीति-काव्य का प्रधान गुण उसकी भावात्मकता (emotional quality) है। यह आह्लाद, विषाद आदि तीव्र अनुभूतियों की काव्य में अभिव्यक्ति है ('It is the poetic cry from the heart—of joy, sorrow, fervour, exultation') अतएव अन्य काव्य रूपों की अपेक्षा गीति-काव्य छोटा होता है। यद्यपि इसमें अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति (Spontaneous expression) होती है फिर भी इसमें कलात्मकता का भी तत्व रहता है।

---

[१०९]श्रीकृष्णलाल, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', (तृतीय संस्करण १९५२), पृ० १६३

[१०६]दे० पीछे पृ० २०८

हिन्दी काव्य में गीति काव्य की एक समृद्ध परम्परा रही है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल मुख्यतः गीतिकाव्य का काल था। जयदेव का 'गीति गोविन्द' और विद्यापति की 'पदावली' हिन्दी के भक्त कवियों के गीतिकाव्य के दो मूल स्रोत रहे हैं। किन्तु यह गीतिकाव्य अंग्रेजी के 'लिरिक' काव्य से भिन्न था। हमारे गीतिकाव्य की परम्परा में गीतिमत्ता पर विशेष जोर रहा है, जब कि अंग्रेज़ी की 'लिरिक' में सहजानुभूति अथवा अध्यांतरिकता पर। श्रीकृष्ण लाल लिखते हैं "**सूरदास और कृष्ण-काव्य के अन्य कवियों के पदों में गीतिमत्ता केवल उनके गेय होने तक ही सीमित थी, उनमें कवि के व्यक्तिगत और अध्यांतरिक भावनाओं का उद्रेक न था। वरन् उनके मूल में राधा-कृष्ण के प्रेम की अंतर्धारा मिलती है।**"[१०७] भारतेन्दु युग में भी गीति काव्य लिखा गया था, किन्तु वह जयदेव, विद्यापति, सूरदास तथा कृष्ण-काव्य के अन्य कवियों की परम्परा पर था। अतः, वह विशुद्ध अध्यांतरिक काव्य न था। गीति-काव्य में अध्यांतरिक भावनाओं का उद्रेक हमें दो युद्धों के बीच के काल ही में पहली बार मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि इस अध्यांतरिक काव्य की मूल प्रेरणा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से अंग्रेजी के 'लिरिक' काव्य ही से आई। 'प्रसाद', पन्त और बच्चन के गीति अधिकांशतः अध्यांतरिक ही हैं। हिन्दी के इस नये 'लिरिक' काव्य ने अंग्रेजी के 'लिरिक' काव्य की व्यंजना-शक्ति तथा चित्रात्मकता भी अपनाई है।

'इन्दु' पत्रिका में समय-समय पर 'प्रसाद' की कुछ सुन्दर 'सानेट्स' भी प्रकाशित हुईं। बाद में अन्य कवियों ने भी 'सानेट' पर प्रयोग किये।

छायावादी कवियों में संबोधन-गीति ('ओड्स') का विशेष प्रचार रहा। कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ आदि की ओड्स हिन्दी के छायावादी कवियों की आदर्श बनीं। 'प्रसाद', पन्त और 'निराला' की कुछ सर्वोत्तम कवितायें 'ओड' की शैली पर लिखी गयी हैं। जयशंकर 'प्रसाद' की 'किरण', और 'विषाद'; सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'यमुना के प्रति' 'जुही की कली', 'संध्या सुन्दरी' आदि; पन्त की 'अप्सरा', 'अनंग', 'भावी पत्नी के प्रति', 'संध्या' आदि कविताएँ हिन्दी की 'ओड्स' के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी के कुछ संबोधन-गीति शैली के 'द क्लाउड' (The Cloud) और टैनीसन के 'द ब्रुक' (The Brook) के अनुकरण पर आत्मकथा की

---

[१०७] श्री कृष्ण लाल, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' (तृतीय संस्करण) पृ० १०६

शैली में लिखे गये हैं। इस दिशा में सुमित्रानन्दन पंत का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी 'बादल' कविता इसी प्रकार की है। इसके अतिरिक्त 'ज्योत्सना' में ओसबिन्दु, लहर, जुगनू, पवन आदि के गीत भी इसी शैली पर हैं।

दो युद्धों के बीच के काल में 'शोकगीति' पर भी हिन्दी कवियों ने प्रयोग किये। 'प्रसाद' की 'आँसू' कविता, पंत की 'आँसू' कविता और 'निराला' की 'सरोज स्मृति' इसके कुछ उदाहरण हैं।

हिन्दी की चिन्तनात्मक कविता (Reflective Verse) पर अंग्रेजी काव्य का प्रभाव पड़ा है। इस दिशा में वर्ड्सवर्थ का प्रभाव सबसे अधिक है। हिन्दी कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त ने सबसे अधिक चिन्तन-प्रधान कवितायें लिखी हैं। उनकी 'गुञ्जन' में संगृहीत कविताएँ अधिकांशतः इसी प्रकार की हैं।

(३) छन्द

हम पीछे देख चुके हैं कि हिन्दी काव्य में अतुकांत छन्द (Blank Verse) का प्रयोग द्विवेदी-युग ही से प्रारम्भ हो गया था। दो महायुद्धों के बीच के काल में अतुकांत छन्द का और प्रचार बढ़ गया। जयशंकर 'प्रसाद', पन्त आदि वार्णिक छन्द में लिखे गये अतुकांत काव्य की परिपाटी छोड़कर मात्रिक छन्द में अतुकांत काव्य की रचना करने लगे।

अतुकांत छन्द में काव्य को तुक अथवा अनुप्रास की बेड़ियों से मुक्त करने का प्रयास था। किन्तु अब काव्य को पिंगल (Metre) से भी मुक्त करने की बात सोची जाने लगी। इसके परिणाम स्वरूप अमरीका के कवि वाल्ट विह्टमेन (Walt Whitman) ने मुक्त काव्य(Free Verse)की योजना की। इस मुक्त काव्य के आन्दोलन का ज़ोर से प्रचार हुआ और काव्य की अति-आधुनिक (Ultra Modern) प्रवृत्तियों ने इसे बड़े उत्साह से अपना लिया।

'निराला' द्वारा हिन्दी में मुक्त काव्य का प्रचलन हिन्दी काव्य की एक क्रान्तिमयी घटना थी। यहाँ पर काव्य का ऐसा रूप था जिसमें कवि की रोमांटिक प्रवृत्ति का निर्बाध उद्रेक सम्भव था। 'निराला' की 'जुही की कली' 'बादल राग', 'अधिवास', 'संध्या सुन्दरी' आदि कविताएँ इसी मुक्त छन्द में लिखी गयीं। सुमित्रानन्दन पंत और अन्य कवियों ने भी इस दिशा में सफल प्रयोग किये।

कुछ हिन्दी के कवियों ने जिनमें सुमित्रानन्दन पन्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है, छन्द-विधान में कुछ और परिवर्तन भी किये। पन्त बहुधा पंक्तियों को छोटा-बड़ा करके कविता की सुन्दर आकृतियाँ (Patterns) बनाते हैं। इसमें सम्भवतः वे एडिथ सिटवैल (Edith Sitwell) से प्रभावित हुये हैं। एडिथ सिटवैल की यह कविता इसी ढंग की है।

Old
Sir
Faulk
Tall as a stork,
Before the honeyed fruits of dawn were ripe, would walk
And stalk with a gun
The reynard-coloured sun
Among the pheasant-feathered corn the unicorn has torn, forlorn the
Smock-faced sheep
Sit
And
Sleep
Periwigged as William and Mary, weep...

एडिथ सिटवेल ने स्वयं ऐसे छन्द के प्रयोगों को अपने निबंध 'काव्य में प्रयोग' ('Experiment in Poetry') में, जो उनके संग्रह 'परम्परा और प्रयोग' ('Tradition and Experiment') में सम्मिलित है, वर्णन किया है। पन्त ने भी इस दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं। उनकी 'परिवर्तन' कविता के कुछ स्थल, 'भावी पत्नी के प्रति', 'आँसू', 'भारत माता' आदि कविताओं में ऐसे ही प्रयोग हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजी के प्रभाव ने काव्य के रूप और शैली दोनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं। हिन्दी काव्य में न केवल प्राचीन रूपों में परिवर्तन किया गया है, अपितु सर्वथा नवीन अंग्रेज़ी काव्य के रूपों का प्रादुर्भाव हुआ है।

उपसंहार

अतः दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर अंग्रेजी का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है। इस युग की सब प्रमुख प्रवृत्तियाँ—सौंदर्यवाद, विद्रोहात्मक आदर्शवाद, निराशावाद और रहस्यवाद—अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी विचारों

की ऋणी हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रथम बार नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास हुआ है।

हिन्दी काव्य की शैली और रूप पर भी अंग्रेजी का इतना ही महत्व-पूर्ण प्रभाव पड़ा है। काव्य की भाषा और शैली में अधिक अभिव्यंजना-शक्ति लाने का प्रयास किया गया है। प्राचीन काव्य-रूपों में परिवर्तन होने के साथ साथ अंग्रेजी के नये काव्य-रूपों को भी अपनाया गया है। महाकाव्य और गीतिकाव्य दोनों में अंग्रेजी काव्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी परि-वर्तन किये गए हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के संबोधन-गीति (Odes), 'सानेट' और शोकगीति (Elegy) पर भी हिन्दी कवियों ने प्रयोग किये हैं। छन्द-विधान में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं और अतुकांत एवं मुक्त छन्दों का प्रयोग अबाध रूप से होने लगा है।

अतः हम देखते हैं कि दो युद्धों के बीच के समय में अंग्रेजी का हिन्दी काव्य पर अत्यंत शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है।

७

प्रगतिवादी-युग

(अ) नवीन वातावरण

दूसरे महायुद्ध के बाद की हिन्दी कविता की जो गतिविधि हमारे सामने है वह बहुत कुछ आधुनिक अंग्रेजी कविता के अनुरूप है। दोनों में समान प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि १६३६ के बाद भारत का सम्पर्क संसार की विभिन्न मुख्य विचार-धाराओं में पूर्णतया स्थापित हो गया था। स्पष्ट है कि इन्हीं विविध विचारधाराओं ने हिन्दी और अंग्रेजी कविता का पिछले वर्षों में निर्देशन का कार्य किया है, किन्तु ये विचार-धारायें संख्या में इतनी अधिक और एक दूसरे की इतनी विरोधिनी थीं कि उनसे हमारी सभ्यता में जटिलता आ गयी। टी० यस० इलियट (T. S. Eliot) कहता है कि हमारी सभ्यता में आज अत्यधिक विविधता और जटिलता आ गई है, और इस विविधता और जटिलता का भावुक हृदय से संस्पर्श विविध और जटिल परिणामों का कारण बनता है। आज के कवि के लिये यह अवश्यम्भावी है कि वह अपनी अभिव्यक्ति में अधिक से अधिक व्यापक, दुरूह और अप्रत्यक्ष बने।[1] हमारी सभ्यता में इस विविधता और जटिलता के अनेक कारण हैं। कम्यूनिज्म, फासिज्म आदि राजनीति की

---

[1] केनेथ एलट (Kenneth Allott) द्वारा 'कन्टेम्पररी वर्स' (पेनग्युइन सीरीज १६५१) में उद्धृत, पृष्ठ १७

Our civilization comprehends great variety and complexity, and this variety and complexity, playing upon a refined sensibility must produce various and complex results. The poet must become more and more comprehensive, more allusive, more indirect in order to force, to dislocate if necessary, language into his meaning.

अनेक विचारधाराओं का समागम, रेडियो का आविष्कार और उसके द्वारा जगत् की घटनाओं का प्रत्येक स्थान पर प्रकाशन, समाचार पत्रों का प्रचार आदि सब ने हमारी सभ्यता को एक जटिल रूप प्रदान किया है। आज का व्यक्ति रोमांटिक मनोवृत्ति का न होकर बाह्य जगत् में अधिक से अधिक रुचि रखता है।

आज के युग में जनता राजनीति में विशेष अभिरुचि रखती है। अतः देश और काल को प्रतिबिम्बित करने वाला कवि भी राजनीति से अछूता नहीं रह सका है। आज प्रत्येक व्यक्ति या तो कम्यूनिस्ट है अथवा कम्यूनिस्ट विरोधी है अथवा वह कम से कम किसी राजनीति दल से सम्बंधित अवश्य है।[२] ऐसी स्थिति में कलाकारों का भी वर्गों में बट जाना स्वाभाविक है। स्टीफन स्पेंडर ने आज के कवि की स्थिति इस प्रकार वर्णन की है :

> **"कवियों का एक ऐसा वर्ग था जिसने आधुनिक काव्य के एक विशेष वाद के रूप में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर ली थी। उन्होंने जान कर कोई साहित्यिक आन्दोलन न चलाया था... किंतु उनके विचार बहुत कुछ समान थे। वे आधुनिक बनना चाहते थे और वे अपनी कविताओं के प्रतीक और रूपक अपने चारो ओर पाई जाने वाली मशीनों और फैक्टरियों के जगत् से लेते थे... उनका काव्य मनुष्य मात्र की जातीयता पर आधारित था, किंतु वे उसे रोग ग्रसित देखकर उसका उपचार मनोविज्ञान अथवा कम्यूनिज्म में ढूँढने का प्रयत्न करते थे।...किसी सीमा तक उनका काव्य मार्क्सवादी होने पर भी उनके व्यक्तिवाद और उनकी सामाजिक चेतना के द्वन्द्व को अभिव्यक्त करता है।"[३]**

---

[२] ड्रिंकवाटर (संपादक) 'द आउट लाइन आव लिट्रेचर' (नया संस्करण १९५०) पृ० ७९६

Today every person is a pro-or-anti-communist or at least consciously political partisan of some sort.

[३] स्टीफेन स्पेंडर, 'पोइट्री सिंस १९३९,' पृ० २८

There was a group of poets who achieved a very wide reputation as a 'school' of modern poetry. They were not in a diliberate sense a literary movement......(but) they had certain ideas in common. They consciously attempted to be modern, choosing in their poems imagery selected from machinery,

१६३६ के बाद अंग्रेजी कविता की गतिविधि के विषय में स्टीफेन स्पेंडर का यह कथन आधुनिक हिन्दी कविता के लिए भी सर्वथा उपयुक्त है।

किन्तु समस्या का यहीं अन्त नहीं हो जाता है। हमारे मूल्यों में प्रत्येक स्थान पर अराजकता है। मनुष्य का प्रत्येक वस्तु से विश्वास उठ गया है; उसकी प्राचीन मान्यताएँ और आस्थायें ढह गयी हैं। उसे न धर्म में विश्वास है न विज्ञान में। इसके कारण जीवन के प्रत्येक विभाग में हमें विरोधात्मक प्रवृत्तियों का दर्शन होता है। अस्तु राजनीति में हिंसा और अहिंसा, फासिज्म और साम्यवाद (Communism), साम्यवाद और जनतंत्रवाद की विरोधात्मक प्रवत्तियाँ हैं; दर्शन शास्त्र में आदर्शवाद और भौतिकतावाद की तथा अर्थ शास्त्र में समाजवाद और पूँजीवाद की। अतः साधारण व्यक्ति की स्थिति अत्यन्त विषम है। उसे कोई स्पष्ट मार्ग अथवा गन्तव्य नहीं दिखाई देता।

(ब) पश्चिम के प्रभाव

यहाँ पर हम पश्चिम के उन प्रभावों का उल्लेख करेंगे जिन्होंने १६३६ के बाद की हिन्दी कविता की गतिविधि को नई दिशा में मोड़ा है। इन प्रभावों में से मुख्य प्रभाव हैं मार्क्सवाद और मनोविश्लेषणवाद। अतः हम सर्वप्रथम इन्हीं प्रभावों का विवेचन करेंगे।

(१) मार्क्सवाद

मार्क्सवाद के अनुसार आज की पूँजीवादी संस्कृति ने कलाकार को अपना दास बना रखा है। वैज्ञानिक, वकील, कवि और लेखक, पंडित सभी को इस संस्कृति ने अपना वेतन वाला श्रमिक बना दिया है।[४] अतः मार्क्स-

---

slums and the social conditions, which surrounded them... Their poetry emphasised the community, and overwhelmed as it was by the sense of communal disease, it searched for a communal cure in psychology and leftist politics...To a great extent their poetry, though leftist, expresses the problem of the liberal divided between his individual development and his social conscience.

[४] मार्क्स और एंजिल्स, 'मेनीफ़ेस्टो आफ़ द कम्यूनिस्ट पार्टी (मास्को, १६४५) पृ० ४४

The bouregoisie has stripped of its halo every occupation hitherto honoured and looked up to with reverent awe. It has converted the physicist, the lawyer, the priest, the poet, the man of science into its paid wage labourers.

वादी के अनुसार आज का विश्व शोषकों और शोषितों के दो वर्गों में बँटा हुआ है। मार्क्सवादियों का पहला उद्देश्य यह है कि वे शोषित वर्ग का संगठन करें और शोषकों की सत्ता को मिटाकर उनसे राजनीतिक शक्ति को छीन लें।[५]

मार्क्स के अनुसार इतिहास की प्रक्रिया में भौतिकवादी शक्तियाँ ही मूलतः काम करती हैं। समाज में यह भौतिकवादी शक्तियाँ मुख्यतया आर्थिक हो जाती हैं, और इन्हीं की आधारशिला पर समाज का समस्त ढाँचा निर्मित किया जाता है। सभी राजनीतिक, दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्रों में इसी आर्थिक विकास का आधार रहता है। बौद्धिक जगत् का इतिहास यही सिद्ध करता है कि मानवता का समस्त बौद्धिक विकास भौतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही साथ परिवर्तित होता रहा है।[६]

मार्क्सवादी समाज में असंतोष की भावना के लिए पूंजीवादी संस्कृति को दोषी ठहराता है। अतः वह राजनीतिक क्षेत्र से पूंजीवाद का मूलोच्छेदन चाहता है। मार्क्स कहता है कि शासकवर्ग को इस साम्यवादी क्रांति के भय से काँपने दो। इस क्रांति में श्रमिकवर्ग अपनी परतन्त्रता की बेड़ियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं खो सकता, उसके सामने समस्त संसार विजय करने के लिये पड़ा है।[७]

मार्क्सवाद के अनुसार कलाकार का कर्तव्य है कि वह भी शोषित वर्ग द्वारा लड़े गये इस स्वातंत्र्य-युद्ध में अपना हाथ बटावे। अस्तु जोज़फ फ्रीमन (Joseph Freeman) अपनी 'प्रोलेटेरियन लिट्रेचर इन द यू० एस०' में लिखते हैं कि कला को शोषित वर्ग के लिए उनके स्वातंत्र्य-युद्ध का एक

---

[५] वही पृ० ६०

Formation of the proletariat into a class, overthrow of the bourgeois supremacy, conquest of political power by the proletariat.

[६] वही पृ० ६८

What else does the history of ideas prove than that intellectual production changes its charactor in proportion as material production is changed.

[७] वही पृ० ९१

Let the ruling classes tremble at a communist revolution. The proletarians have nothing to lose but their chains. They have a world to win.

अस्त्र बनना चाहिए। ("art an instrument in the class struggle, must be developed by the proletariat as one of its weapons.") कलाकार को चाहिए कि वह अपनी समवेदना समाज की उन प्रगतिशील शक्तियों के साथ रखे जो उसकी व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए सबसे अधिक प्रयत्नशील हैं। अतः फ़ैरेल (Farrell) के अनुसार साहित्य सामाजिक प्रभाव का एक अस्त्र है।[८] क्रास्टोफर काडवेल (Christopher Caudwell) के शब्दों में कला अथवा साहित्य मनुष्य के स्वतंत्रता-संग्राम का एक अस्त्र है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हो भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना सन् १६२७ में हुई थी। किन्तु भारतीय साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव २०वीं शताब्दी के चौथे दशक के अन्तिम वर्षों से ही पड़ना आरम्भ हुआ। १६३५ में फासिस्टों के प्रति विद्रोह की आवाज़ उठाने के लिए साम्यवादी विचारों से सहानुभूति रखने वाले कुछ साहित्यकारों की ई० एम० फोर्सटर (E.M. Forster) की अध्यक्षता में पेरिस में एक बैठक हुई थी। इसी वर्ष मुल्कराज आदि के परिश्रम से भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हुई और उसकी प्रारंभिक सभा लदन में हुई। दूसरे वर्ष भारत में पहली बार मुंशी प्रेमचन्द के सभापतित्व में इस लेखक संघ की बैठक लखनऊ में हुई। इसके बाद से निरंतर मार्क्सवादी विचारधारा हिन्दी साहित्य की गतिविधि पर अपना प्रभाव डालती रही है।

(२) मनोविश्लेषणवाद

मार्क्सवाद के बाद दूसरी महत्वपूर्ण विचारधारा मनोविश्लेषण विज्ञान की है। मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार हमारा मन एक तैरते हुए हिमपर्वत (iceberg) के समान है जिसका लगभग $\frac{1}{9}$ भाग तो चेतनता की रेखा से ऊपर रहता है और शेष नीचे। हमारे जीवन की अधिकतर कार्य प्रेरणाओं का उद्गम यही $\frac{8}{9}$ भाग वाला अचेतन मन है।

फ्रायड के अनुसार हमारे इस अचेतन मन में वे सब इच्छायें और कामनायें दबी पड़ी रहती हैं जिनकी पूर्ति हम समाज की वर्जनाओं के कारण अपने चेतन जीवन में नहीं कर पाते। ये दमित इच्छायें और प्रवृत्तियाँ

---

[८] जे० टी० फेरेल 'ए नोट आन लिटररी क्रिटिसिज्म' (कांन्सटेबिल एण्ड कम्पनी, लन्दन, १६३६) पृ० १३७

Literature is an instrument of social influence.

अधिकतर यौन संबंधी (sexual) होती हैं। फ्रायड के अनुसार बालक में भी सेक्स की भावना अत्यन्त प्रबल होती है। फ्रायड कहता है कि बाल्यजीवन से संबंध रखने वाली 'सेक्स' भावना बहुधा वयस्क जीवन पर भी अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

फ्रायड का स्वप्न के विषय में भी एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। स्वप्न को वह एक ऐसी इच्छा की पूर्ति भर मानता है जिनका चेतनजीवन में दमन किया गया है। फ्रायड कल्पना करता है कि अवचेतन मन के मुखद्वार पर दमित इच्छाओं को नीचे ही रखने के लिए एक प्रहरी अथवा 'सेन्सर' (censor) नियुक्त रहता है। व्यक्ति की स्वप्न की अवस्था में यह प्रहरी क्षण भर को सुप्त अथवा अर्द्ध जाग्रत अवस्था में हो जाता है। अवसर पाकर दमित इच्छायें कभी नग्न और कभी अर्द्धनग्न अवस्था में और बहुधा भेष बनाकर भी ऊपर आ जाती हैं। यही कारण है कि हमारे स्वप्न बहुधा प्रतीकात्मक होते हैं।

अचेतन मन में दबी पड़ी इच्छाओं को जानने के लिये मनोविश्लेषणज्ञ एक विशेष पद्धति का प्रयोग करते हैं जिसे 'फ्री एसोसियेशन' के नाम से कहा जाता है। उस व्यक्ति को जिस पर प्रयोग किया जाता है विश्राम की अवस्था में बैठाल देते हैं और उसे उन सब विचारों को जो उसके मस्तिष्क में आते हैं बिना किसी अवरोध के तारतम्य में कह डालने के लिए निर्देश देते हैं। ये विचार जो बहुधा सुसंबद्ध नहीं होते उसके व्यक्तित्व के विषय में जानने में बहुत सहायक होते हैं।

मनोविश्लेषण विज्ञान का आधुनिक काव्य पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ा है : (१) 'सेक्स' अथवा काम प्रवृत्ति को समस्त मानव प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का केन्द्रबिन्दु स्वीकार करने में और (२) अचेतन मन में दबी इच्छाओं को 'फ्री एसोसियेशन' की पद्धति द्वारा प्रकाशित करने में। अतः आज का कवि बहुधा अचेतन मन में पड़ी इच्छाओं को अपने काव्य के विचारों तथा तद्गत् उपादानों के रूप में प्रयुक्त करता है। वह पुरानी काव्य शैली का भी बहिष्कार करता है। और कविता में सुसंबद्ध विचारों के स्थान पर असम्बद्ध विचारों को अंकित करता है। इसके परिणामस्वरूप आज की कबिता 'फ्री एसोसियेशन' की पद्धति अपनाकर और तुक के पाशों से मुक्त हो अपने विषय और शैली दोनों में असंबद्ध तथा दुरूह हो गई है। सेसिल डे० लेवीस कहता है कि इस प्रकार की प्रक्रिया पाठक के लिए कविता को समझने का कार्य कठिन कर देती है, क्योंकि किसी भी वस्तु से संबंधित उसके भाव कवि के

उस विषय से संबंधित भावों से अधिकांशतः विभिन्न होते हैं। अतएव पाठक बहुधा अपने को ऐसी स्थिति में पाता है जैसे कि वह कविता न पढ़कर किसी सुप्त व्यक्ति का बड़बड़ाना सुन रहा हो।[१]

(३) कुछ पाश्चात्य लेखक

१६३६ के बाद के हिन्दी कवि मुख्यतः उपर्युक्त विचारधाराओं ही से प्रभावित हुये हैं। किन्तु कुछ कवियों ने पाश्चात्य कवियों और लेखकों से भी अपनी काव्य-रचना में प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के मार्क्सवादी कवियों ने परवर्ती अंग्रेजी और रूसी लेखकों की कृतियों का बहुधा अध्ययन किया है। उनके बीच 'सोवियट लिट्रेचर' पत्रिका का पर्याप्त प्रचार रहा है। यह कहना न होगा कि रूसी साहित्य का अध्ययन अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही किया गया है।

हम यहाँ पर उन प्रमुख पाश्चात्य लेखकों का उल्लेख करेंगे जिन्होंने १६३६ के बाद की कविता को नई दिशा प्रदान करने में सहायता दी है।

(क) गोर्की:—गोर्की हिन्दी के आधुनिक लेखकों के बीच विशेष प्रिय रहा है। गोर्की एक क्रांतिकारी लेखक था और उसकी कृतियाँ स्वातंत्र्य प्रेम की भावना से ओतप्रोत हैं। गोर्की के युग पर रूस के दो महान् क्रांतियों की गहरी छाप पड़ी थी। गोर्की के स्वातंत्र्य-प्रेम ने श्रमिकवर्ग और क्रांतिवादी विचारों की पढ़ी-लिखी जनता के साथ सहानुभूति दिखाने के लिये बाध्य किया। गोर्की की लगभग सब कृतियाँ—'मां' (Mother) 'रूस में होकर' (Through Russia), 'वे तीन' (The Three) आदि—शोषित और पीड़ित वर्ग की वेदना को अभिव्यक्त करती हैं। गोर्की शोषित वर्गों को अपनी परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ डालने के लिए ललकारता है। गोर्की ऐसी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में निरंतर संघर्ष चाहता था।

गोर्की का आधुनिक हिन्दी साहित्य पर, प्रेमचन्द के समय से लेकर अबतक गहरा प्रभाव पड़ा है। आज का प्रत्येक 'प्रगतिशील' लेखक गोर्की की कृतियों

---

१ सेसिल डे० लेवीस, 'ए होप फ़ोर पोइट्री' (सातवां संस्करण, १६४५) पृ० २०

This process makes things difficult for the reader because his associations with any given idea or image are probably different from those of the poet, and he is likely to feel as puzzled and uncomfortable as if he were listening to some one talking in his sleep.

से परिचित है। प्रेमचन्द तो गोर्की से इतने प्रभावित थे कि गोर्की की मृत्यु की घटना ने उन्हें अत्यधिक उद्विग्न कर दिया। निराला के काव्य को भी नया मोड़ देने में गोर्की के साहित्य का बड़ा हाथ रहा है।[१०]

(ख) आडेन (Auden) और उसके वर्ग के लेखकः—हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों की नई पीढ़ी पर अंग्रेजी के आधुनिक कवि आडेन और उसके वर्ग के लेखकों का भी प्रभाव पड़ा है। आडेन वर्ग के सब लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। १६४० के बाद के दशक को फ्रांसिस स्कार्फ (Francis Scarfe) नामक आलोचक ने अपनी पुस्तक 'आडेन एण्ड आफ्टर' (Auden and After) में कविता की स्वतंत्रता का समय कहा है। आडेन की 'स्पेन' सेसिल डे० लेवीस की 'नाबरा' (Nabara) और स्पेंडर की 'वियेना' (Vienna) कवितायें अपनी विचारधारा और शैली में सर्वथा नयी और क्रांतिकारी थीं।

आडेन वर्ग के सब कवियों में हमें एक विचित्र बात यह दिखाई पड़ती है कि वे व्यष्टि और समष्टि के द्वंद्व से पीड़ित हैं। प्रत्येक अपने दृष्टिकोण में व्यक्तिवादी है, फिर भी राजनीति में वह साम्यवाद की ओर झुका है। इन सबकी आत्मा जैसे कभी-कभी इन्हीं के द्वारा आरोपित मार्क्सवादी नियंत्रण से विद्रोह करने लगती है—इसका आभास बहुधा पाठक को होने लगता है।

इन कवियों ने काव्य के बाह्य रूप में भी परिवर्तन किया है—वे सब रोमांसवादी प्रतीकों और बिम्बों के विरोध में है, और अपनी कविता की वाणी को आधुनिक वातावरण के अनुकूल ही रखने के पक्ष में है। उनके प्रतीक और रूपक आज के औद्योगिक जगत से लिये गये हैं।

हिन्दी कवियों की नई पीढ़ी अंग्रेजी काव्य के इस नये 'स्कूल' से प्रभावित है। नरेन्द्र, नेमिचन्द्र, शमशेर, गिरजाकुमार, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता आदि ने आडेन वर्ग को इस सामाजिक और राजनीतिक कविता से विशेष प्रेरणा ली है।

(ग) टी० यस० इलियटः—आधुनिक हिन्दी कवियों का वह वर्ग जो अपने में मार्क्सवादी नहीं है, टी० यस० इलियट से अत्यधिक प्रभावित रहा है, विशेषकर 'प्रयोगवाद' नामक हिन्दी काव्य की नई प्रवृत्ति पर टी० यस० इलियट के काव्य का बड़ा ही शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है।

---

[१०] दे० रामविलास शर्मा, 'निराला', (जन प्रकाशन गृह, बम्बई, १६४८) पृष्ठ २८

टी०यस० इलियट के काव्य पर मनोविश्लेषण विज्ञान और फ्रांसीसी प्रतीक-वाद का विशेष प्रभाव पड़ा है। इलियट के काव्य में अस्पष्टता (obscurity) का कारण उसकी शैली है जिस पर बोदलेयर (Baudelaire) से लेकर पाल वेलरी (Paul Valery) तक की प्रतीकवादी फ्रांसीसी कविता का प्रभाव है। वह अपने काव्य में आशय को व्यक्त करने के लिए अधिकतर प्रतीकों का प्रयोग करता है। किन्तु उसके ये प्रतीक विविध साहित्यों और धार्मिक कथाओं से लिये गये हैं। इसकी कवितायें अंग्रेजी और अन्य विदेशी कवियों के उद्धरणों से भरी पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त 'गीता', 'उपनिषद', बौद्ध धर्म की पुस्तकों और बाइबिल के अनेक प्रसंग भी उसके काव्य में मिलते हैं। यही कारण है कि साधारण पाठक के लिये इलियट का काव्य कठिन हो जाता है।

अपनी कुछ सर्वोत्तम कविताओं में—उदाहरणार्थ 'द लव सांग आव प्रूफ्रोक', 'एश वेन्ड्न डे' आदि में इलियट ने मनोविश्लेषण विज्ञान की 'फ्री एसोसियेशन' पद्धति का प्रयोग किया है। आत्म-निरीक्षण (Introspection), एकाकीपन (Solitariness) और निराशा इलियट के काव्य के मुख्य तत्व हैं।

इलियट की 'वेस्टलेण्ड' कविता में निराशा की तीखी अभिव्यक्ति है। इस कविता का विषय आधुनिक सभ्यता का आध्यात्मिक पतन है। कविता का अन्त दान, दया और दमन के उपनिषद् में किये हुए उपदेश से होता है, और कवि 'शान्ति, शान्ति, शान्ति' कहकर कविता को समाप्त करता है।

इलियट का सबसे अधिक प्रभाव 'अज्ञेय' के ऊपर पड़ा है। प्रतीकों और 'फ्री एसोसियेशन' पद्धति का 'अज्ञेय' ने अपने काव्य में बहुधा प्रयोग किया है। प्रयोगवाद के अनेक कवियों पर इलियट के काव्य की शैली का प्रभाव पड़ा है।

(घ) जार्ज बर्नार्ड शॉ:—बर्नार्ड शॉ का भी हिन्दी के कुछ कवियों पर प्रभाव पड़ा है। शॉ का यह प्रभाव काव्य की विचार-वस्तु पर ही है। शॉ ने अपने दर्शन का प्रतिपादन 'मैन एण्ड सुपरमैन' नाटक के नर्क के दृश्य (Hell Scene) में तथा 'बैक टु मैथ्यूसला' के समस्त नाटक में किया है। उसका दर्शन सृजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) का है। वह कहता है कि जीवन शक्ति (Life Force) मनुष्य जाति के विकास में सदैव क्रियाशील रहती है।

शॉ के नारी सम्बन्धी विचार विचित्र हैं। वह नारी को प्रकृति रूप से (biologically) पुरुष से अधिक शक्तिशाली मानता है। मनुष्य को वह स्वप्नद्रष्टा कहता है जो स्वप्नों, आकांक्षाओं आदि के जगत में विचरण करता है। किन्तु नारी मनुष्य को जाति की वृद्धि के लिये आत्मवश करने में सफल होती है और मनुष्य स्वप्नद्रष्टा न रहकर भूतल का वासी हो जाता है। किन्तु सौ मनुष्यों में एक ऐसा भी प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है जो नारी के पाश में नहीं आता और वह मानवता को नये विचार देकर उसका विकास करता है। शॉ के अनुसार सच्चा कलाकार यही प्रतिभाशाली मनुष्य होता है।

शॉ के विकासवाद, नारी और प्रतिभाशाली व्यक्ति सम्बन्धी इन विचारों ने हिन्दी के कुछ कवियों पर अपना प्रभाव डाला है।

(ङ) डी० एच० लारेंस :—१६३६ के बाद की हिन्दी कविता पर लारेंस का भी प्रभाव पड़ा है। लारेंस को आधुनिक युग का रूसो कहा गया है। वह भावनाओं और संवेगों के जीवन को बुद्धि द्वारा संचालित जीवन से उच्चतर मानता है। उसके अनुसार मनुष्य का संवेगात्मक (emotional) और काम सम्बन्धी (sexual) जीवन आधुनिक सभ्यता की वर्जनाओं के कारण कुरूप हो गया है। वह चाहता है कि मनुष्य अपनी काम प्रवृत्ति को और प्रवृत्तियों की भाँति ही स्वाभाविक और आवश्यक समझें। लारेंस के विचार अत्यन्त मौलिक थे और वह रूढ़ि और परम्परा का त्याग चाहता था। वह चाहता था कि मनुष्य अपने अन्दर लज्जा की भावना को सर्वथा त्याग दें और अपनी काम प्रवृत्ति को एक स्वस्थ और ईमानदार दृष्टिकोण से देखें।

लारेंस में हमें बहुधा नारी विरोधी विचार मिलते हैं। उसके उपन्यासों और कविताओं में हमें पुरुष और स्त्री का द्वंद्व मिलता है। पुरुष और नारी का प्रेम वास्तव में प्रतिद्वंदियों का प्रेम है जो एक दूसरे पर विजयी होने का निरंतर प्रयास करते रहते हैं। पुरुष और नारी का यह द्वंद्व इस कारण है कि आज की सभ्य नारी पुरुष की प्रतिद्वंदी बन गई है और वह उसके पुरुषत्व का अपहरण कर उसे अपने वश में कर लेती है।[११] लारेंस के ये विचार शॉ के विचारों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं।

---

[११] ए० सी० वार्ड, 'द नाइन्टीन' टुयेन्टीज़ (तीसरा संस्करण, लन्दन १६२७)

The conflict between Man and Woman is a conflict based largely upon the idea that civilised woman has become essentially the antagonist of man, largely drawing from him his greatest possession—his manhood, his mascularity—and in course of time feminising him and bringing him under the control of her will.

बर्ट्रान्ड रसेल (Bertrand Russell) भी काम-प्रवृत्ति को अन्य प्रवृत्तियों की भाँति स्वाभाविक और आवश्यक मानता है। लारेंस और रसेल दोनों की 'सेक्स' सम्बन्धी भावना का आधुनिक हिन्दी कवियों पर प्रभाव पड़ा है।

इन लेखकों अतिरिक्त वाल्ट ह्विटमेन (Walt Whitman), सिटवेल्स (Sitwells), जोर्जियन्स (Georgians) और बिम्बवादियों (Imagists) का भी १६३६ के बाद की हिन्दी कविता पर प्रभाव पड़ा है।

(स) काव्य के विषयों और उपादानों पर प्रभाव

१६३६ के बाद की हिन्दी कविता में युग की विभिन्न मुख्य विचारधाराओं के संघर्ष के कारण अनेक प्रवृत्तियों का उदय हुआ है। इन सब प्रवृत्तियों में सबसे अधिक महत्व की प्रवृत्ति प्रगतिवाद की है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस विशेष युग को प्रगतिवादी-युग की संज्ञा दी जाती है। किन्तु प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभावका परिणाम मात्र है; वह इस युग की समस्त कविता का परिचायक नहीं है। अतएव यहाँ पर हम प्रगतिवाद के अतिरिक्त १६३६ के बाद की हिन्दी कविता की अन्य प्रवृत्तियों पर भी विचार करेंगे।

(१) प्रगतिवाद

(Progressivism)

जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है छायावाद अंग्रेजी के रोमांटिक प्रतिवर्तन की भाँति एक विशेष मनोवृत्ति का परिणाम था जिसमें मन बाह्य जगत से पलायन कर अपने अन्तर के तत्वों पर एकाग्र होता है। छायावादी कवि कठोर वास्तविकता से पलायन कर एक सूक्ष्म सौंदर्य की ओर उन्मुख हुए थे। छायावाद के पतन-काल में तो कविता जीवन से बहुत दूर जा पलायनवादिनी हो गयी थी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ काल से नई पीढ़ी के कवियों ने जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे इस पतनोन्मुखी रोमांसवादी काव्य के आदर्श को चुनौती दी। यह एक आश्चर्य की बात है कि हिन्दी छायावादी कविता के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त ही इस नवीन प्रगतिवादी कविता के सूत्रधार बने। पन्त ने 'पल्लव' की भूमिका के रूप में छायावाद का 'मेनीफ़ेस्टो' प्रस्तुत किया था और पन्त ही ने १६३८ में 'रूपाभ' के सम्पादकीय में

अपने परवर्ती कवियों से अहं की सँकरी प्रचीरों को तोड़ कर बाहर जन-जीवन में निकलने के लिये आदेश दिया। उन्होंने कहा :—

> **"इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।"[१२]**

पन्त द्वारा इंगित कविता का यह नया आदर्श वस्तुतः मार्क्सवादी आदर्श है। लेनिन (Lenin) के भी कला-विषयक यही विचार थे। उसने कहा था **"कला जनता की वस्तु है। उसकी जड़ों को श्रमिकों के जीवन की गहराइयों में जाना चाहिये। उसे उनके भावों, विचारों और इच्छाओं से अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करनी चाहिये।"[१३]**

कवि का नया आदर्श:—सुमित्रानन्दन पन्त ने इस प्रकार जीवन और साहित्य के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। कविता के इस नये आदर्श ने कलाकार को उसके अहं के खोखले से बाहर निकाल दिया और वह अपनी प्रेरणा के लिये धरती और उस पर आश्रित जन-जीवन की ओर देखने लगा। पन्त की 'पुण्य प्रसू'[१४] कविता में कवि के लिये यही संदेश है कि वह 'मृत्यु नीलिमा गगन' का ताकना छोड़कर इस 'स्वर्गिक भू' और 'मानव पुण्य प्रसू' की ओर देखे।

जनवादी मूल्य ही जीवन के सच्चे मूल्य हैं। धर्म, राजनीति और सदाचार की उपयोगिता जनहित ही में है। जो कुछ भी जन-जीवन से पृथक् है वह सत्य नहीं हो सकता। वह संस्कृति जहाँ सत्य, सुन्दर और शिव कुछ विशेष उच्च वर्गों के लिए है, उसका पतन अवश्यम्भावी है।

---

[१२] 'रूपाभ', पन्त का सम्पादकीय, वर्ष १, अंक १, जुलाई १६३८

[१३] दे० एंजिल फ्लोर्स द्वारा सम्पादित, 'लिट्रेचर एण्ड मार्क्सिज्म' (इण्डिया पब्लिशर्स, इलाहाबाद) पृ० १०

[१४] सुमित्रानन्दन पन्त, 'युगवाणी' (पहला संस्करण पृ० १६३६, पृ० १६)

धर्म नीति औ' सदाचार का

मूल्यांकन है जनहित...इत्यादि ('युगवाणी', पृ० ३५)

पंत टैनीसन की 'रिंग आउट द ओल्ड' कविता की ही भाँति जीर्ण पुरातन के नष्ट होने और नूतन के पल्लवित होने के लिए प्रार्थना करते हैं :

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन

ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन !

पावक पग धर आवे नूतन

हो पल्लवित नवल मानवपन ! ('युगांत', पृ० ३-४)

पन्त द्वारा इंगित यह नवीन व्यवस्था साम्यवाद की है जो अपने साथ स्वर्ण युग लावेगी:

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण

मुक्त लिखित मानवता करती मानव का अभिवादन।

('युगवाणी' पृ० ३९,)

पंत के अतिरिक्त रामविलास शर्मा ने भी कविता के नये आदर्श की ओर संकेत किया है। वे उन छायावादी कवियों पर व्यंग करते हैं जो अनन्त की चर्चा करते और अपने को शुद्ध कला का पारखी कहते हैं:

शुद्ध कला के पारखी, कहते हैं उस पार की

इस दुनिया की कौन कहे, भवसागर में कौन बहे ('तार सप्तक')

पर जन-मन के भावों को ध्वनित करने के लिये कविता के रूप में भी परिवर्तन आवश्यक है। एक स्थल पर सोलीवेनोस्की (Solivenosky) ने लिखा है कि समाजवाद का कवि होने के लिये न केवल समाजवाद के सिद्धान्तों में विश्वास आवश्यक है, वरन् साथ में काव्य की शैली में भी परिवर्तन करना आवश्यक है, कवि को संसार के प्रति अपना दृष्टिकोण ही बदल देना चाहिए।[१९]

पन्त की भी यही आकांक्षा है कि कवि जन-मन के भावों को नवीन छंद, आभरण, रस-विधान द्वारा व्यक्त करे:

---

[१९] जगन्नाथ प्रसाद मिश्र द्वारा 'साहित्य की वर्तमान धारा' (ग्रंथ माला कार्यालय, बाँकीपुर पटना) पृ० ६१-६३ में उद्धृत

To become an artist of Socialism means, if you come from intelligentsia, that not only must you be convinced that the ideas of socialism are correct, but that you must alter your previously-formed style: you must change your way of looking at the world.

कवि, नव युग की चुन भाव राशि
नव छंद, आभरण, रस-विधान,
तुम बन न सकोगे जनमन के
जाग्रत भावों के गीत-यान । (‘युगवाणी’, पृ० ६३)

कविता की शैली में अनावश्यक जटिलता कवि को प्रिय नहीं । उसकी कविता तो ऐसी होनी चाहिए जो जन-मन पर अपना सीधा प्रभाव डाल सके:

तुम वहन कर सको जनमन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिये तुम्हें क्या अलंकार । (‘ग्राम्या’, पृ० ७३)

मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास:—मार्क्सवादी विचारधारा का एक बड़ा भारी प्रभाव यह पड़ा कि कवि मानवता को सर्वोपरि सत्ता के रूप में देखने लगा, और ईश्वर के अस्तित्व के विषय में उसका दृष्टिकोण संदेहात्मक होता गया । एक स्थल पर गोर्की (Gorky) ने कहा था कि मेरे विचार में मनुष्य से परे कोई भी शक्ति नहीं, मानव सब वस्तुओं और विचारों का स्वयं निर्माता है, वह चमत्कार कर्त्ता है और प्रकृति की समस्त शक्तियों का भावी स्वामी है ।[१६] यही विचार हमें पन्त, नरेन्द्र आदि कवियों में मिलते हैं । पन्त के अनुसार मानवता सर्वोपरि है:

देश काल और, स्थिति से ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित । (‘युगवाणी’, पृ० ३६)

सत्य, सुन्दर इत्यादि मूल्यों की किसी दर्शन के संसार में खोज करना अनावश्यक है, वे सब मानवता में निहित हैं:

कहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ’ आनन्द अपार
इस मांसलता से है मूर्तित
अखिल भावनाओं का सार । (‘युगवाणी’, पृ० ५५–५६)

मनुष्य की अपरिमित शक्ति में विश्वास की भावना हमें नरेन्द्र की ‘प्रभातफेरी’ नाम की कविता में मिलती है । भूचाल, तूफ़ान आदि सब मानव

---

[१६] मेक्सिम गोर्की, ‘लिट्रेचर एण्ड लाइफ’ (१०४६) पृ० ५६

For me there are no ideas beyond man; for me man is the creator of all things and all ideas, he is the miracle-worker and the future master of all the forces of nature.

की असीम शक्ति के परिचायक हैं। पर्वत, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह सब उसकी महानता की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य ईश्वर तक का निर्माता है जिसका उसने उसकी उपयोगिता के अनुसार निर्माण किया है। ईश्वर की सत्ता मनुष्य की इच्छा के अनुरूप बनती और मिटती है। स्वर्ग मानव की रुचिर कल्पना है, और धर्म उसके मस्तिष्क की उपज।[१७] ऐसे अनेक विचार हमें 'प्रभातफेरी' में मिलते हैं।

मार्क्सवादी लेखक समाज के शोषित और पीड़ित वर्ग को कर्म का संदेश सुनाता है। इस संबंध में गोर्की का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। गोर्की का सिद्धांत था कि उठते हुए व्यक्ति की सहायता करो।[१८] वह वीरता पूर्ण जीवन के पक्ष में था। वह चाहता था कि समाज की समस्त प्रगतिशील शक्तियाँ जन-स्वातंत्र्य के युद्ध के लिये सदैव तत्पर रहें। गोर्की की 'माँ' (Mother) उपन्यास के विषय में मकिलोवस्की (Mikhailovski) लिखता है कि **"उनके प्रमुख चरित्र, पावेल, उसकी माँ और उसके साथी आगे बढ़ती हुई जनता का साथ देते हैं। वे एक उच्च आदर्श से जिसमें राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, प्रेरित होते हैं। वे जानते हैं कि उनके राष्ट्र-प्रेम से धरा पर एक दिन सबसे उज्ज्वल जनवाद अवतरित होगा। इस प्रकार गोर्की के हाथ में पीड़ित ताड़ित और तिरस्कृत साधारण जनता का 'अशक्त व्यक्ति' एक शक्ति शाली, अभिमानी और कर्मशील पुरुष बन जाता है।"**[१९]

इस साधारण जनता के 'अशक्त व्यक्ति' को अपनी वास्तविक शक्ति पहिचानने के लिये और जनता के स्वातंत्र्य-युद्ध में भाग लेने के लिये हिन्दी

---

[१७] नरेन्द्र, 'प्रभातफेरी' (पहला संस्करण, फर्वरी १९३९), पृ० २

[१८] मैक्सिम गोर्की, 'लिट्रेचर एण्ड लाइफ' पृ० ५६

Master ethics were as repugnant to me as slave ethics. I evolved a third moral precept for myself: support a man when he is getting up.

[१९] वही पृ० ११-१२

It describes the transformation of the oppressed... Pavel Vlasov, his mother and his comrades join the advancing vanguard of the people and are carried away by enthusiasm for a high ideal, by an active love for their country, which they are convinced, will one day be the brightest democracy on earth,...Thus the oppressed, suffering, humiliated 'little man' of the common people...develops into Gorki's hands into a strong, proud, active figure.

के कवि भी ललकारते हैं। नरेन्द्र नतशिर बन्दी से जागने के लिये और अपनी हथकड़ियाँ तड़का डालने को कहते हैं। वे उससे कहते हैं कि वह अपने को पहिचाने और अपने अतुलित बल-वैभव को देखे:

जागो पहिचानो अपने को...

देखो निज अतुलित बल-वैभव। ('प्रभातफेरी', पृ० ३)

पन्त अपनी कविता 'घन नाद' में श्रमिकों को जाग्रत होने और अपनी शक्ति को पहिचानने के लिये पुकारते हैं, क्योंकि ये श्रमिक ही धरा के सच्चे स्वामी हैं।[२०] श्रमजीवी जन-स्वातंत्र्य के युद्ध का नेतृत्व करता है। वह नवीन संस्कृति का निर्माता और जन-जीवन का कलाकार है। किन्तु आज परिस्थिति के वैषम्य से वह शापित बना है, और भय, अन्याय और घृणा के वातावरण में पोषित किया जा रहा है।[२१]

अतः मार्क्सवादी मानवता की अपरिमित शक्ति में अडिग विश्वास रखता है।

शोषक और शोषित वर्ग:—मार्क्सवाद समस्त मानव जाति को दो वर्गों में विभाजित देखता है। ये वर्ग हैं शोषक और शोषित। शोषितों में श्रमिक, कृषक और नारी का नाम लिया जा सकता है। इन तीनों के शोषण के हृदय-विदारक चित्र हमें मार्क्सवादी कविता में मिलते हैं। भारतीय ग्राम तो जैसे इस शोषण का केन्द्रबिन्दु है। वह एक ऐसा स्थान है:

जहाँ दैव जर्जर असंख्य जन

पशु जघन्य क्षण करते यापन! इत्यादि (ग्राम्या, पृ० १३)

ग्राम युवती का असमय ही यौवन ढल जाता है। उसका यौवन एक क्षण भर का सपना है, दुःख और वेदना में उसका तन शीघ्र ही जर्जर हो जाता है:

रे दो दिन का उसका यौवन!
सपना छिन का
दुखों में पिस
दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन धन! ('ग्राम्या', पृ० १६)

---

[२०] सुमित्रानन्दन पन्त, 'युगांत' (पहला संस्करण) पृ० ४७

[२१] वही 'श्रमजीवी' पृ० ४६

पंत का भारत माँ का चित्र सचमुच ही हृदय-विदारक है। पंत की भारत माता ग्राम-वासिनी है, वह तीस कोटि विभुक्षित और नग्न-तन सन्तान की माँ है। वह किसी तरु के तले नत मस्तक बैठी हुई है:

तीस कोटि सन्तान नग्न तन

... ...

नत मस्तक

तरु तल निवासिनी। ('ग्राम्या', पृ० ४८)

भगवतीचरण की 'भैंसा गाड़ी' कविता में भी भारतीय ग्राम्य के करुण चित्र हैं। उन्हें गाँव में मिट्टी के कच्चे घर ऐसे प्रतीत होते हैं मानों धरा की छाती को फोड़ कर फोड़े निकले हों। वहाँ बोझा ढोनेवाले पशुओं की भाँति मनुष्य जीते हैं, और स्त्रियाँ दासों को जन्म देती हैं। वहाँ के गंदे, बौने और कुरूप बच्चे नालियों के गन्दे पानी में रेंगने वाले कीड़ों की तरह पलते हैं।

पन्त का बुड्ढे भिखारी का वर्णन तो और भी अधिक हृदय-विदारक है। वह भूखा भिखारी जब किसी घर के सामने खड़ा हो जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई जानवर पिछले पैरों के बल उठ कर चलने का प्रयास कर रहा हो:

भूखा है कुछ पैसे पा, गुनगुना

खड़ा हो जाता वह घर

पिछले पैरों के बल उठ

जैसे कोई चल रहा जानवर। इत्यादि ('ग्राम्या', पृ०२६-३०)

नरेन्द्र का युवक क्लर्क पर कविता भी करुणासिक्त है। क्लर्क की ईश्वर से प्रार्थना है कि किसी को भी रोटी कमाने के लिये संसार में दास न बनना पड़े।[२२]

मार्क्सवादी लेखक नारी में एक ऐसा शोषित वर्ग देखता है जिसका नर द्वारा खूब शोषण किया गया है। नारी नर की सम्पत्ति और उसके विलास का साधन समझी जाती है। उसके स्वयं के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध कर दिया जाता है और वह मनुष्य से शारीरिक शक्ति कम रखने के कारण उसकी दासी बन गई है। उसके स्वयं का कोई व्यक्तित्व नहीं, वह नर की छाया मात्र है। ऐसे नारी संबंधी अनेक विचार प्रगतिवादी लेखकों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। पन्त लिखते हैं:

---

[२२] नरेन्द्र 'मिट्टी और फूल', पृ० ८६

"सामंत युग के स्त्री-पुरुष–सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदंड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है! उस सदाचार के अंचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बालविधवा अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या।...सामंत युग की नारी नर की छाया मात्र रही है।"[२३]

इन्हीं विचारों को पन्त ने पद्य में भी व्यक्त किया है :

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह : मूल्य चर्म पर उसका केवल अंकित,
अंग–अंग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इङ्गित संचालित, चिर पद लुन्ठित !

('ग्राम्या', पृ० ८५)

पंत नारी की स्वतन्त्रता के समर्थक हैं। उनके लिए नारी योनि नहीं है, उसका स्वयं का व्यक्तित्व है और वह समान अधिकारों की अधिकारिणी है :

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित !

('ग्राम्या', पृ० ८५)

पंत के अतिरिक्त 'अंचल' की अनेक कविताओं में भी हमें नारी के शोषण के हृदय विदारक चित्र मिलते हैं। उनकी 'शोषिता', 'दानव', 'आज मरण की ओर', 'तीन चित्र', आदि अनेक कविताओं में नारी शोषण का नग्न चित्र मिलता है। नारी मनुष्य की निर्दयता को चुपचाप सहन करती है। अपनी कविता 'दानव' में 'अंचल' मनुष्य को राक्षस कह कर पुकारते हैं जो नारी पर सब प्रकार के अत्याचार करता है। नारी तो केवल एक गुड़िया, कठपुतली अथवा एक सूखी सरिता की भाँति है।[२४]

'आज मरण की ओर में' अंचल वेश्या को मनुष्य की वासना का जीवित प्रतीक कहते हैं। वेश्या के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यंत करुणापूर्ण है :

माता बनी दूध भर आया, किन्तु न भरता पापी पेट
जननी बन कर भी पशुओं के आगे नग्न सकेगी लेट ?

('मधूलिका', पृ० ६)

---

[२३] सुमित्रानन्दन पन्त, 'आधुनिक कवि' २, पर्यालोचन, पृ० २३
[२४] रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', 'किरण बेला', (१९४१) पृ० ६७

'तीन चित्र' में 'अंचल' नारी को शोषिता कहते हैं; आँखों में आँसू भरे हुए, और वाणी से मूक हो वह नर द्वारा किये गये अत्याचारों को सहन करती है। वह असहाय पशु की भाँति है और उसका रुदन शताब्दियों से जारी है :

पशुता की कीड़े-सी वह, चीत्कार भरी दोहित नारी,
पंख कटे जिसके प्राणों के मूक रुदन सदियों से जारी।

('किरणबेला', पृ० १२५)

किन्तु 'अञ्चल' को विश्वास है कि एक दिन जब क्रान्ति का तूफान आवेगा तो वेश्याएँ तक 'योनि मात्र न रह कर' प्रदीप्त हो ज्वालामुखी उगलेंगी और इस प्रकार मनुष्य से उसके किये अत्याचारों का प्रतिकार लेंगी :

क्रान्ति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा...
ये बाज़ार की असंस्कृता निर्लज्जा नारियाँ
जो कि न 'योनि मात्र रह कर' बनेंगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वाला मुखी ! ('किरणबेला', पृ० ६०)

समाज में सबसे अधिक अत्याचार करने वाला वर्ग पूँजीपतियों का है। पूँजीपतियों द्वारा किये गये अत्याचारों और पूँजीवादी व्यवस्था के भयंकर परिणामों पर हिन्दी में अनेक कवितायें लिखी गई हैं। 'निराला' की 'कुकुरमुत्ता' पूँजीपतियों द्वारा किए गए शोषण के प्रति विद्रोह की आवाज़ बुलन्द करती है। उनकी कविता में गुलाब पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है :

ख़ून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट;
... ...
रोज़ पड़ता रहा पानी
तू हरामी ख़ानदानी !

नरेन्द्र की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' कविता भी प्रतीकात्मक है। धरा की छाती पर मध्याह्न काल ऐसे पड़ा है जैसे कि कोई विशाल अहि समस्त पृथ्वी को अपनी कुण्डली में भरे हुए हो; जब इस सर्प के मुख से विषभरी भयावह फूत्कार निकलती है तो धरा पर जीवन का कोई चिह्न शेष रहता हुआ नहीं प्रतीत होता :

ज्यों घेर सकल संसार, कुण्डली भार
पड़ा हो अहि विशाल
आक्रांत धरा की छाती पर
गुमसुम बैठा मध्याह्न काल !...

विषभरी भयावह फूत्कार
भीषम बेरहम थपेड़ों से सबको पछाड़...इत्यादि

('पलाश बन', पृ० ६६)

यही विशाल अहि अपने क्रूर अधरों पर उपहास रखकर संसार की ओर देखता है कि क्या कहीं जीवन का अवशेष अब भी है :

क्या जीवन का अवशेष कहीं ?
उपहास क्रूर अधरों पर धर, अपलक आँखों में ज्वाला भर
अजगर अब देख रहा है भव ! ('पलाश बन', पृ० ७०)

स्पष्ट है कि यह मध्याह्न पूँजीवादी शोषण का प्रतीक है जिसके आतंक से सारा संसार व्याकुल हो उठा है।

अनीश्वरवाद:—मार्क्सवाद ईश्वर पर आस्था में विश्वास नहीं रखता। ईश्वर, मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है जिसे शोषितों को सदैव दासत्व की जंज़ीरों में जकड़ कर रखने के लिए काम में लाया जाता है। अतः ईश्वर मन का भ्रम मात्र है। ईश्वर के नाम पर शताब्दियों से पीड़ित और निर्धन वर्ग का शोषण होता रहा है। अतएव मार्क्सवादी कवि ऐसे ईश्वर को, जो विभुक्षितों और पीड़ितों की पुकार के लिए बधिर है और जो शोषकों के वर्ग का है, अत्यंत उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। 'अंचल' कहते हैं :

ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्म प्रवंचक एक
जिसके प्राणों में विस्मृत है उर में सुख श्री का अतिरेक !...इत्यादि

('मधूलिका', पृ० ८)

नरेन्द्र के अनुसार तो ऐसे ईश्वर को व्यथा में पुकारना सबसे बड़ी भूल है :

जिसे तुम कहते हो भगवान...
जो बरसाता है जीवन में
रोग शोक दुख दैन्य अपार...
उसे सुनाने चले पुकार ? ('प्रभात फेरी', पृ० १०१)

पंत का ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण भी उनकी 'ग्राम देवता' कविता में व्यंग्यात्मक है। उनका ग्राम देवता भी जनता के शोषण का ही आकांक्षी है। वह जन-स्वातन्त्र्य के युद्ध को देख कर अपना हृदय थाम कर रह जाता है। ऐसे ग्राम—देवता से वे रूढ़ि-रीति की अफ़ीम खाकर चिर विश्राम लेने के लिये कहते हैं :

हे ग्राम देव, लो हृदय थाम
अब जन स्वातंत्र्य युद्ध की जग में धूमधाम
... ...
तुम रूढ़ रीति की खा अफ़ीम लो चिर विराम ! ('ग्राम्या', पृ० ५७)

प्रभाकर माचवे भी अपनी 'कछुआ' कविता में भारतीयों से रूढ़ि, रीति और अंधविश्वास त्यागने के लिए अनुरोध करते हैं। कछुआ भारतीय संस्कृति का प्रतीक है जो नये ज्ञान की सूक्ष्म लहर के स्पर्श तक से बचा रहना चाहता है :

जो हो, मुझे दीखते हो तुम, कछुए
मानो भारत संस्कृति के प्रतीक,
जिसे जरा भी छुए ना छुए
नये ज्ञान की सूक्ष्म सी लहर... इत्यादि

फ़ासिस्ट-विरोधी विचार:—मार्क्सवादी कविता में बहुधा फ़ासिस्ट-विरोधी विचार भी ध्वनित हुए हैं। फ़ासिज्म जो मनुष्यों की समता का समर्थक नहीं है साम्यवाद का विरोधी है। फ़ासिस्ट राज्य में जनता का शासन न होकर कुछ शक्तिशाली व्यक्तियों का शासन होता है, और जनता की इच्छा को इन्हीं शक्तिशाली शासकों की इच्छा का अनुगामी बनना पड़ता है।

मार्क्सवाद के अनुसार फ़ासिज्म में संस्कृति अपनी अन्तिम साँसे भरने लगती है। अतः अनेक 'प्रगतिशील' लेखकों ने फ़ासिस्ट-विरोधी विचार प्रकट किये हैं। 'दिनकर' की 'मेघ रंध्र में बजी रागिनी' इटली के फ़ासिस्टों के प्रति जिन्होंने १९३५ में अबीसीनिया पर आक्रमण किया था विद्रोह का स्वर ऊँचा करती है। रामविलास ने अपनी कविता 'जल्लाद की मौत' में, जिसकी प्रेरणा इन्हें एक सोवियट चित्र से मिली थी, नाज़ियों और फ़ासिस्टों के, जिन्होंने कभी रूस के जीतने का स्वप्न देखा था, 'विनाश और मौत का चित्र खींचा है :

जलता था कल रूसी घर
आज वहाँ जलता है फ़ासिस्ट और नाज़ी बर्बर ('तार सप्तक', पृ० १८)

रूस के प्रति सद्भावना:—मार्क्सवाद के स्वप्न का अवतरित होना रूस ही में सम्भव हुआ, अतएव अनेक प्रगतिशील लेखकों में हमें रूस के प्रति सद्भावना के विचार मिलते हैं। नरेन्द्र की 'लाल निशान' काव्य-कृति इस दिशा में महत्वपूर्ण कृति है। इसकी भूमिका में अमृतराय लिखते हैं :

"आज सोवियत जनता की अगुवाई में विश्व की जनता अपने पूँजीवादी तंत्र की रुकावटों के बावजूद अँधेरे के खिलाफ़ उजाले की लड़ाई लड़ रही है। उसमें उचित स्थान ग्रहण करने के लिये यह गीत भारतीय जनता में स्तालिन ग्रादियों के दृढ़ मनोबल, सोवियट जनता की चट्टानी एकता, मई दिवस के शहीदों की कृत निश्चयता, चीनी गेरिलों के देवोमय आत्म त्याग, जहान के लाल होने के अटल विश्वास का संचार करते हैं।"

'लाल निशान' कविता में नरेन्द्र समस्त श्रमजीवी जनता को एकता के सूत्र में बँध जाने के लिए कहते हैं। ये श्रमजीवी ही दुनिया भर के सच्चे मालिक हैं :

आओ सब मेहनतकश साथी
लिये हथौड़ा और दरांती!
जो मेहनत से पैदा करते
मालिक हैं वे दुनिया भर के
खोलो लाल निशान
हो सब लाल जहान।

'लाल रूस' में नरेन्द्र ने रूस की प्रशंसा में गीत गाया है। आज के रूस में पंचायत राज है, वहाँ के न्यायालयों में अन्याय नहीं होता, वहाँ साम्प्रदायिकता और बेकारी नहीं है, और वहाँ के मिल श्रमिकों के और खेत कृषकों के हैं। ऐसे लाल रूस का दुश्मन समस्त मानवता का शत्रु है :

लाल रूस का दुश्मन साथी
दुश्मन सब इन्सानों का!

'दिनकर' अपनी कविता 'दिल्ली और मास्को' में मास्को को 'समत्व की शिखा' और 'विधायिके अमर क्रान्ति की' के नाम से संबोधित करते हैं :

जय समत्व की शिखा

... ...

जय विधायिके अमर क्रान्ति की!

प्रभाकर माचवे ने भी अपनी एक सानेट[२९] में नाज़ी सेना के विरुद्ध लड़ने वाले रूस के नवयुवकों की वीरता का उल्लेख किया है।

---

[२९] 'तार-सप्तक,' सम्पादक स० ही० वात्सायन, 'सानेट', पृ० ५१

शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'मास्को है दूर अब भी', 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' आदि कवितायें भी कवि की रूस के प्रति श्रद्धा और सद्भावना को व्यक्त करती हैं।

क्रान्ति की भावना—मार्क्सवाद केवल समाज के शोषण के प्रति जागरूक होकर ही मौन नहीं रहता, वह उसके निराकरण का भी उपाय जानता है। वह क्रान्ति का आह्वान करता है। साम्यवादी ऐसे प्रत्येक क्रांतिकारी आन्दोलन का जो सामाजिक अथवा राजनीतिक दुर्व्यवस्था पर प्रहार करता है, पक्ष लेता है। इस क्रान्ति का सुन्दर दिग्दर्शन हमें 'नवीन', 'दिनकर', रामविलास और शिवमगल सिंह 'सुमन' की कविताओं में मिलता है।

'नवीन', जैसा प्रकाश चन्द्र गुप्त लिखते हैं,[२६] अपनी प्रवृत्ति में तो प्रगतिशील हैं, किन्तु सिद्धांत में नहीं। उनके 'कुमकुम' कविता-संग्रह में कवि की क्रांतिवादी आत्मा एक ज्वालामुखी की भाँति विस्फोट करती प्रतीत होती है। वे 'विप्लवगान में कवि से ऐसा गीत गाने के लिए कहते हैं जिससे समस्त संसार में उथल-पुथल मच जावे :

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जावे !

'दिनकर' के काव्य में 'नवीन' से अधिक ज्वाला है। वे क्रांति का विविध रूपों में आह्वान करते हैं। उनकी 'विपथगा' कविता में इसी क्रांति के एक रूप का दिग्दर्शन मिलता है। क्रांति स्वयं अपना परिचय देते हुये कहती है कि मेरे पायलों की पहली झमक ही में सृष्टि भर में कोलाहल मच जाता है, और जिस ओर मेरे चरण पड़ते हैं उस ओर धरा दब जाती है:—

पायल की पहिली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है
पड़ते जिस ओर चरण मेरे भूगोल उधर दब जाता है।
('हुंकार', पृ०७२)

इस क्रांति की चिर कुमारिका का मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के फण हैं, और उसके ललाट पर रुधिर का चन्दन है:—

मेरे मस्तक पर छत्र मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत-फन
मुझ चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर चन्दन।
आँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अंध-तिमिर-अंजन
संहार-लिपट कर चीर पहन नाचा करती मैं छूम छनन !
('हुंकार,' पृ० ७२)

---

[२६] प्रकाश चन्द्र गुप्त, 'नया हिन्दी साहित्य' (सरस्वती प्रेस बनारस, पहला संस्करण) पृ० १५०

अपनी 'दिगम्बरि' कविता में 'दिनकर' क्रांति का आह्वान करते हुए कहते हैं:—

उदय गिरि पर पिनाकी का कहीं टंकार बोला।
दिगम्बरि! बोल अम्बर में किरण का तार बोला।

('हुंकार', पृ० २४)

'हाहाकार' कविता में 'दिनकर' ने निर्धन व्यक्तियों की विषम स्थिति का हृदय-विदारक चित्र उपस्थित किया है। कवि की विद्रोही आत्मा वसुधा के भूखे पुत्रों के लिये दूध लाने के लिये अमरों के स्वर्ग को लूट लेने के लिए तड़प उठती है:—

हटो व्योम के मेघ-पन्थ से स्वर्ग लूटने हम जाते हैं
'दूध-दूध' ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं!

('हुंकार', पृ० २३)

'निराला' भी क्रान्ति द्वारा पूँजीवादी संस्कृति के विध्वंस और जनवादी संस्कृति के निर्माण की कामना करते हैं। वे मिलों की पूँजी का जनता में वितरण चाहते हैं:—

देश को मिल जाय जो
पूँजी तुम्हारे मिल में है। ('बेला')

वे श्रमजीवी समाज को क्रांति के लिये प्रेरित करते हैं। उनका विश्वास है कि आज की अमीरों की हवेलियाँ कल किसानों की पाठशालाओं में परिवर्तित कर दी जावेंगी:

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला।... ('बेला')

रामविलास शर्मा क्रांन्ति के लिये फसल का प्रतीक प्रयुक्त करते हैं जिसे धरती के पुत्र किसान मेहनत करके अन्त में काटेंगे:—

कुसंस्कृति भूमि यह किसान की
धरती के पुत्र की
जोतनी है गहरी दो चार बार दस बार
बोना महातिक्त वहाँ बीज असंतोष का
काटनी है नये साल फागुन में फसल जो क्रांति की!

('तार सप्तक,' पृ० ६३)

नरेन्द्र को विश्वास है कि भावी सन्तति इस संसार का क्लेश क्रान्ति के द्वारा हर सकेगी:—

धनुषाकार अर्द्ध रवि बन कर
बना चितिज प्रत्यंचा हम
अरुण अग्नि शावक बाणों से
क्षण में हर लेंगे भव का तम !...
वर्ण हीन असमान पतित को
उठा, शक्ति देंगे प्रलयंकर
अनियंत्रित शासन से पोषित
वैभव को हम भस्म भूत कर !

('प्रभात फेरी,' भावी सन्तति, पृ० ६)

वे क्रांति के प्रतीक शिव को इस धरा पर अन्याय समाप्त करने के लिए आह्वान करते हैं :—

नाचो शिव इस निर्दय जग पर
अन्यायी के आडम्बर पर !

('प्रभात फेरी,' शिव स्तुति, पृ० १०३)

शिवमङ्गलसिंह 'सुमन' ने भी अनेक कविताओं में क्रान्ति का आह्वान किया है। इस दिशा में उनकी 'एशिया की आग' कविता विशेष उल्लेखनीय है। इस शक्तिशाली कविता में उस क्रांति का उल्लेख है जिससे आज समस्त एशिया—भारत, वर्मा, इण्डोचीन आदि—भड़क उठा है।

अतः हम देखते हैं कि मार्क्सवादी विचार-धारा ने परवर्ती हिन्दी काव्य पर बड़ा शक्तिशाली प्रभाव डाला है। हिन्दी काव्य के प्रगतिवादी आन्दोलन को १६४२ के बंगाल के अकाल से और भी बल मिला। महादेवी और रामकुमार ऐसे छायावादी कवियों ने भी बंगाल के अकाल पर कविताओं की रचना की। महादेवी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि उस "दुर्भिक्ष की ज्वाला का स्पर्श करके हमारे कलाकारों की लेखन-तूली यदि स्वर्ण न बन सकी तो उसे राख हो जाना पड़ेगा।"[२७] इस प्रकार हम देखते हैं कि १६३६ के बाद की हिन्दी कविता में जनवादी आन्दोलन अत्यन्त वेगवान रहा है।

---

[२७] महादेवी वर्मा (सम्पादिका) 'बंग दर्शन' (प्रयाग महिला विद्यापीठ, पहला संस्करण) पृ० ७

(२) मनोविश्लेषणवादी धारा

नवीन हिन्दी कविता में प्रगतिवाद के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति मनोविश्लेषणवादी काव्य की है। मनोविश्लेषण विज्ञान ने हिन्दी कविता पर विविध प्रकार से प्रभाव डाला है। योरोपीय साहित्य की अतिवस्तु वाद (Surrealism),[२८] प्राकृतवाद (Naturalism) आदि प्रवृत्तियों पर मनोविश्लेषणवाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। डी० एच० लारेंस, वर्जनिया वुल्फ, टी० एस० इलियट, जेम्स जोयस, बर्ट्रेन्ड रसेल आदि अनेक पाश्चात्य लेखक मनोविश्लेषण विज्ञान के सिद्धांतों से प्रभावित हुए हैं। इनमें से अनेक लेखकों का हिन्दी के कवियों पर भी प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी के कवियों में 'सेक्स' को समस्त मानवीय प्रवृत्तियों का केन्द्र मानने में 'अंचल' सबसे आगे हैं। वे 'किरणबेला' की भूमिका में लिखते हैं कि आधुनिक साहित्य में वे ऊंचाइयाँ और गहराइयाँ हैं जो पहले सम्भव न थीं। यदि एक ओर वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता दी है, तो दूसरी ओर मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण विज्ञान ने यह दिखा दिया है कि मनुष्य का अपने ऊपर कोई नियंत्रण नहीं। वह अपने चेतन मन के नीचे दबी पड़ी रहने वाली अवचेतन एवं अर्द्धचेतन प्रेरणाओं के सामने सर्वथा असहाय है। उसके मस्तिष्क पर इन अज्ञात प्रेरणाओं का निरंतर आक्रमण होता रहता है।[२९] यहाँ पर यह स्मरण रहे कि 'किरण बेला' में 'अंचल' ने प्रगतिवादी होने की चेष्टा तो की थी, किन्तु फिर भी 'जीवन के स्वर्गी रोमांस के प्रति' उन्हें 'अवांछनीय आसक्ति' थी।[३०]

---

[२८]अतिवस्तुवाद साहित्य में युग की निराशा का परिणाम था। वह एक प्रकार का मानसिक रोग था जिसमें मनुष्य ने प्रथम महायुद्ध के भयंकर परिणामों से भागकर आश्रय लिया। जनता की बेकारी और योरोपीय व्यवस्था के क्रमिक उन्मूलन ने जनताको मार्क्सवाद अथवा फासिज्म में उपचार ढूँढ़ने अथवा अतिवस्तुवाद में पलायन करने के लिए वाध्य किया। अतः अतिवस्तुवाद एक काल्पनिक जगत में आश्रय खोजकर मन को संतुलित रखने के लिए एक ढंग था।

[२९]रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', 'किरणबेला', (पहला संस्करण १९४१) भूमिका, पृ० (क)

[३०]वही पृ० (ख)

'अंचल' ने अपने कम-से-कम तीन काव्य संग्रहों 'मधूलिका', 'अपराजिता' और 'लाल चूनर' में अपनी अदम्य काम-वासना को निर्बाध रूप से स्वर दिया है। उनकी इस कविता पर १९१६ में होने वाली लन्दन की अतिवस्तुवादी चित्रों की प्रदर्शिनी (Surrealist exhibition) पर दिया हुआ यह कथन उपयुक्त उतरता है। **"मन और शरीर का ह्रास और अस्वस्थता, निम्नतम और अवचेतन की पाशविक प्रवृत्तियों का अनियंत्रित उद्रेक, तर्क और संतुलन का सर्वथा अभाव—ये शब्द कुछ चित्रों के लिए अधिक कड़े न होंगे।"**[३१] इसी प्रकार 'अंचल' को सामाजिक जीवन की वर्जनायें उनकी कामुक प्रवृतियों के प्रदर्शन में बाधा स्वरूप नहीं हैं।

यहाँ पर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मनुष्य की अदम्य वासना के इस प्रदर्शन का बहुत कुछ कारण ज़ोला, फ्लाबेयर आदि प्राकृतवादी फ्रांसीसी लेखकों का भी प्रभाव है; वस्तुतः इस मनोविश्लेषण विज्ञान के युग में प्राकृतवाद को अपने लिये उपयुक्त वातावरण मिला। मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को उघारने और उसे पशु के स्तर तक गिराने में इन फ्रांसीसी प्राकृतवादी लेखकों और उनके अनुगामियों ने कोई कसर न रखी थी।

'अंचल' सामाजिक वर्जनाओं से परिपीड़ित हैं। उनकी वासना को अपनी अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण अवसर नहीं मिल सका और वह उनकी कविता में अब एक ज्वालामुखी की भाँति फूट पड़ी है:

वासना बस कुछ न पूछो, है विरस निष्फल जवानी...

('मधूलिका' अन्तर्गीत)

'अंचल' को अपनी वासना का प्रदर्शन लज्जास्पद कार्य नहीं प्रतीत होता:

कहाँ छिपाऊँ अर्द्ध रात्रि-सी यह निर्बन्ध पिपासा...

('मधूलिका', मधु का पापी)

अथवा

मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री चंचल... ('मधूलिका', उच्छ्वास)

---

[३१] फ्रांसिस स्कार्फ द्वारा 'आडेन एण्ड आफ्टर' (१९४५) पुस्तक में उद्धृत, पृ० १४७

Decadence and unhealthiness of mind and body, the unleashing of low and abnormal instincts, a total lack of reason and balance, a distasteful revelation of subconscions thought and desire—these words are not too strong for some exhibits.

नारी, 'अंचल' के लिए, भोग की वस्तु मात्र है, उसके एक क्षण के दर्शन से उनकी वासना भड़क उठती है ;

एक पल के ही दरस में जल उठी तृष्णा अधर में !

('मधूलिका', अन्तर्गीत)

नारी बस पुरुष के प्रणय की खेलाड़िन है:

किन्तु नारी सिर्फ़ नारी हो
तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खेलाड़िन
मैं तुम्हें पहचानता हूँ ! ('लाल चूनर', पृ० २४)

अपनी वासना की तृप्ति के मार्ग में वे धर्म और ईश्वर तक का **अवरोध** स्वीकार नहीं करते :

इन अमरों को आज दिखा दें, कैसे प्रेमी जन होते
कैसे प्यासे प्यास बुझाते, कैसे मधुप मगन होते ! ('मधूलिका', सखी)

'अंचल' आदर्श प्रेम में विश्वास नहीं रखते। प्रेम उनके लिए केवल 'भीम वासना' है, आत्मा की कोई वस्तु नहीं :

अरे यही है प्रेम विश्व की चिर विध्वंसमयी ज्वाला
उतर उतर कर चढ़ने वाली भीम वासना की हाला !

('मधूलिका' १११)

'बच्चन' की अनेक कवितायें उनकी उद्दाम वासना की प्रतीक हैं :

प्यास वारिध से बुझा कर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं ! ('मधुकलश', पृ० २६)

उन्होंने संसार की वर्जनाओं के कारण एक बार संयमी बनने की चेष्टा की थी:

वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था संयमी मैं ('मधुकलश', पृ० ३१)

किन्तु अब वे आधुनिक सभ्य जगत् द्वारा आरोपित नियमों को नहीं मानते जो मनुष्य को बाह्य रूप से सुन्दर किन्तु अन्तर में कुरूप ही बनाती है :

मैं छिपाना चाहता तो
जग मुझे साधू समझता... ('मधुकलश', पृ० ३२)

आज का कवि संयम और नियंत्रण की अपेक्षा अपनी वासना की स्वाभाविक पूर्ति को अधिक अच्छा समझता है :

पाप ही की गैल पर चलते हुये यह पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन डगों पर जो बँधे हैं आज घर में।

('मधुकलश', पृ० ६२)

पर मनोविश्लेषण विज्ञान का वास्तविक प्रभाव हमें 'अज्ञेय' के काव्य में मिलता है। 'अज्ञेय' पर कुछ अंग्रेजी कवियों का विशेषकर डी० एच० लारेंस, टी० यस० इलियट और ब्राउनिंग का प्रभाव पड़ा है।[३२] वे 'चिन्ता' की भूमिका में लिखते हैं :

"पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध पति और पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध—अनिवार्यतः एक गतिशील (dynamic) सम्बन्ध है। गति उसके किसी एक चण में हो या न हो, गतिशीलता—गति पा सकने की आन्तरिक सामर्थ्य—उसके स्वभाव में निहित है। पुरुष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की अवस्था है। वह शक्ति आकर्षण का रूप ले ले अथवा विकर्षण का, अथवा आकर्षण और विकर्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों के सन्तुलन द्वारा एक ऐसी अवस्था प्राप्त कर ले, जिसमें बाह्य रूप से कोई गति-प्रेरणा नहीं है; किन्तु किसी-न-किसी प्रकार आन्तरिक खिंचाव बना रहना अनिवार्य है। नाटकीय भाषा में हम इसे पुरुष और स्त्री का चिरंतन संघर्ष कह सकते हैं। यही मूल संघर्ष 'चिन्ता' का विषय है। पुस्तक के दो खण्डों में क्रमशः पुरुष और स्त्री के दृष्टिकोण से मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास, अन्तर्मन्थन, पुनरुत्थान और चरम संतुलन की कहानी कहने का यत्न किया गया है।"[३३]

अतः 'चिन्ता' में 'अज्ञेय' का विषय लारेंस के प्रिय विषय की भाँति पुरुष और स्त्री का द्वन्द्व है। पुरुष और नारी का प्रेम, लारेंस के अनुसार, वास्तव में दो प्रतिद्वन्दियों का प्रेम है जो एक दूसरे पर विजयी होने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं।[३४] यह भाव बहुत कुछ प्रसिद्ध मनोविश्लेषक एडलर (Adler) से प्रभावित होता जान पड़ता है जिसके अनुसार जीवन के कार्य व्यापारों में 'सेक्स' की अपेक्षा 'सेल्फ एसर्शन' (self assertion) अथवा

---

[३२] स० ही० वात्सायन 'अज्ञेय' 'चिन्ता' (दूसरा संस्करण १९४६) भूमिका
[३३] वही
[३४] सी० ई० एम० जोड, 'गाइड टु माडर्न थाट' पृ० ३१२

अधिकार-भावना की प्रवृति का अधिक महत्व है। लारेंस के अनेक उपन्यासों में हमें प्रेमियों का यह द्वन्द्व मिलता है। अस्तु उनके 'कंगारू (Kangaroo) उपन्यास का यह उद्धरण देखिये।

"They had another ferocious battle, Somers and **Harriet,** they stood opposite to each other in such fury one **against** the other that they nearly annihilated one another"

अतः लारेंस के प्रेमी एक दूसरे के व्यक्तित्व को नष्ट करने में सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। जैसा 'अज्ञेय' ने स्वयं कहा है उनकी 'चिन्ता' पुस्तक का विषय भी मुख्यतः नारी और पुरुष का यह द्वन्द्व है। पुस्तक के प्रथम खंड 'विश्वप्रिया' में अनेक स्थानों पर यह द्वन्द्व प्रकट हुआ है। 'अज्ञेय' के नारी-विरोधी विचार बहुत स्थलों पर उभर आये हैं। अस्तु वे इस खंड की ३६वीं कविता में कहते हैं:

तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान!
... दूर रहने की हृदय में ठानती क्या हो?
तुम पुरुष की वासना को जानती क्या हो?
मत हँसो नारी मुझे अपना वशीकृत जान...

अतः पुरुष नारी द्वारा वशीकृत होकर उसके उपहास का और अधिक लक्ष्य बनना नहीं चाहता।

एक अन्य स्थल पर प्रेमी पुरुष कहता है कि उसका उद्धार इसी में है कि वह अपने को नारी की बलि समझ सके:

"मेरी इच्छा यही है कि तुम्हें क्रूर और अत्याचारी समझ सकूँ क्यों कि मेरा उद्धार इसी विश्वास में है कि मैं तुम्हारी बलि हूँ।"
('चिन्ता,' प्रथम खंड, कविता ४४)

'अज्ञेय' के प्रेमी एक दूसरे के आखेट हैं:

"हम एक दूसरे का आखेट हैं, और अनिवार्य, अटल मनोनियोग से एक दूसरे का पीछा कर रहे हैं... और एक निरंतन नित्य तृष्णा की तरह दोनों आत्मायें एक दूसरे की चाह में छटपटाती रहती हैं, और प्रेम के ज्वालामय अमृत का, विषाक्त शक्ति का पान करती हैं..." ('चिन्ता', प्रथम खंड, कविता ४४)

प्रेमियों की यह अधिकार-भावना ही एक दूसरे के समीप आने में बाधा के रूप में आती है:

"मेरे ही हृदय में कुछ ऐसा कठोर, ऐसा प्रतारणापूर्ण विकर्षण था···कि मेरे समीप आकर भी कोई मेरा न बन सकता था।"

पुरुष और नारी का यह द्वंद्व हमें जार्ज बर्नार्ड शॉ के नारी-विरोधी विचारों में भी मिलता है। 'शॉ' नारी को प्रतिद्वंदी के रूप में देखता था जो प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष को अपने पाश में बन्दी कर स्वप्नद्रष्टा से एक साधारण रोटी कमाने वाला व्यक्ति बना देती है। अपने प्रसिद्ध नाटक 'मैन एण्ड सुपरमैन' में शॉ ने नारी को एक ऐसी ही बाघिन (Tigress) के रूप में दिखाया है। शॉ के नारी-संबंधी ये विचार हमें आरसीप्रसादसिंह और 'बच्चन' की कुछ कविताओं में ध्वनित होते मिलते हैं।[३९] अस्तु आरसीप्रसाद नारी को नागिन और बाघिन के रूप मे देखते हैं:

आओ मेरे आगे बैठो
जैसे बैठी होती काली
काली नागिन दो जिह्वा वाली...
उगलो जहर ओंठ पर
रख दो, रख दो कहता हूँ मैं
जीभ खून की प्यासी अपनी!
आओ बैठो मेरे आगे
× × ×
जैसे बैठी होती बाघिन···
लगता हो
अब झपटे, मानों अब निगले! ('नई दिशा,' पृ० ६८--६९)

'बच्चन' की नागिन कविता में नारी के लिये नागिन का प्रतीक प्रयुक्त हुआ है। सुन्दर नागिन आधुनिक युग की नारी है—जो कि पुरुष को मंत्रमुग्ध कर उसे डस लेती है:

सब साम-दाम औ' दंड-भेद
तेरे आगे बेकार हुआ···
अब शांति, अशांति, मरण जीवन
या इससे भी कुछ भिन्न अगर

---

३९ दे० शैलकुमारी, 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना,'-लेखिका ने पुस्तक में शॉ और लारेंस के नारी-विरोधी विचारों का हिन्दी कविता पर प्रभाव का उल्लेख किया है।

सब तेरे विषमय चुम्बन में
सब तेरे मधुमय दंशन में
नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन
मेरे जीवन के आँगन में ! ('शतरंगिनी,' पृ० ५२)

मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार आज का समस्त जीवन समाज की वर्जनाओं के कारण कृत्रिम हो गया है। और आज का मानव 'सेक्स' की प्रवृत्ति को स्वाभाविक समझने के स्थान पर उसका सदैव दमन करने में अपनी क्रियात्मक शक्ति का ह्रास करता रहता है। 'सेक्स' के प्रति यह भावना हमें डी० एच० लारेंस और बर्ट्रेंड रसेल के विचारों में मिलती है। लारेंस का तो दृढ़ विचार था कि आज की सभ्यता में मनुष्य का सारा भावात्मक एवं सेक्स संबंधी जीवन अत्यंत शुष्क और क्षुद्र हो गया। रसेल भी 'सेक्स' को भूख और प्यास ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के रूप में देखने के पक्ष में हैं। यह विचार हमें आज के कतिपय हिन्दी कवियों में भी मिलता है। उदाहरणार्थ पन्त प्रेम को स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में देखने चाहते हैं:

मन में लज्जित, जन से शंकित, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर !
क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण ?
('ग्राम्या' पृ० ८६)

मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव के परिणामस्वरूप हमें आज कवियों में यह दृष्टिकोण बहुधा मिलता है। 'अज्ञेय' के अनुसार भी प्रेम की सरलता और स्वच्छता हमारे मानसिक और धार्मिक संस्कारों द्वारा नष्ट हो चुकी है :

"हमने प्रेम की सरलता को नष्ट कर दिया है। हमने अपने धार्मिक और मानसिक संस्कारों से बाँध कर उसे एक मोह जाल मात्र बना लिया है। प्रेम आकाश की तरह स्वच्छ और सरल है।"
('चिन्ता', कविता ८६)

एक अन्य कविता में वे अपने प्रेम को सभ्य शिष्ट जीवन की कृत्रिमता में मुक्त रखने की बात कहते हैं :—

आओ बैठो !
तनिक और सटकर, कि हमारे बीच स्नेह भर का व्यवधान रहे, बस
नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की ?

('हरी घास पर क्षण भर', पृ० ५६)

मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव के फलस्वरूप हमें आज कविता में यौन-संबंधी प्रतीक भी मिलते हैं। इन प्रतीकों का कारण स्पष्ट है—आज की वर्जनायें इतनी कठोर हैं कि चेतन क्षणों में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असंभव-सा हो जाता है, और वह उनकी पूर्ति या तो स्वप्नजगत में या कला के जगत में करता है। 'अज्ञेय' लिखते हैं [36]कि आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति 'सेक्स' संबंधिनी वर्जनाओं से आक्रांत है; उसका मस्तिष्क दमन की गयी 'सेक्स' की भावनाओं के भार से दबा रहता है। उसकी सौंदर्य-भावना भी 'सेक्स' से उत्पीड़ित है और उसकी उपमायें और रूपक यौन-सम्बन्धी प्रतीक हैं। कभी-कभी जब प्रतीकों द्वारा व्यक्ति सत्य को पहचानता है तो वह परिस्थिति से ऐसे भागता है कि जैसे कोई विद्युत-प्रहार से चौंक उठा हो। 'अज्ञेय' डी० एच० लारेंस की एक कविता का आशय भी देते हैं जिसमें पुरुष नारी से बात करते समय विद्युत-प्रकाश होने पर चौंक पड़ता है, क्योंकि उससे प्रत्येक वस्तु स्पष्ट हो गयी है। आज यदि व्यक्ति की अनुभूतियाँ तीव्र हैं तो उसकी वर्जनाएँ कठोरतर हैं।

आधुनिक काव्य मनुष्य की इच्छाओं और उसकी वर्जनाओं के इस द्वंद्व को व्यक्त करता है। अस्तु 'अज्ञेय' की 'सावन मेघ' कविता यौन-सम्बन्धी प्रतीकों से भरपूर है:—

घिर आया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद श्वासाहत, चिंवातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष... ('तार सप्तक', सावन मेघ)

यौन-सम्बन्धी ये प्रतीक हमें विशेषकर 'अज्ञेय' और गिरजा कुमार माथुर की कविताओं में मिलते हैं।

मनोविश्लेषण विज्ञान ने व्यक्ति को अपने अचेतन मन में दबी पड़ी इच्छाओं को जानने में सहायता दी है। अतः आज का कवि बहुत कविताओं में आत्म-निरीक्षण करता दिखाई देता है। अस्तु टी० यस० इलियट अपनी 'एश वेन्सडे' (Ash Wednesday) कविता में आत्म-निरीक्षण करते हैं। वे अध्यात्मवाद की सीढ़ी पर चढ़ते समय पीछे की ओर मुड़ कर देखते हैं और उन्हें वहाँ एक छाया दिखाई पड़ती है, जो वस्तुतः उनके दमित अहं की ही छाया है। आगे बढ़ने पर उन्हें शारीरिक सौंदर्य का दृश्य दिखाई पड़ता है जो मन को उद्विग्न कर उसे विचलित करने के लिये पर्याप्त है:—

---

[36]स० ही० वात्सायन (सम्पादक) 'तार सप्तक' (१६४३), पृ० ७६

At the first turning of the second stair
I turned and saw below
The same shape twisted in the banister...
At the frist turning of the third stair...
The broadbacked figure drest in blue and green
Enchanted the maytime with an antique flute.

'अज्ञेय' ने भी 'चिन्ता' में ऐसी ही एक छाया का उल्लेख किया है। यह छाया अत्यन्त मोहक है, किन्तु अपने अन्तर में ज्वाला छिपाये हुए है :—

'छाया छाया तुम कौन हो?
ओ श्वेत, शान्त घन अवगुंठन! तुम कौन-सी आग की तड़प छिपाये हुये हो?
ओ शुभ्र शान्त घन परिवेष्टन तुम्हारे अन्तर में कौन सी बिजलियाँ सोती हैं।'

कवि जानना चाहता है कि यह छाया कौन है; शीघ्र ही उसे उत्तर मिलता है कि वह उसके अन्तर की ही छाया है :—

"वह है मेरे अन्वरतम की भूख!"

अतः यह मानव की जीवन-शक्ति (horme) है जो पूर्ति के लिये सदैव तृषित रहती है। मनुष्य, अज्ञेय के अनुसार, अपूर्ण तृष्णा है और नारी असम्भव पूर्ति :—

"मैं जन्म जन्मान्तर की अपूर्ण तृष्णा हूँ, तुम उसकी असम्भव पूर्ति।"

अतिवस्तुवादी (Surrealists) कवि स्वप्न अथवा समाधि (Trance) की पद्धति पर काव्य के उपकरण में असंबद्धता लाने के पक्ष में हैं। आज के कतिपय हिन्दी कवियों ने भी इस प्रकार की कवितायें लिखी हैं। 'तार सप्तक' में संगृहीत कुछ कवितायें स्वप्न की शैली पर लिखी गयी हैं जिनमें विचार एक दूसरे से असंबद्ध हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविश्लेषण विज्ञान ने हमारे काव्य के उपकरणों को यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है।

(३) सांस्कृतिक समन्वय की धारा

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार १६३६ के बाद के कवियों ने हमारी ह्रासोन्मुखी संस्कृति का उपचार या तो साम्यवाद में ढूँढ़ा है, अथवा उन्होंने मनोविश्लेषण विज्ञान के कल्पना-जगत् में पलायन किया है। किन्तु कतिपय

कवियों में युग की इस रुग्ण संस्कृति का उपचार एक समन्वयात्मक प्रणाली पर समाज के पुनर्निर्माण में पाया है। अंग्रेज़ी काव्य में यह समन्वयात्मक पुनर्निर्माण हमें एक सांस्कृतिक स्तर पर इलियट (Eliot) और एज़रा पाउन्ड (Ezra Pound) के काव्य में मिलता है। हिन्दी कविता में इस दिशा में सुमित्रानन्दन पन्त ने निर्देशन का कार्य किया है।

पन्त के अनुसार इस ह्रासोन्मुखी संस्कृति का कारण समन्वय का अभाव है। यदि कोई 'मैटर' अथवा पदार्थ को विकास (Evolution) का आधार मानता है तो कोई 'स्प्रिट' अथवा चेतना को ही केवल सत्य मानता है। किन्तु पन्त के अनुसार ये दोनों ही अतिवाद हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य के कल्याण के लिये पदार्थ और चेतना दोनों का समन्वय आवश्यक है।

यह समन्वय पन्त के काव्य की मूल विचार-धारा है। वे 'उत्तरा' की भूमिका में योरप के मार्क्सवाद और भारत के अध्यात्मवाद के समन्वय की चर्चा करते हैं:

> **"मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग सन्तुलित) जनतंत्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्वशान्ति तथा लोक-कल्याण के लिये आदर्श संयोग मानता हूँ।...ऐसा कहकर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन 'मैं योरप का जीवन-सौष्ठव तथा भारत का जीवन-दर्शन चाहता हूँ' की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ।"[३७]**

सुमित्रानन्दन पन्त 'युगवाणी' की भूमिका में भी इस जीवन की बाह्य और आभ्यंतरिक गतियों के संगठन पर और पदार्थ तथा चेतना के समन्वय पर बल देते हैं:

> **"लोक-कल्याण के लिये जीवन की बाह्य (सम्प्रति राजनीतिक, आर्थिक) और आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक, आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है।...पदार्थ (Matter) और चेतना (Spirit) को मैंने दो किनारों की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है।"[३८]**

---

[३७] सुमित्रानन्दन पन्त, 'उत्तरा' (पहला संस्करण) भूमिका, पृ० २१

[३८] पन्त, 'युगवाणी' (तीसरा संस्करण), भूमिका

पन्त ने अपनी कविताओं में इस समन्वय में अपने विश्वास को ध्वनित किया है। अस्तु,

अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग युग से निस्पृह निष्प्राण
उसे प्रतिष्ठित करके जग में दिया साम्य ने वस्तु विधान !('युगवाणी')

× × ×

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद! ('युगवाणी')

... ...

पश्चिम का जीवन सौष्ठव विकसित विश्वतंत्र में विकसित
प्राची के नव आत्मोदय से स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित !
('स्वर्ण किरण')

किन्तु पन्त मार्क्सवाद अथवा चेतनावाद किसी के संकीर्ण दृष्टिकोण से भी सहमत नहीं हैं।

पन्त पर उनके दर्शन-संबंध में बहुधा यह आरोप किया जाता है कि उनका दृष्टिकोण कितनी ही बार परिवर्तित हो चुका है और 'ग्राम्या' तथा 'युगवाणी' के मार्क्सवादी पंत आज 'स्वर्ण-किरण' 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' में अध्यात्मवादी पंत हो गये हैं। उनके काव्य को छायावाद ('वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुंजन'), प्रगतिवाद ('युगवाणी', 'युगांत' और 'ग्राम्या') और चेतनवाद ('स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा') की तीन श्रेणियों में क्रमिक रूप से बहुधा रखने की प्रवृत्ति हो गई है। किन्तु पन्त की कृतियों का यह विभाजन उनके काव्य की मूल धारा को समझने में अधिक उपयुक्त नहीं।

हम देख चुके हैं कि पन्त के रोमांटिक अथवा छायावादी काव्य की विशेषता उनका आदर्शवाद है जिसकी अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति 'गुंजन' और 'ज्योत्सना' में हुई है। वे वहाँ एक ऐसी विश्व-संस्कृति की कल्पना करते हैं जिसमें धर्म, जाति, वर्ण आदि के सब भेद मिट जावेंगे।

सर्व देश, सर्व काल
धर्म, जाति, वर्ण, काल
हिलमिल सब हों विशाल
एक हृदय अगणित स्वर ! ('ज्योत्सना')

विश्व-संस्कृति के इसी स्वप्न का पन्त के 'युगवाणी', 'ग्राम्या' और 'युगांत' के रचनाकाल में विकास हुआ है. किन्तुवहाँ वे संस्कृति के आभ्यंतरिक पक्ष की अपेक्षा बाह्य पक्ष से अधिक संबंध रखते हैं। विश्व संस्कृति के आभ्यंतरिक पक्ष पर पन्त ने आगे चल कर 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में जोर दिया है। अतः पन्त के काव्य में एक प्रकार की पूर्णता है जिसे प्रत्येक पाठक देख सकने में समर्थ नहीं हो पाता। उनका प्रगतिवाद और चेतनवाद उनकी विश्व-संस्कृति के दो पक्ष हैं। पन्त ने स्वयं 'उत्तरा' की भूमिका में लिखा है:

> **" 'ज्योत्सना' में मैंने जीवन की जिन वहिरंतर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपांतर होने की ओर इङ्गित किया है, 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में उन्हीं के बहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है।"[३९]**

पन्त के अनुसार कोई भी सामाजिक व्यवस्था जो ऊर्ध्वगामी नहीं है अधिक समय के लिए स्थापित नहीं की जा सकती[४०]। मार्क्सवाद भले ही संस्कृति को बाह्य रूप दे सके, किन्तु वह उसे आत्मा नहीं दे सकता। अतः किसी भी संस्कृति के पूर्ण विकास के लिए आध्यात्मिक चेतना आवश्यक है। पन्त इस आध्यात्मिक चेतना के लिए ज्योत्स्ना और स्वर्णप्रात के प्रतीक प्रयुक्त करते हैं। 'ज्योत्सना' नाटक में इन्होंने विश्व-संस्कृति की स्थापना के लिये सम्राज्ञी 'ज्योत्सना' के रूप में आध्यात्मिक चेतना का आह्वान किया है।

---

[३९]सुमित्रा नन्दन पन्त, 'उत्तरा' भूमिका, पृ० २

[४०]वही, पृ० ३२

"मेरी दृष्टि में पृथ्वी पर ऐसी कोई भी सामाजिकता या सभ्यता स्थापित नहीं की जा सकती जो मात्र समदिक् रहकर वर्ग हीन हो सके। क्योंकि ऊर्ध्व संचरण ही केवल वर्गहीन संचरण हो सकता है और वर्गहीनता का अर्थ केवल अवरैक्य पर प्रतिष्ठित समानता ही हो सकता है। अतः मानवता को वर्ग हीन बनाने लिये समतल प्रसार गामी के साथ ऊर्ध्व विकास गामी बनना ही पड़ेगा, जो हमारे युग की एकांत आवश्यकता है।"

'ज्योत्सना' नाटक की यह चाँदनी ही 'स्वर्णकिरण' में स्वर्णप्रात बन कर आई है : [४१]

खुला अब ज्योति द्वार
उठा नव प्रीति ज्वार,
सृजन शोभा अपार
कौन करता ऽभिसार
धरा पर ज्योति भरण
हँसी लो स्वर्ण किरण !

आध्यात्मिक चेतना के लिए पन्त ने अधिकांशतः स्वर्ण का प्रतीक प्रयुक्त किया है। 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' का जगत स्वर्णभोर, स्वर्ण निर्झर, स्वर्ण धूलि आदि का जगत है। इन नवीन आध्यात्मिक चेतना के आलोक में समस्त जगत अतीव सुन्दर प्रतीत होता है:—

स्वर्ण रजत के पत्रों की रत्न छाया में सुन्दर
रजत घंटियों सा सुवर्ण किरणों का झरता निर्झर !
('स्वर्ण किरण,' पृ० ३१)

× × ×

स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग ('स्वर्ण किरण', पृ० ५०)

× × ×

जयति प्रथम जीवन स्वर्णोदय ('स्वर्ण किरण',पृ० ६४)

× × ×

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी जगती के मरुथल में
('स्वर्ण धूलि', पृ० १)

पन्त द्वारा आध्यात्मिक चेतना पर जोर उन्हें टी० यस० इलियट के समीप ला देता है। दोनों के अनुसार परवर्ती सभ्यता के ह्रासोन्मुखी होने का

---

[४१]वही, पृ० १

"ज्योत्सना की स्वप्नकांत चांदनी (चेतना) ही एक प्रकार से 'स्वर्ण किरण' में युग-प्रभात के आलोक से स्वर्णिम हो गई है।
वह स्वर्ण भोर को ठहरी जग के ज्योतित आँगन पर
तापसी विश्व की बाला पाने नव जीवन का वर !
चाँदनी को संबोधित 'ज्योत्सना-गुञ्जन' काल की पंक्तियों में पाठकों को मेरे उपर्युक्त कथन की प्रतिध्वनि मिलेगी।"

कारण इसकी आध्यात्मिक हीनता है। दोनों ही उपनिषद् और गीता के उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि केवल आध्यात्मवाद ही इस सभ्यता को आने वाले संकट से बचा सकता है। इलियट 'वेस्ट लैण्ड' में उपनिषदों में दी गयी दया, दमन और दान की शिक्षा का पुनरावर्तन करते हैं। पन्त इसी प्रकार 'स्वर्ण धूलि' की अनेक कविताओं में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय' की औपनैषदिक शिक्षा का पुनरावर्तन करते हैं।

पन्त के चेतनावाद पर अरविन्द की 'डिवाइन लाइफ' पुस्तक का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। पन्त कहते हैं:—"**विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन विश्व को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यंत तुच्छ है।**"[४२]

किन्तु पन्त की विचारधारा पर पाश्चात्य दार्शनिकों का बहुत शक्तिशाली प्रभाव रहा है। डा० नगेन्द्र का यह कथन कि—"**आधुनिक युग के विधायक कवियों में पंत को जो पुरातन के प्रति सबसे कम मोह रहा है इसका कारण यह है कि उन पर पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता का प्रभाव अपने अन्य सहपाठियों की अपेक्षा अधिक है। कालिदास और भवभूति की अपेक्षा उन्होंने शेली, कीट्स और टैनीसन से अधिक काव्य प्रेरणा प्राप्त की है और उपनिषद् और षट्दर्शन की अपेक्षा हीगेल और मार्क्स का उनकी विचार-धारा पर अधिक प्रभाव पड़ा है।**"[४३] किसी सीमा तक उपयुक्त ही है। पंत पर बर्गसां (Bergson), हीगेल और शॉ का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। हीगेल की भाँति वे चाहते हैं कि समाज और राज्य दोनों चेतना (Spirit) अथवा भाव (Idea) के विकास द्वारा पल्लवित हों। बर्गसां और शॉ के सृजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) से वे बहुत प्रभावित हुए हैं। शॉ के नारी एवं प्रतिभाशाली मनुष्य सम्बन्धी विचार पन्त की 'अवगुन्ठन' नामक कविता में प्रतिध्वनित होते प्रतीत होते हैं। पन्त का पुरुष प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति है जो विश्व को नये विचार देकर उसे विकास के मार्ग पर ला देता है, उनकी नारी द्रष्टा न होकर जाति वृद्धि के लिए ही निर्मित है। अतः प्रतिभाशाली मनुष्य

---

[४२] वही, पृ० १६

[४३] नगेन्द्र, 'पन्त का नवीन जीवन दर्शन', दे० 'आजकल' (१५ अक्टूबर १९४६) पृ० २०

जो स्वभाव से द्रष्टा होता है कदापि अच्छा पति नहीं हो सकता, वह तो स्वप्न-लोक का वासी होता है जिसका इस संसार से कोई लगाव नहीं। ये विचार हमें 'अवगुन्ठन' कविता में मिलते हैं। नारी, कलाकार से जो स्वभावतः प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष है, विवाह नहीं चाहती, क्योंकि वह स्वयं तो 'जाति वृद्धि' के लिए है जब कि कलाकार स्वप्नों का द्रष्टा है; उन दोनों के मार्ग ही पृथक् है :

नारी का तन मा का तन है
जाति वृद्धि के लिए विनर्मित !
तुम हो स्वप्न लोक के वासी
तुमको केवल प्रेम चाहिये,
प्रेम तुम्हें मैं देती अबला
मुझको घर की क्षेम चाहिये।
अतः विदा दो मन के साथी
तुम नभ के मैं भू की वासी
नारी तन है, तन है, तन है
हे मन प्राणों के अभिलाषी !
तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा तुम
प्रेम, ज्ञान औ सत्य प्रकाशी,
नारी है सौंदर्य प्राण
नारी है रूप सृजन की प्यासी,
तुम जग की सोचो मैं घर की
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी।

('स्वर्णकिरण', पृ० ३९-४०)

अतः पन्त आध्यात्मिक चेतना को व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आवश्यक समझते हैं। केवल मार्क्सवाद ही सभ्यता को संकट से नहीं बचा सकता। मार्क्सवाद और अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय ही विश्व को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।

(द) काव्य के रूप पर प्रभाव

हम देख चुके हैं कि १९३९ के बाद की हिन्दी कविता पर मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण विज्ञान का विशेष प्रभाव पड़ा है। किन्तु इन दोनों प्रभावों के फलस्वरूप न केवल काव्य के विषयों और उपादानों ही में परिवर्तन हुआ, वरन् काव्य के विविध रूपों, शैली और भाषा में भी परिवर्तन हुए।

(१) काव्य की भाषा और शैली

आज के आदर्श कवि के लिए, ज़ोफ़री ग्रिगसन (Geoffrey Grigson) नामक एक पाश्चात्य आलोचक के अनुसार आवश्यक है कि वह चलती भाषा में जिसका वह अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करता है काव्य-रचना करे, उसे अपने दृष्टिकोण में व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी होना चाहिये।[४४] अतः आज का मार्क्सवादी लेखक काव्य में सरल भाषा का प्रयोग करता है। उसकी शैली और उसकी उपमायें, रूपक और प्रतीक सुगम और सरल होते हैं। उदाहरणार्थ पन्त की 'दो लड़के' कविता

मेरे आँगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते हैं अक्सर...इत्यादि

सामान्य जनता द्वारा बोधगम्य भाषा में लिखी गयी है। यह काव्य-गत भाषा की सरलता पन्त, नरेन्द्र, रामविलास, केदार, शिवमंगलसिंह आदि आज के प्रमुख प्रगतिशील कवियों में मिलेगी।

मार्क्सवादी कवि के रूपक और प्रतीक प्रकृति से न लिये जाकर परवर्ती जीवन से लिये गये हैं।

मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव के ही बहुत कुछ कारण हिन्दी में 'प्रयोगवाद' का नया स्कूल चल पड़ा है। प्रयोगवाद हिन्दी में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ आया था जिसमें 'अज्ञेय', भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, रामविलास, गजानन मुक्तिबोध और गिरजाकुमार माथुर की कवितायें थीं। 'अज्ञेय' ने पुस्तक की भूमिका में लिखा था :

"दावा केवल यह है कि वे सातो अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है। ...वे किसी एक स्कूल के नहीं—किसी मंज़िल पर पहुँचे हुये नहीं हैं अभी राही हैं—राही नहीं राहों के अन्वेषी।"

---

[४४] केनथ एलट द्वारा सम्पादित 'कन्टेम्पररी वर्स' (पेंग्युइन) में 'न्यू वर्स' की जोफ़री ग्रिगसन द्वारा लिखी गई भूमिका से उद्धृत, पृ० २०

I always judge poetry, first, by its relation to current speech; the language in which one is angry about Spain or in which one is pleasant or unpleasant to one's wife. I judge every poem written now, by poets under forty, for ends not purely individual, of the universe of objects and events.

ये कवि मुख्यतः मार्क्स और फ्रायड से प्रभावित हैं। कभी-कभी स्टीफेन स्पेंडर की भाँति वे मार्क्स और फ्रायड का समन्वय भी चाहते हैं। फ्रायड का प्रभाव 'अज्ञेय' और गिरजाकुमार माथुर पर अधिक है। वे दोनों अपनी कविताओं में 'फ्री थोट एसोसियशन' और स्वप्न पद्धति का प्रयोग करते हैं। जैसा कहा जा चुका है वे अपनी दमित 'सेक्स' भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये यौन-संबंधो प्रतीक प्रयुक्त करते हैं।

प्रयोगवाद के कवि विचित्र भाषा का प्रयोग करते हैं। अपना शब्द-भंडार बढ़ाने के लिये वे विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण विज्ञान, ग्रामीण बोलो, बाज़ार आदि के शब्दों का काव्य की भाषा में प्रयोग करते हैं। वे बहुधा शब्दों को मरोड़ते और उन पर प्रयोग करते हैं। यही कारण है कि उनकी शैली में एक प्रकार का 'भदेसपन' आ जाता है।

> **वंचना है चांदनी सित...**
> **शिशिर की राका निशा की शान्ति है निस्सार !...**
> **निकटतर-धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद**
> **मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में**
> **तीन टांगो पर खड़ा गदहा !**
> **निकटतम**
> **रीढ़ बंकिम किये, निश्चल किन्तु लोलुप**
> **खड़ा वन्य बिलार**–('तार सप्तक')

प्रयोगवादी काव्य में उसकी विचार-वस्तु की अपेक्षा रूप को अधिक प्रधानता दी जाती है। 'तार सप्तक' के प्रत्येक कवि ने अपनी कविताओं की भूमिका में काव्य की शैली पर छोटे-छोटे वक्तव्य लिखे हैं। अस्तु, प्रभाकर माचवे लिखते हैं :

> **"एक बार अपनी कविताओं को चित्रकला से एक शब्द उधार लेकर 'इम्प्रेशनिस्ट' अथवा 'बिम्बवादी' शब्द से मैंने परिचित किया था। संभव था मुझमें का चित्रकार मुझमें के कवि पर तब हावी हो रहा हो। सम्भव है विसलर, सिज़ान, गोया, डी रेवेरा की चित्रशैलीगत वर्ण योजना रिल्के, इलियट, लारेंस, स्पेंडर, लुई और ऑडेन की पद्य रचनात्मक वर्ण-योजना से टक्कर न खाती हो।... मैं यह**

मानने को भी तैयार हूँ कि बिम्बवाद ही कविता नहीं है, अगर आप यह मानें कि 'बिम्बवाद' भी कविता है।"[४५]

वे लिखते हैं :—

"कवितागत भाषा को भावानुकूल अदलने-बदलने का पूरा अधिकार हो जाना चाहिए। ज्यों-ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आम जनता की भाषा बनती चलेगी, उसमें प्रादेशिक शब्द अधिक आवेंगे, और यह इष्ट भी होगा।...हमारे अलंकार अधिक वैज्ञानिक, आधुनिक और वैशेषिक हो अन्यथा निरे अलंकार-सांख्य से निरंलकार काव्य-रचना बेहतर है।"[४६]

गिरजाकुमार माथुर भी कहते हैं कि "कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है।"[४७] 'अज्ञेय' कहते हैं कि उनकी एक विशेष कविता के उपमान यौन-प्रतीकार्थ रखते हैं।[४८] अतः ये प्रयोगवादी कवि काव्य की भाषा और शैली पर विशेष ध्यान देते हैं।

(२) काव्य के रूप

१६३६ के बाद की हिन्दी कविता के रूपों पर भी अंग्रेजी का महत्व-पूर्ण प्रभाव पड़ा है। गीति (lyric), संबोधन-गीति (ode) और शोक-गीति (elegy) आदि रूपों का प्रचलन १६३६ के बाद के हिन्दी के कवियों में रहा। प्रभाकर माचवे ने अनेक 'सानेट्स' (sonnets) लिखीं। प्रगतिशील कवियों ने व्यंग्यात्मक शैली पर कविताओं की रचना की। इस दिशा में 'निराला' का कार्य विशेषकर उल्लेखनीय है। 'कुकुरमुत्ता' में उनका पूँजी-वादियों पर व्यंग हम पहले देख चुके हैं। 'मास्को डाइलोग्स' में वे उनका 'केरीकेचर' देते हैं जो समाजवाद का आवरण तो पहने रहते हैं किन्तु अन्तर में महास्वार्थी हैं। 'प्रेम संगीत' में वे एक ब्राह्मण लड़के की कहारिन की लड़की से प्रेम की कथा कहते हैं, और इस प्रकार वे हमारी सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन पर प्रहार करते हैं। एक दूसरी कविता में वे हाईकोर्ट के कवियों और उच्च वर्ग के व्यक्तियों पर व्यंग कसते हैं :

---

[४५] 'अज्ञेय' (सम्पादक) 'तार-सप्तक', पृ० ५०-५१

[४६] वही, पृ० ५१-५२

[४७] वही, पृ० ४०

[४८] वही, पृ० ७६

दौड़ते हैं बादल यह काले काले
हाईकोर्ट के वकील मतवाले।
जहाँ चाहिये वहाँ नहीं बरसे
धान सूखे देख कर नहीं तरसे।
जहाँ पानी भरा वहाँ टूट पड़े
कहकहे लगाते हुये टूट पड़े।

पन्त, प्रभाकर माचवे, रामविलास आदि ने भी व्यंग्यात्मक शैली में काव्य-रचना की है। पन्त की 'ग्राम देवता', प्रभाकर माचवे की 'कछुआ' और रामविलास की 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' कविताओं से उद्धरण पीछे दिये जा चुके हैं।

आज मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण हिन्दी कवि लोक गीतों के अनुसरण पर कवितायें लिखने लगे हैं। किन्तु लोक गीतों का हिन्दी गीति-काव्य पर प्रभाव सर्वथा नवीन वस्तु नहीं कही जा सकती। १६३६ के पहले भी 'कव्वाली', 'कजली', 'विरहा', 'लावनी' आदि के अनुकरण पर हिन्दी में गीतिकाव्य लिखा जाता था। किन्तु लोकगीतों की जन-प्रियता का कारण आज बहुत कुछ मार्क्सवाद का प्रभाव है जिसके कारण जनवादी साहित्य की आज पर्याप्त मात्रा में रचना हो रही है। नरेन्द्र, पन्त, केदार, रामविलास, 'निराला' आदि सबने लोक-गीतों की शैली पर काव्य-रचना की है। अस्तु :

काटो काटो काटो करबी
मारो मारो मारो हँसिया। (केदार)

× × ×

सुनो साथियो अमरीका
के शहर शिकागो की है बात। (नरेन्द्र)

× × ×

काले काले बादल आये, न आये वीर जवाहर लाल ('निराला')

× × ×

लो छन छन छन छन
छन छन छन छन
हरित गुजरिया लेती मन! (पन्त)

नरेन्द्र की 'लाल निशान' में संगृहीत कवितायें लोकगीतों की शैली पर लिखी गई कविताओं का सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

(३) मुक्त छन्द (Free Verse)

आज मुक्त छन्द का हिन्दी के प्रमुख कवियों में अत्यधिक प्रचार है। आज के प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवि इस छन्द का यथेष्ट प्रयोग करते हैं। प्रयोगवादी कवि मुक्त छन्द और वैसे ही अन्य गद्यात्मक काव्य के रूपों के पक्ष में हैं। गिरजाकुमार माथुर अन्त्यविराम रहित (run on) पंक्तियों के मुक्त छन्द को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं।[४९] वस्तुतः प्रयोगवादी कवि काव्य के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। वे प्राचीन रूपों का बहिष्कार कर नये रूपों का भाव और विषय के अनुकूल आविष्कार कर रहे हैं।

अतः १९३९ के बाद की हिन्दी कविता में भाषा, शैली, छन्द और काव्य के रूपों में अनेक परिवर्तन हुये हैं। इस दिशा में उन पर अंग्रेजी काव्य का गहरा प्रभाव पड़ा है।

उपसंहार

अतः अंग्रेजी के प्रभाव के कारण परवर्ती हिन्दी काव्य में अनेक परिवर्तन हुये हैं। आज इस प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी काव्यमें दो प्रमुख वाद हैं—प्रथम प्रगतिवाद और द्वितीय प्रयोगवाद। प्रगतिवादी प्रधानतया मार्क्सवादी विचारधारा से और कुछ सीमा तक औडेन और उसके वर्ग के कवियों से प्रभावित हुये हैं। कुछ रूसी लेखकों ने भी उन्हें प्रभावित किया है। प्रयोगवादी कवि, जिनका नेतृत्व 'अज्ञेय' कर रहे हैं, अनेक आधुनिक अंग्रेजी कवियों से प्रभावित हुये हैं। उन पर विशेषतया टी० एस० इलियट, डी० एच० लारेंस, औडेन और स्पेंडर का प्रभाव है। जहाँ तक विचारधारा का संबंध है वे मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण विज्ञान से प्रभावित हैं।

पन्त का दृष्टिकोण इन सब कवियों में समन्वयात्मक रहा है। उनके अनुसार योरपीय मार्क्सवाद और भारतीय अध्यात्मवाद का समन्वय ही मानव जाति के कल्याण में सहायक हो सकता है।

अतएव अंग्रेजी के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी कविता न केवल विश्व की मुख्य विचार धाराओं से प्रभावित हुई है वरन् उसमें समन्वयात्मक दृष्टिकोण का भी विकास हुआ है।

---

[४९] वही, पृ० ४०-४१

काव्य के रूप में भी अंग्रेजी प्रभाव के कारण अनेक परिवर्तन हुये हैं। आज के काव्य के उपमान, उसकी भाषा और शैली सब नवीन हैं। मनो-विश्लेषण विज्ञान के फलस्वरूप स्वप्न-शैली पद्धति पर कवितायें लिखी गयी हैं और उनके रूप में असंबद्धता आ गयी है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी काव्य के अनेक नवीन स्कूलों का हिन्दी में अनुसरण हुआ है।

आज काव्य के प्राचीन रूपों को छिन्न करने की अत्यधिक प्रवृत्ति है। मुक्त छन्द का कवियों में बहुत प्रचार हो रहा है और नवीन छन्द प्रतिदिन निकाले जा रहे हैं। अतः इस अराजकता के काल में नव विकसित हिन्दी कविता के रूप की सही झाँकी प्रस्तुत करना हमारे लिये कठिन है।

उपसंहार

पिछले अध्यायों में हमने हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के कार्य का प्रयास किया है। हमने देखा है कि यह प्रभाव सदैव प्रत्यक्ष रूप से न आकर बहुधा बँगला साहित्य के माध्यम द्वारा आया है। इस नवीन प्रभाव के ही परिणामस्वरूप हिन्दी कविता अपनी प्राचीन जीर्ण-शीर्ण परम्परा के पाश से मुक्त हो सकी है। इस छोटी-सी अवधि में हिन्दी कविता एक विदेशी साहित्य और संस्कृति के तत्वों को किस प्रकार आत्मसात् करने में सफल हो सकी—यह वस्तुतः एक आश्चर्यजनक घटना है।

आधुनिक हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी का परिणाम इसके उपकरण तथा बाह्य स्वरूप दोनों पर ही समान रूप से पड़ा है। जहाँ तक काव्य के विषयों और उपादानों का संबंध है यह प्रभाव अनेक विविध और जटिल परिवर्तन लाने में समर्थ हुआ है। प्रथम, अंग्रेजी के प्रभाव के प्रारंभकाल ही से हमें हिन्दी काव्य की राष्ट्रीय धारा का क्रमिक विकास मिलने लगता है। शेक्सपियर और मिल्टन, गॉडविन, बर्क और मिल आदि पाश्चात्य लेखकों की कृतियों के अध्ययन के फलस्वरूप भारतवासियों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना का शीघ्र ही उद्रेक हुआ। अंग्रेजी साहित्य की आधुनिक भारतीय साहित्य को एक महत्वपूर्ण देन यही राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना है।

दूसरी मुख्य प्रवृत्ति बुद्धिवाद की है जिसने भारतीय जनता के मानसिक जगत और फलतः भारतीय साहित्य की भाव-भूमि को आन्दोलित किया है। अवतारवाद की ऐतिहासिक व्याख्या और अवतारों के दैवी स्वरूप का बहिष्कार कर उनके मानवी स्वरूप को प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति, अलौकिक और कपोल-कल्पित घटनाओं और कृत्यों का बहिष्कार, मनुष्य का मनुष्य के रूप में समुचित आदर, पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण इत्यादि आधुनिक हिन्दी काव्य की विशेषतायें पश्चिम की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के प्रभाव का परिणाम हैं। इस दिशा में धार्मिक और पौराणिक विषयों पर

लिखने वाले हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिली-शरण गुप्त, मिल्टन आदि पाश्चात्य महाकवियों से प्रभावित हुये थे, यद्यपि यह प्रभाव उन पर बँगला साहित्य के महान कवि मधुसूदन दत्त की कृतियों द्वारा पड़ा था। किन्तु सम्भवतः आधुनिक हिन्दी कविता के विषयों और उपादानों पर सर्वाधिक महत्व का परिवर्तन इंग्लैंड के रोमांटिक साहित्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप आया है। इस प्रभाव का एक परिणाम यह पड़ा कि आधुनिक हिन्दी कविता में सौंदर्यवादी प्रवृत्ति का वेग से विकास होने लगा। हिन्दी के कवि प्रकृति को एक अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखनेवाली सुन्दर वस्तु के रूप में देखने लगे। वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और टेनीसन आदि अंग्रेजी के कवियों से प्रभावित हो हिन्दी कवि न केवल प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति आकर्षित हुये वरन् वे प्रकृति में स्वतंत्र सत्ता का भी दर्शन करने लगे।

इस सौंदर्यवादी आन्दोलन का एक दूसरा पक्ष नारी-सौंदर्य के चित्रण के रूप में आया। यहाँ पर हमें प्राचीन परम्परा से पूर्णतया विच्छेद मिलता है। हिन्दी के पहले के कवि नारी-रूप के शारीरिक पक्ष से प्रभावित थे, किन्तु इन नवीन कवियों ने नारी-रूप का इस प्रकार चित्रण किया है कि वह इस भौतिक संसार की प्राणी प्रतीत न होकर अशरीरी, परम दिव्यरूपा (ethereal) प्रतीत होने लगी। इस दिशा में पन्त, इलाचंद जोशी आदि की इन प्रकार की कविताओं पर शेली, स्विनबर्न और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-रूप के चित्रण में अंग्रेजी का इतना अधिक प्रभाव रहा है कि जब कभी इन कवियों ने ऐन्द्रिक चित्र भी उपस्थित किये तो वे भी कीट्स और बायरन से प्रभावित होकर।

अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य के संस्पर्श के फलस्वरूप ही आधुनिक हिन्दी कविता में मानवतावाद की प्रवृत्ति का विकास हुआ। यहाँ पर पहली बार साहित्यिकों ने मनुष्य को मनुष्य के रूप समुचित आदर प्रदान किया और श्रमिक एवं कृषक-वर्ग के जीवन को काव्य का उपयुक्त विषय ठहराया। इसके अतिरिक्त दुखी मानवता को सेवा द्वारा ईश्वर प्राप्ति की नवीन भावना आधुनिक हिन्दी काव्य में कामटे के 'पाज़टिविस्ट' दर्शन (positivist philosophy) के प्रभाव के परिणामस्वरूप बंकिम, विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ के माध्यम द्वारा आई। नारी-स्वातंत्र्य संबंधी आन्दोलन की प्रगति का श्रेय भी पश्चिम की इस मानवतावादी प्रवृति को है। किन्तु आधुनिक हिन्दी कविता की मानवतावादी प्रवृत्ति को सर्वाधिक बल शेली, वर्ड्सवर्थ और बायरन के काव्य से मिला

जो कि स्वयं फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों से प्रभावित था। 'निराला' का विद्रोहात्मक आदर्शवाद, जिसकी अभिव्यक्ति हमें उनके 'बादल राग' में मिलती है शेली की क्रांति विषयक भावना के बहुत कुछ अनुरूप है। शेली के काव्य के अन्य पक्ष, 'प्लेटोनिज़्म', की अभिव्यक्ति हमें पन्त के काव्य में मिलती है। शेली की भाँति पंत भी अत्याचार और शोषण के प्रति विद्रोह करते हैं और समस्त मानवता को प्रेम, शान्ति और हर्ष के साम्राज्य में पुनर्जीवित होने की आकांक्षा रखते हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी धारा की अनेक विशेषताओं पर भी अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा है। यहाँ पर भी यह प्रभाव सदैव प्रत्यक्ष न आकर बहुधा बंगला साहित्य के माध्यम द्वारा आया है और रवीन्द्रनाथ ने तो विशेषकर आधुनिक हिन्दी काव्य की रहस्यवादी प्रवृत्ति पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। वर्ड्सवर्थ की भाँति पंत बालक में दार्शनिकता का आभास पाते हैं और उसे ऐसी रहस्यमयी शक्तियों से सुशोभित पाते हैं जो वयस्क व्यक्तियों की पहुँच से सर्वथा परे हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी कवि ब्लेक की भाँति सरलता, भोलापन और दया आदि बाल्यपन की विशेषताओं को वे समोचित महत्व देते हैं। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों, विशेषतया वर्ड्सवर्थ और शेली, का सर्व-चेतनवाद भी हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता में मिलता है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक प्रेम और विवाह का प्रतीक, जो बहुधा हमें आधुनिक रहस्यवादी कविता में मिलता है, भी मूलतः ईसाई रहस्यवाद और अंग्रेजी रोमांटिक कविता से प्रभावित है।

अंग्रेजी साहित्य के संस्पर्श का एक अन्य प्रभाव आधुनिक हिन्दी कविता की निराशावादी प्रवृत्ति है। यद्यपि इस दिशा में हिन्दी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य की खिन्नता (melancholy) का भी प्रभाव पड़ा है, पर अधिकांशतः यह प्रवृत्ति फिट्ज़जेरेल्ड के निराशावाद का परिणाम है। फ़िट्ज़जेरेल्ड के काव्य की भाँति हिन्दी की आधुनिक निराशावादी कविता में हमें भाग्यवाद और भोगवाद के दो मुख्य तत्व मिलते हैं।

आजकल की हिन्दी कविता पर पश्चिम के दो प्रभाव—मार्क्सवाद और मनोविश्लेषणवाद—अधिक महत्व के हैं। मार्क्सवादी विचारधारा के साथ-साथ हिन्दी के नवीन प्रगतिवादी लेखक कुछ रूसी लेखकों और आडेनवर्ग

के इस कथन में अतिशयोक्ति भले ही हो किन्तु उसमें सत्यता अवश्य है। उनका कथन न केवल बँगला साहित्य पर, किन्तु जैसा उन्होंने स्वयं कहा है, आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के विषय में उपयुक्त लगता है। विशेषकर आधुनिक हिन्दी साहित्य के विषय में तो यह बात बहुत कुछ ठीक उतरती है। इसका कारण यह है कि हिन्दी साहित्य ने अंग्रेजी साहित्य के अनेक तत्वों को बँगला के माध्यम से ही ग्रहण किया है और उसकी गतिविधि भी पिछले लगभग सौ वर्षों में बहुत कुछ बँगला साहित्य की गतिविधि के अनुरूप ही रही है।

अस्तु आधुनिक हिन्दी कविता की प्रगति का बहुत कुछ श्रेय अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव को है। किन्तु अंग्रेजी साहित्य के ऐसे अनेक महत्वपूर्ण तत्व अभी तक हिन्दी कवियों से अछूते रह गये हैं जिनका उचित प्रयोग कर हिन्दी कविता और भी समृद्ध बन सकती है। स्वतंत्र भारत में तो हिन्दी कवियों और साहित्यकारों का इस दिशा में उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया है। अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने के साथ अंग्रेजी साहित्य और भावधारा से भी मुक्ति पाने का प्रयास स्वाभाविक ही है। किन्तु इस प्रकार की मनोवृत्ति हमारे साहित्य के लिये कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकती। कोई भी साहित्य प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता यदि वह अन्यान्य साहित्यों के प्रभावों को ग्रहण न करे। अंग्रेजी साहित्य आज संसार का सर्वाधिक समृद्ध साहित्य है और उसके तत्वों को ग्रहण करना किसी भी स्थिति में लज्जा और उपहास का विषय नहीं हो सकता। ऐसे समृद्ध साहित्य के शक्तिशाली प्रभाव को ग्रहण न करने से हमारे साहित्य का विकास रुक जावेगा, और उसकी आत्मा संकीर्ण जातीयता की कारा में बन्दी हो जावेगी। इसके विपरीत अंग्रेजी साहित्य का उचित अध्ययन हमारे साहित्य को उत्तरोत्तर उन्नत बना सकेगा। किन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब हमारे कवि और साहित्यकार अंग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को अपनी प्रतिभा की भट्टी में गलाकर उन्हें जातीय परम्परा के अनुरूप नवरूप प्रदान कर सकेंगे।

---

arrived, to have struck roots. This is as true of the present day as of the nineteenth century, and of other Indian Vernacular literature as of Bengali. We have had no Bengali writer who has sought from Europe the intellectuality and scientific realism which our literature most needed, and which are among the best things Europe could give.

अतः भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने के लिये स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी का अध्यापन-कार्य आज और भी महत्व का है। डा० अमरनाथ झा के अनुसार भारत में अंग्रेजी के अध्यापक का अब तक एक महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और भविष्य में भी रहेगा। वह भारतीय भाषाओं के साहित्य को समृद्ध बनाने का कार्य करेगा और उसे नवीन रूपरेखा और दिशा प्रदान कर साहित्यकारों के दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक सिद्ध होगा।[४] हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी कविता अंग्रेजी कविता के साधारण तत्वों को ही ग्रहण कर सन्तुष्ट न रहेगी वरन् वह उसके मुख्य तत्वों को आत्मसात् कर अपने उज्वल भविष्य का निर्माण कर सकेगी।

---

[४] 'एसेज एण्ड स्टडीज' (इंग्लिश एसोसियेशन, यू० पी० ब्रांच १९३८) पृ० iv

The teacher of English in India does not need to apologise for his existence. He performs and will continue to perform an important function. He will help to enrich the literatures of the land, to point new lines of advance, to suggest fresh forms and unattempted themes, to adapt western methods of criticism and analysis, to broaden outlook and present a wider prospect.
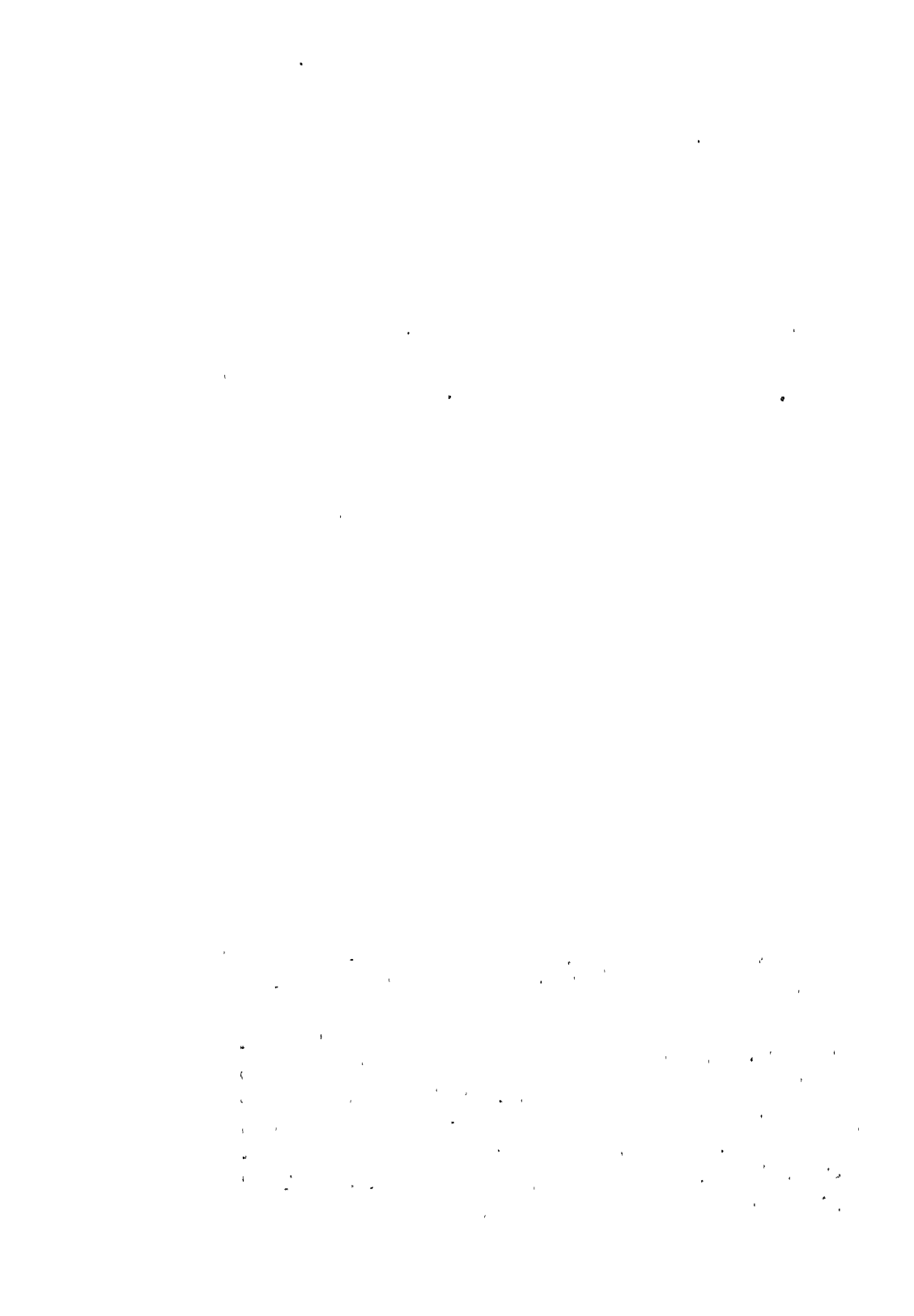
परिशिष्ट

परिशिष्ट (क)

नगेन्द्र
एम० ए०, डी० लिट्०

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
२६-१-५३

Dear Sri Varma,

Kindly pardon me for the delay. I have been extremely busy all these days and even now I can hardly find any time for detailed reply.

To be very brief:

(i) Kindly read Sri Kamlesh's interview with me from his book "मैं इनसे मिला"— II Volume.

(ii) Shakespeare, the romantic poets—specially Wordsworth, Shelley and Keats. Browning also appeals to the more serious Indian mind. A few intellectuals have a craze for Eliot among the moderns, but their number is very limited. I am not quite sure whether the English novelists are very popular with our readers. Those who specialize in criticism or have an aptitude for critical study read Coleridge, Matthew Arnold, Bradley, I. A. Richards, and at a lower level Hudson and Worsfold etc. A few others who choose criticism as their special study read continental masters.

(iii) Psychology is, of course, very useful, but it should be used mainly for interpretation.

(iv) Future should be bright in spite of the present stagnation. No. Hindi poetry and specially criticism have yet to

develop. We have so far produced only one great critic—Pt. Ramchandra Shukla. We are more fortunate in the domain of poetry. Of course, we have to draw from all sources—not necessarily from English only—may be through English—specially so far as criticism is concerned. But a proper study—rather a sound reorientation of our ancient critical theories in terms of western poetics and western psychology is all the more necessary. In poetry, efforts should be made to create an atmosphere for a healthy growth of our native genius. Borrowing is ridiculous, even conscious assimilation is harmful in poetry.

(v) In poetry it (English influence) has been responsible for lots of buffoonery. In criticism also it has been misused and abused by people lacking in 'Samskar' (Indian literary culture.)

Kindly excuse this brevity. It is not possible to say all I wish to, and in a right way in a letter like this.

With kind regards,

Yours sincerely,
(Sd.) Nagendra

परिशिष्ट (ख)

Gokulpura, Agra,
4. 2. 53.

Dear Ravindra Sahayji,

Thanks for your letter of 9th December, '52. With apologies for the delay, I wish to say the following about the points mentioned by you:

1. I have hardly written any poetry for the last ten years. In the course of my usual teaching work, I do read English poets and enjoy their writings. I am particularly fond of Milton and Christina Rossetti, of the first because he embodies many fine qualities of a man and of the latter because she is fine as a woman poet.

2. I do not consider Auden, Spender, Lewis, etc., either as good Marxists or as good poets.

3. I have mentioned the English writers above; among Russians, I am fond of Gorki and particularly his autobiography.

4. It is difficult to answer the question as to which English critics have influenced my critical writings most. I do not know if I have been influenced by them at all. I think that some of the English poets are the best critics,—Shakespeare in Hamlet, Keats in his letters and his little notes on Shakespeare and Milton, D. G. Rossetti in his commentaries on Keats and his poems on Keats and Dante (Keats himself shows a fine understanding of Dante in some of his poems) and so on.

5. I think that progressive literature has brought about a distinct change in our culture in favour of popular forms and ideas that are useful to the people. I do not know to which Hindi poets you are referring in connection with "Marx–Freud marriage". At any rate, I am not a supporter of the "synthesis" between Marxism and Psycho–Analysis.

6. Nirala knew very little English poetry before he became the great poet that he is. He knew Shakespeare's sonnets uncommonly well but they are not a part of romantic poetry proper. He has not been influenced by any particular romantic poet. He has developed fondness for Shakespeare's plays but his real inspirers are Tulsidas and Ravindranath. In his latest poems like Kukurmutta, he is not at all indebted to Western poets except as indirectly where he ridicules to T. S. Eliot. The sources of his humanism are our people, particularly the kisans of his district and among them too, the untouchables. A rebellious personality such as Nirala's is not built up by influences but grows out of life itself.

7. For your thesis, concentrate attention on lesser poets like Pant and critics like Nagendra. The lesser the creative talent of a man, the more he is open to influences. Here are a few hints for you : Pant (Shelley), Nagendra (Freud), Agyeya (D. H. Lawrence, Andre Gide, T. S. Eliot), Shivadan Singh Chauhan (Caudwell), Bachchan (Fitz-Gerald), etc.

I hope, the above would do for the time being.

With best wishes for the success of your work,

Yours Sincerely,
Sd. Ramvilas Sharma

परिशिष्ट (ग)*

1. I am not particularly influenced by any English poet. My favourites are John Donne, Blake. Wordsworth, Shelley, Swinburne and Yeats. In my poetry I bring the boldness of approach of the Europeans to life and its problems.

2. Omar Khayyam at a particular period of my life did influence me. I took his wares and poured my own wine into them. Omar has the dryness of a rationalist and I am nothing if not heart first, heart second, heart last.

3. English Romantic poetry gave me the freedom to look at life anew. It broke the traditional shackles and ensured me that the experiences of life, at any time, of any man are worth recording and writing about. The greatest enemies of life as well as of literature are the conventions which start enslaving us before we realise their wickedness and also their stupidity.

4. Wine for me in my earlier poetry is equal to life. vitality, vigour; it also stands for love, beauty, youth and passion. The mystic meaning of wine was hardly, if ever, in mind unless subconsciously.

5. My pessimism is the individual's helplessness before Society and Destiny. I never surrendered the faith in the triumph of the individual both above Society and Destiny.

6. Nisha Nimantaran, Ekant Sangeet, Akul Antar, and Satrangini are the stages through which I have emerged from

---

* परिशिष्ट में दिये गये ये अंश 'बच्चन' द्वारा डा० कैलाश चन्द्र माथुर को लिखे गये पत्र (१०-१-५२) से उद्धृत किये गये हैं।

gloom into iife, from chaos into harmony. 'Satrangini'—the rainbow—is the symbol of harmony, light and hope, of synthesis of various forces of life into a single whole beauty. An artist is self-centred only to the extent his self is needed to be the mirror or touchstone for all. I am individual at times, individuated never.

7. Chhayavad can not be killed by a sentence. Looking at formally it is the first attempt of Khari Boli to sing. In content it is the effort to resurrect a lost soul. The two aspects have in normal criticism received two names Chhayavad and Rahasyavad.

8. Chhayavad dug deep, found certain pieces of stones, called them Gods. I dug deeper. I said my quest was not God but man.

9. Nothing can be more far fetched than to think that the European Romantic movement and Chhayavad are basically similar movements. They are really speaking basically dissimilar. European Romantic movement was the aftermath of the Great Revolution. And Chhayavad ? It emerged after the complete surrender of India under the British Boot. Actually it is the assertion of the soul of India which could never be enslaved. Physically, actually all was lost, but India kept its soul. The slave India produced a Tagore to declare to the world that the soul of India was unconquered. Gandhi gave a political turn to this soul-force. Chhayavad to my mind was a typically national movement. You may possess the temple walls, the Gods are with us—that is what it said. The influence of English Romantic poetry on Tagore and Chhayavad was superficial and formal,never deep.

10. I refuse to be placed under any school. At best I am a bridge between two schools—the Chhayavad and Pragativad. The gods are too perfect to desire progress. Hence Chhayavadi poetry is static. I discovered man, thursting after his dreams. He moves, he progresses, he lives.

परिशिष्ट (घ)

(डा० रामकुमार वर्मा से उनके प्रयाग निवास-स्थान 'साकेत' पर वार्ता, तिथि २ मार्च १९५१)

प्रश्नः—आपकी सम्मति में छायावाद और रहस्यवाद में विशेष अन्तर क्या है ?

उत्तरः—छायावाद में कवि अथवा लेखक के स्वयं के भावों, संवेगों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। छायावादी कवि का जीवन के क्षेत्र में रागात्मक अनुभूति का दृष्टिकोण रहता है और उसकी खिन्नता का कारण कोई ज्ञानातीत अथवा आध्यात्मिक अनुभव न होकर उसके स्वयं का ऐन्द्रिक अनुभव होता है। इसके विपरीत रहस्यवाद में कवि के आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यंजना होती है। रहस्यवादी द्वारा व्यक्त की गई वेदना का मूल उसके आध्यात्मिक अनुभव में होता है। रहस्यवादी वेदना मानव-आत्मा की परमात्मा के लिए उद्विग्नता का परिणाम होती है; अतः वह ऐन्द्रिक (sensuous) न होकर आध्यात्मिक (supernal) होती है। रहस्यवाद छायावाद के परे का अनुभव होता है (Mysticism transcends 'chhayavad') और वह उसका एक उदात्त अथवा उन्नत स्वरूप (Sublimated form) है।

प्रश्नः—आपके अनुसार रहस्यवाद और धर्म में क्या सम्बन्ध है और क्या यह आवश्यक है रहस्यवाद का रूप सदा धार्मिक ही हो ?

उत्तरः—रहस्यवाद किसी भी दशा में धार्मिक नहीं कहलाया जा सकता है यदि हम धर्म का अर्थ किसी गुरुडम (dogma) अथवा कोरे कर्मकांड (rituals) से लेते हैं। रहस्यवाद हृदय की पवित्रतम अनुभूति का नाम है और उसका धर्म के बाह्य स्वरूप (formalism) से कोई सम्बन्ध नहीं है। रहस्यवादी उक्ति हृदय के अन्तरतम स्तरों (innermost recesses of the heart) से आध्यात्मिक आह्लाद के क्षणों में ध्वनित होती है, और यही कारण है कि वह बहुधा अधिक बोधगम्य न होकर अस्पष्ट होती है। रहस्यवादी अपने भावों को प्रत्यक्ष भाषा में व्यक्त न कर सकने के कारण बहुधा प्रतीकों का आश्रय लेने लगता है। अतः रहस्यवादी कविता का प्रतीकवादी होना भी स्वाभाविक ही है।

प्रश्नः—आधुनिक रहस्यवादी कविता के मूल स्रोत क्या हैं ?

उत्तरः—हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता के अनेक स्रोत हैं। सच तो यह है कि हमारी भारतीय परंपरा ही रहस्यवाद के क्षेत्र में इतनी समृद्ध रही है कि वह ही स्वयं हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी कवियों को आवश्यक सामग्री प्रदान करने के लिए पर्याप्त थी। उपनिषद्, गीता, महाभारत, योग-वशिष्ट आदि रहस्यवादी प्रवृत्ति से ओत प्रोत है। किन्तु इन प्रभावों के अतिरिक्त हिन्दी कविता की आधुनिक रहस्यवादी धारा पर कतिपय अन्य प्रभाव भी पड़े हैं जिनमें पाश्चात्य प्रभाव तो अत्यन्त महत्त्व का रहा है। यह पाश्चात्य प्रभाव अधिकांशतः बँगला-साहित्य के माध्यम द्वारा, विशेषतया रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्य द्वारा, आया है।

प्रश्नः—आपके प्रिय अंग्रेज़ी कवि और लेखक कौन से हैं और उनका आपकी कृतियों पर क्या प्रभाव पड़ा है।

उत्तरः—'रूपराशि' कविता संकलन के रचना काल में मेरा दृष्टिकोण छायावादी कवि का रहा था और उस समय मुझे बायरन (Byron) और कीट्स (Keats) की कविता अत्यधिक अच्छी लगती थी। उनके काव्य की ऐन्द्रियकता (sensuousness) का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुझे कीट्स तो विशेषकर प्रिय था और उनकी 'ओड्स' एवं 'सानेट्स', उदाहरणार्थ 'La Belle Dame Sans Merci', 'Nightingale' और 'Bright Star' का मेरी छायावादी कविता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। शेली के काव्य में उसका विद्रोहात्मक आदर्शवाद, जिसकी सुन्दर अभिव्यक्ति उसके 'Ode to the Westwind' में हुई है, मुझे बहुत पसन्द आया। ब्लेक और वर्ड्सवर्थ की रहस्यवादी कविता मुझे बहुत प्रिय रही है। इनके अतिरिक्त मेटरलिंक मुझे अच्छा लगा है और उसकी 'ब्ल्यू बर्ड' (Blue Bird) से प्रभावित हो मैंने अपना एकांकी नाटक 'बादल की मृत्यु' लिखा।

अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने अंग्रेजी काव्य का यथेष्ट रसास्वादन किया। पालग्रेव की 'गोल्डेन ट्रेज़री' में संकलित कुछ कविताओं को मैंने अनेकानेक बार पढ़ा है। 'कबीर का रहस्यवाद' (१६३१) नामक पुस्तक को लिखते समय मैंने Oxford Book of Mystic Verse का अध्ययन किया। बँगला की रहस्यवादी कविता भी मुझे प्रिय लगी है और रवीन्द्रनाथ एवं ब्रह्म समाज का प्रभाव सम्भवतः मेरी 'अञ्जलि' में संग्रहीत कविताओं में मिल सकेगा।

परिशिष्ट (ङ)

(श्री सुमित्रानन्दन पन्त से उनके प्रयाग निवास स्थान पर भेंट, तिथि २ मार्च, १६५१)

प्रश्न:—अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों में आपको सबसे अधिक कौन प्रिय हैं, और उनका आपकी काव्य-रचना पर किस सीमा तक प्रभाव पड़ा है ?

उत्तर:—मैंने १६वीं शती के अंग्रेज़ी कवियों में शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन का विशेषकर अध्ययन किया है और ये कवि मुझे अत्यन्त प्रिय भी लगे हैं। किन्तु इन सब कवियों में कीट्स मेरा सबसे प्रिय अंग्रेज़ी कवि रहा है और उसकी 'ओड्स' और 'सानेट्स' का मेरी कविता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। कीट्स और टेनीसन के काव्य से ही मुझे शब्द-चयन और शब्द-सौन्दर्य का बोध हुआ। 'वीणा—पल्लव—गुञ्जन' काल की मेरी कविता का कलात्मक पक्ष इन दो कवियों से प्रभावित हुआ है। वर्ड्सवर्थ की कवितायें, विशेषकर उनकी Immortality Ode का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। शेली भी मुझे प्रिय रहा है, किन्तु मेरे अन्दर शेली की आत्मा की वेगमत्ता (impetuosity) का अभाव है जिसकी अभिव्यक्ति उसकी 'Ode to the West Wind' में हुई है।

प्रश्न:—शेक्सपियर के कौन से नाटक आपको प्रिय लगे हैं ?

उत्तर:—मुझे शेक्सपियर बहुत प्रिय लगा है। विशेषकर उसकी 'कामेडीज़' और 'रोमांसेज' तो मुझे बहुत ही अच्छे लगे हैं। Midsummer Night's Dream और Tempest का परियों का जगत बहुत ही लुभावना है। As you like It और Twelfth Night भी बहुत अच्छे लगे हैं। Comedy of Errors ने मुझे बहुत हँसाया है।

प्रश्न:—आपके अन्य अंग्रेज़ी अथवा योरोपीय प्रिय लेखक कौन से हैं ?

उत्तर:—मुझे कुछ आधुनिक लेखक भी अच्छे लगे हैं विशेषकर Walter de la Mare मुझे बहुत प्रिय लगा है। Sitwells और Georgians भी मैंने पसन्द किये हैं। मैंने Eliot और Pound की भी कुछ कवितायें पढ़ी हैं किन्तु उन्हें मैं अधिक पसन्द न कर सका। किन्तु मुझे

सबसे अधिक प्रिय बर्नार्ड शॉ लगा है। उनके नाटकों को Man and Superman, Getting Married, Major Barbara, Apple-Cart, Saint Joan और Back to Methuselah मैंने बड़े उत्साह से पढ़ा है। अन्तिम दो नाटक तो मुझे बहुत प्रिय लगे हैं। इन लेखकों के अतिरिक्त मैटरलिंक मुझे बहुत प्रिय लगा है और उसके Blue Bird नाटक का मेरे प्रतीकात्मक नाटक 'ज्योत्स्ना' पर यथेष्ट प्रभाव है।

प्रश्नः—आपकी रचनाओं पर मार्क्स की विचारधारा का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है? क्या आपने अंग्रेज़ी के कुछ मार्क्सवादी कवियों का भी अध्ययन किया है?

उत्तरः—मार्क्स का मेरी कुछ कृतियों पर अवश्य प्रभाव पड़ा है विशेषकर 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' की कवितायें मार्क्सवाद से पर्याप्त रूप में प्रभावित हैं। मैं मनुष्य की आर्थिक स्वतंत्रता में विश्वास करता हूँ किन्तु मैं मार्क्सवाद को एकांगी मानता हूँ क्योंकि यह मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति में विश्वास नहीं रखता। यहाँ पर मुझे अरविन्द का दर्शन अधिक रुचिकर लगा है और उनकी Life Divine ने मुझे एक नवीन दृष्टिकोण दिया है। अतः आर्थिक स्वातंत्र्य के साथ मैं मनुष्य की चेतना (Consciousness) का विकास आवश्यक समझता हूँ। वस्तुतः मार्क्सवाद और अध्यात्मवाद दोनों ही अतिवाद हैं और मनुष्य का परित्राण इन दोनों के सामंजस्य में ही सम्भव हो सकता है।

मैं केवल मार्क्सवाद की विचारधारा से ही प्रभावित रहा हूँ और अंग्रेज़ी के मार्क्सवादी लेखकों का मैंने कोई अध्ययन नहीं किया है।

प्रश्नः—आपके प्रिय पाश्चात्य विचारक कौन से हैं?

उत्तरः—हीगेल, बर्गसाँ, एमर्सन और शॉ मेरे प्रिय पाश्चात्य विचारक हैं। डार्विन का विकासवाद केवल भौतिकवाद पर निर्धारित होने के कारण मुझे युक्तिसंगत नहीं लगता। सृजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) का सिद्धांत मुझे अधिक समझ में आता है।

प्रश्नः—क्या आपकी कुछ कविताओं का आपके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध है?

उत्तरः—मेरी 'ग्रन्थि' कविता अनेक आलोचकों ने मेरे व्यक्तिगत जीवन से संबन्धित कही है। किन्तु वह मेरी कल्पना की ही मात्र उत्पत्ति है। हाँ, 'उच्छ्वास' में मेरे व्यक्तिगत जीवन का संभवतः कुछ प्रभाव आ सकता है।

सहायक ग्रंथों की सूची

(अ) अंग्रेज़ी पुस्तकें

(क) तुलनात्मक अध्ययन

१ गुप्ता, एच० एम० दास; 'स्टडीज़ इन वेस्टर्न इन्फ्लूयेन्स इन नाइन्टींथ सेन्चुरी बँगाली पोइट्री' (कलकत्ता, १६३५)

२ लतीफ़, सैयद अब्दुल; 'द इन्फ्लूयेन्स ऑव इंग्लिश लिट्रेचर ऑन उर्दू लिट्रेचर' (लन्दन, १६२४)

३ सेन, प्रियारंजन; 'वेस्टर्न इन्फ्लूयेन्स इन बँगाली लिट्रेचर' (कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६३२)

(ख) भारतीय साहित्य

४ क्वी, एफ० ई०; 'हिस्ट्री ऑव हिन्दी लिट्रेचर' (कलकत्ता १६२०)

५ घोष, जे० सी०; 'बँगाली लिट्रेचर' (आक्सफ़र्ड, १६४८)

६ टामसन, ई० जे०; 'टैगोर, पोइट एण्ड ड्रेमेटिस्ट' (आक्सफ़र्ड, १६२६)

(ग) भारतीय संस्कृति और इतिहास

७ अरबिन्द; 'द रेनासां इन इन्डिया' (तृतीय संस्करण)

८ 'कल्चरल हेरीटेज ऑव इन्डिया' (रामकृष्ण सेंटेनरी कमेटी)

९ नेहरू, जवाहरलाल; 'द डिस्कवरी ऑव इन्डिया' (कलकत्ता, दूसरा संस्करण, १६४६)

१० मुकर्जी, डी० पी०; 'माडर्न इन्डियन कल्चर' (बम्बई, हिन्द किताब, दूसरा संस्करण १६४८)

११ राधाकृष्णनन्, एस०; 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन'

१२ सरकार, जदुनाथ; 'इन्डिया थ्रू द एजेज़' (तृतीय संस्करण)

१३ सरकार, विनयकुमार; 'द क्रीयेटिव इंडिया' (लाहौर, १६३७)

१४ सिक्यूरा, जे० एन०; 'द एज्युकेशन ऑव इन्डिया' (केम्ब्रिज, ओ० यू० पी०, तीसरा संस्करण १६४८)

१५ स्मिथ, विंसेंट ए०; 'आक्सफर्ड हिस्ट्री ऑव इन्डिया' (१६१६)

(घ) अंग्रेजी साहित्य विषयक आलोचना

१६ अबरक्रॉम्बी, एल०; 'रोमांटिसिज्म' (लन्दन १६३७)

१७ इंज, डब्लू० आर०; 'क्रिश्चियन मिस्टिसिज्म' (लन्दन १६३३)

१८ ऐलेट, केनथ (सम्पादक); कन्टम्परेरी वर्स' (पैंग्विन, १६५१)

१६ अंडरहिल, ईवलिन; 'मिस्टिसिज्म' (११वाँ संस्करण)

२० कोर्टहोप, डब्लू० जे०; 'ए हिस्ट्री ऑव इंग्लिश पोइट्री' वाल्यूम ६ (१६१३)

२१ गोर्की, मेक्सिम; 'लिट्रेचर एण्ड लाइफ़' (१६४६)

२२ ड्रिंकवाटर, जॉन (सम्पादक); 'द आउट लाइन ऑव लिट्रेचर' (लन्दन, १६५०)

२३ फ़रेल, जे० टी०; 'ए नोट ऑन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म' (कांस्टटेबल एण्ड कं०, लन्दन, १६३६)

२४ फ्लोर्स, एंजिल्स (सम्पादक); 'लिट्रेचर एण्ड मार्क्सिज्म' (इलाहाबाद, १६४५)

२५ फ़ेल्प्स, डब्लू० लियन; 'बिगिनिंग्स ऑव इंग्लिश रोमांटिक मूवमेंट'

२६ बॉवरा, सी० एम०; 'द हेरीटेज ऑव सिम्बोलिज्म' (लन्दन १६४७)

२७ बीच, जे० डब्लू०; 'कन्सेप्ट ऑव नेचर इन नाइनटींथ सेंचुरी इंग्लिश पोइट्री' (न्यूयोर्क, १६३६)

२८ ब्रुक, स्टॉफ़र्ड ए०; 'नेचुरलिज्म इन इंग्लिश पोइट्री' (किंग्स ट्रेज़री सीरीज़)

२६ रूथ, एच० वी०; 'इंग्लिश लिट्रेचर एण्ड आइडियाज़ इन द टुयेन्टीयथ सैन्चुरी' (लन्दन १६५०)

३० रिकेट, कॉम्पट; हिस्ट्री ऑव इंग्लिश लिट्रेचर' (१६४७)

३१ लिग्वी एण्ड कज़ामियाँ; 'हिस्ट्री ऑब इंग्लिश लिट्रेचर' (१६४३)

३२ लेवीस, सेसिल डे; 'ए होप फॉर पोइट्री' (सातवां संस्करण १६४५)

३३ वार्ड, ए० सी०; 'टुयन्टीयथ सेंचुरी इंग्लिश लिट्रेचर'

३४ वार्ड, ए० सी०; 'द नायन्टीन-टुयेन्टीज़' (तृतीय संस्करण १६३७)

३५ स्कार्फ, फ्रॉसिस; 'ऑडेन एण्ड ऑफ़्टर' (१६४५)

३६ स्पेंडर, स्टीफ़न; 'पोइट्री सिंस १६३६' (लॉंगमेंस, १६५०)

३७ स्ट्रौंग, ए० टी०; 'स्टडीज़ इन शेली' (१९२१)

३८ 'एसेज़ एण्ड स्टडीज़' (मेम्बर्स ऑव इंग्लिश एसोसियेशन, यू० पी० १९३८)

(ङ) विविध

३९ जोड, सी० ई० एम०; 'गाइड टु मॉडर्न थॉट' (लन्दन, पेन बुक्स, संशोधित संस्करण)

४० भटनागर, राधारमन, 'राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑव हिन्दी जर्नलिज्म' (इलाहाबाद)

४१ मार्क्स एण्ड एंजिल्स; 'कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो' (मास्को १९४८)

४२ सरकार, महेन्द्रनाथ; 'हिन्दू मिस्टिसिज्म' (लन्दन १९३४)

(ब) हिन्दी पुस्तकें

(क) हिन्दी साहित्य विषयक आलोचना

४३ उपाध्याय, देवराज; 'रोमांटिक साहित्य शास्त्र' (पहला संस्करण, १९५१)

४४ उपाध्याय, गंगाप्रसाद; 'महाप्राण निराला' (पहला संस्करण, संवत् २००६)

४६ गुप्त, प्रकाशचन्द्र; 'नया हिन्दी साहित्य'

४७ गुर्टू, शचीरानी (सम्पादिका); 'महादेवी वर्मा' (प्रथम संस्करण १९५१)

४८ गुर्टू, शचीरानी (सम्पादिका); 'सुमित्रानन्दन पन्त' (प्रथम संस्करण १९५१)

४९ गुर्टू, शचीरानी; 'साहित्य दर्शन' पहला भाग (प्रथम संस्करण, १९५०)

५० चौहान, शिवदान सिंह; 'प्रगतिवाद'

५१ जोशी, इलाचन्द्र; 'विवेचना' (प्रथम संस्करण, संवत् २००५)

५२ दास, ब्रजरत्न; 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९३५)

५३ देवराज; 'छायावाद का पतन'

५४ द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद; 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (तीसरा संस्करण १९४८)

५५ द्विवेदी, महाबीर प्रसाद; 'रसज्ञ रंजन' (द्वितीय संस्करण)

५६ नगेन्द्र; 'आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ' (दिल्ली, गौतम बुक डिपो, १९५१)

५७ नगेन्द्र; 'काव्य चिन्ता' (मेरठ, द्वितीय संस्करण, १९५१)
५८ नगेन्द्र; 'रीति काव्य की भूमिका' (प्रथम संस्करण, १९४९)
५९ नगेन्द्र; 'विचार और अनुभूति' (द्वितीय संस्करण)
६० नगेन्द्र; 'विचार और विवेचन' (पहला संस्करण, १९४९)
६१ नगेन्द्र; 'सुमित्रानन्दन पंत' (संशोधित संस्करण)
६२ 'निराला', सूर्यकान्त त्रिपाठी; 'प्रबन्ध प्रतिमा' (पहला संस्करण, संवत् १९९७)
६३ प्रसाद, जयशंकर; 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' (तीसरा संस्करण संवत् २००५)
६४ बाजपेयी, नन्ददुलारे; 'हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी' (लखनऊ, १९४५)
६५ बाजपेयी, नन्ददुलारे; 'जयशंकर प्रसाद'
६६ मल्ल, विजयशंकर; 'हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद' (द्वितीय संस्करण, १९५०)
६७ मदन, इन्द्रनाथ; 'हिन्दी कलाकार' (लाहौर, हिन्दी भवन, १९४६)
६८ मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद; 'साहित्य की वर्तमान धारा' (पटना ग्रंथ-माला कार्यालय, बाँकीपुर)
६९ मिश्र, भागीरथ; 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' (लखनऊ विश्व-विद्यालय, संबत् २००५)
७० लाल, श्रीकृष्ण; 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' (प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद, पहला संस्करण)
७१ वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर; 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (हिन्दी प्ररिषद, प्रयाग विश्व विद्यालय, पहला संस्करण)
७२ वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर; 'भारतेन्दु की विचारधारा' (पहला संस्करण, १९४८)
७३ वर्मा, रामकुमार; 'कबीर का रहस्यवाद' (छठा संस्करण, १९४८)
७४ शिवनाथ; 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की आर्थिक भूमिका'
७५ शर्मा, रामविलास ; 'भारतेन्दु-युग' (ऊन्नाव, युग मन्दिर)
७६ शर्मा, रामविलास; 'निराला' (बम्बई, जनप्रकाशन गृह, १९४८)
७७ शुक्ल, केसरी नारायण; 'आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा'
७८ शुक्ल, केसरी नारायण; 'आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत' (काशी, संवत् २००४)

७९ शुक्ल, रामचन्द्र; 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (काशी, ना० प्र० स०, संवत् २००५)
८० सत्येन्द्र; 'गुप्त जी की कला' (चतुर्थ संस्करण, संवत् २००७)
८१ सुधीन्द्र; 'हिन्दी कविता में युगांतर' (दिल्ली, १९२०)

(ख) हिन्दी कविता

१ 'अज्ञेय', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन; (अ) चिन्ता (१९४६), (ब) हरी घास पर क्षण भर (प्रथम संस्करण), (स) इत्यलम् (१९४६), (द) तार सप्तक ('अज्ञेय' द्वारा सम्पादित, १९४७)
२ 'अञ्चल', रामेश्वर शुक्ल; (अ) अपराजिता (१९३९), (ब) किरण-बेला (१९४१), (स) लाल चूनर (१९४४), (द) मधूलिका (१९३८)
३ उपाध्याय, अयोध्या सिंह; प्रिय प्रवास (संवत् २००८)
४ 'गुप्त', बालमुकुन्द; स्फुट कविता
५ गुप्त, मैथिली शरण; (अ) भारत भारती (१९१०), (ब) द्वापर (१९३६) (स) पञ्चवटी (१९३३), (द) साकेत (१९३१), (ह) यशोधरा (संवत् २००९), (क) किसान (संवत् २००५), (ख) मेघनाथ बध (बंगला से अनुवादित), (ग) प्लासी का युद्ध (अनुवाद), (घ) जयद्रथ बध
६ गुप्त, सियाराम शरण; अनाथ (१९२९)
७ जोशी, इलाचन्द्र; विजनवती (१९३७)
८ दास, राधाकृष्ण; राधाकृष्ण ग्रन्थावली (श्याम सुन्दर दास द्वारा सम्पादित, १९३०)
९ दिनकर, रामधारी सिंह; (अ) हुंकार (१९४९), (ब) रेणुका (१९३५), (स) रसवन्ती (१९४४)
१० द्विवेदी, महावीर प्रसाद; द्विवेदी काव्य माला (१९४४)
११ 'निराला', सूर्यकान्त त्रिपाठी; (अ) अनामिका (संवत् २००५), (ब) गीतिका (संवत् २००५), (स) परिमल (संवत् २००५), (द) बेला (ह) कुकुरमुत्ता
१२ पन्त, सुमित्रानन्दन; (अ) पल्लव (१९२६), (ब) ग्राम्या (१९४०), (स) युगान्त (११३६), (द) युगवाणी (३९३९), (ह) ज्योत्सना (संवत् २००८), (क) उत्तरा (संवत् २००६), (ख) स्वर्णधूलि (संवत् २००८), (ग) स्वर्णकिरण (संवत् २००८), (घ) पल्लविनी (संवत् २००१); आधुनिक कवि २, (संवत् २००३)

१३ पाठक, श्रीधर; (अ) एकांतवासी योगी, (ब) देहरादून, (स) श्रांत-पथिक, (द) ऊजड़ ग्राम, (ह) काश्मीर सुषमा

१४ 'प्रेमघन', बद्रीनारायण चौधरी; प्रेमघन सर्वस्व (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

१५ 'प्रसाद', जयशंकर, (अ) आँसू (१९३५), (ब) झरना (संवत् २००५) (स) लहर (संवत् २००४), (द) कामायनी (संवत् २००१), (ह) कामना (१९२७), (क) प्रेम पथिक

१६ 'बच्चन', हरिवंशराय; (क) आकुल अंतर (१९४६), (ख) एकांत संगीत (ग) खय्याम की मधुशाला (तीसरा संस्करण), (घ) मधुबाला (१९५१), (ङ) मधुशाला (१९४०), (च) मधुकलश (१९५१), (छ) निशा निमंत्रण (१९४०), (ज) सतरंगिनी (१९४८)

१७ मिश्र, प्रतापनारायण; तृप्यन्ताम (१९१४)

१८ वर्मा, भगवतीचरण; (अ) मधुकण (१९३२), (ब) प्रेम संगीत (१९३७), (स) मानव (१९४८)

१९ वर्मा, रामकुमार; (अ) रूपराशि (१९३३), (ब) चित्ररेखा (१९३५), (स) अभिशाप, (द) आधुनिक कवि ३ (संवत् २००३)

२० वर्मा, महादेवी; (अ) यामा (संवत् २००८), (ब) दीपशिखा (१९४६), (स) बंग दर्शन (सम्पादिका—महादेवी वर्मा, प्रथम संस्करण), (द) आधुनिक कवि १ (संवत् २००६)

२१ शर्मा, नरेन्द्र; (अ) मिट्टी और फूल (संवत् १९९९), (ब) प्रभात फेरी (१९३९), (स) पलाशवन (१९४०), (द) लाल निशान; (ह) प्रवासी के गीत (१९४५)

२२ 'सनेही', गयाप्रसाद शुक्ल; कृषक क्रन्दन

२३ सिंह, आरसी प्रसाद; नई दिशा (१९४४)

२४ हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु; (अ) भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग १ (ना० प्र० स० संवत् २००९), (ब) भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग २ (ना० प्र० स० संवत् १९९१)

२५ त्रिपाठी, रामनरेश; (अ) मिलन (१९२८), (ब) स्वप्न (संवत् १९८५) (स) पथिक (१९३२)

(स) पत्र–पत्रिकायें

१ 'आलोचना'; भाग १—४ (सम्पादक शिवदान सिंह चौहान)

२ 'आजकल' १५ अक्टूबर १९३९, नगेन्द्र का लेख "पन्त का नवीन जीवन-दर्शन"

३ 'केलकटा रिव्यू', सितम्बर १९२६, प्रियारंजन सेन का लेख "सम चेनल्स ऑव वेस्टर्न इंफ्लूयेन्स इन बेंगाल'; अप्रेल १९२७, प्रिया-रंजय सेन का लेख "पब्लिक मूवमेंट्स इन बेंगाल एज़ चेनल्स ऑव वेस्टर्न इंफ्लूयेन्स'; नवम्बर १९४२, प्रकाशचन्द्र गुप्त का लेख "एन इन्ट्रोडक्टरी बैक ग्राउंड ऑव हिन्दी लिट्रेचर"

४ 'जर्नल ऑव डिपार्टमेंट ऑव लेटर्स', वाल्यूम xxii "प्रियारंजन सेन का लेख "इन्फ्लूयेन्स ऑव वेस्टर्न लिट्रेचर इन द डेवेलपमेंट ऑव बेंगाली नॉवेल"

५ 'प्रतीक' (सम्पादक स० ही० वात्सायन)

६ 'द विश्वभारती क्वाटर्ली', अगस्त १९३७ और नवम्बर १९३८, स० ही० वात्सायन का लेख "माडर्न (पोस्ट-वॉर) हिन्दी पोइट्री"

७ 'सरस्वती', १९०३ से १९१८ तक

८ 'साहित्य संदेश', भारतेन्दु अंक (नवम्बर १९५०), आलोचना अंक आदि

९ 'संगम', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अंक (वर्ष ४, अंक ६), सुमित्रानन्दन पंत अंक (वर्ष ३, अंक २७), निराला अंक आदि

इनके अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'माधुरी', 'हंस' आदि अन्य पत्रिकायें।

(द) 'ऐन्साइक्लोपीडियाज़' और शोध संबंधी निबन्ध

१ 'ऐन्साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका'; भाग ६, पृ० १९४, काम्टे

२ 'ऐन्साक्लोपीडिया ऑव सोशल साइंसेज़, पृ० ५४२, 'ह्यूमेनिज्म'

३ डी० फिल० (इलाहाबाद) के लिये निबंध 'इंग्लिश इंफ्लूयेन्स ऑन हिंदी लैंग्वुएज एण्ड लिट्रेचर' लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

४ डी० फिल० (इलाहाबाद) के लिये निबंध "आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना" लेखिका शैलकुमारी।

अनुक्रमणिका

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२	ऐश्वर	ऐश्वर्य
,,	१५	मख्यता	मुख्यतः
,,	२१	वास्तुकता	वास्तुकला
१७	२६	feet	fleet
१६	२७	प्रतितिधि	प्रतिनिधि
३२	१८	frist	first
,,	१६	cruci	crucial
,,	२०	o	of nation
,,	३२	rehabi-liated	rehabi litated
३५	३०	religions	religious
४५	२६	religions	religious
१०५	२२	उद्धहरण	उद्धरण
११३	२७	develo-peed	develo-ped
११७	२३	apotheo-sisation	apotheo-sis
१२५	२६	देखिये पृष्ठ	देखियेपृ०१०१
१२७	३०	पृष्ठ ६८	पृष्ठ ६५
१२६	२३	द्रुउ`लित	उद्वेलित
१३५	६	(Warton)	(Warton) बन्धुओं
१३६	१३	soccal	social
,,	२२	समय	मनुष्य
१४३	७	Bavdlaire	Baudelaire

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	२६	elf	self
१४४	२७	'waver-ing'	waver-ing,
,,	२८	teachni-que	techni-que
,,	,,	empoly	employ
,,	२६	neceassry	necessary
१५१	१५	अस्था	आस्था
१५३	२६	these	those
,,	२८	world	would
१६३	१३	सरस	सरल
१६५	२८	तुकसे	उकसे
१७१	१७-१८	Doctri-nire	Doctri-naire
,,	२६	Thom-son whom	whom Thomson
१७३	२५	vaponss	vapours
१७४	३	spiret	spirit
,,	१६	part...like	pard-like
,,	२१	they	thy
१७५	२३	व्यक्ति दुखी	दुखी व्यक्ति
१७६	२६	purne	prime
१८५	२६	सकभता	समभता
२००	२१	Lead	lead
२२१	१	art	art.